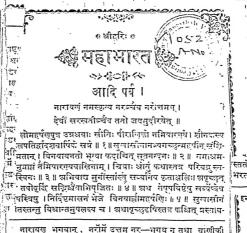
(日) विषय चिपय वृष्ठ ्राष्ट्रको राजनीतिकाउपदेश ७०६ द्रोणाचार्यका द्रुपदको हराना ७१३ धृष्टयुम्न और द्रीपदीकाजन्म ं धनकी ईपाँ उबीको हस्तिनापुरसे ७१६ पाञ्चाल नगरमें जानेका ाल देनेके लिये दुर्योधन धिचार धृतराष्ट्रसे प्रार्थना ७२० द्रीपदीके पूर्वजनमकी कथा ब्रबीका बारणावतमें जाना ७२२ गन्धेर्वका पराजय तागृह बनानेको पुरोचन ७३१ सूर्यपुत्री तपतीकी कथा ७३६ तपती और संवरणका त्रहना संचाद इडवीका चारणायतमें जाना न्ति-विष्ठिर और मीमकी लाजा ७३६ वर्जुन तापत्य क्यों फटाया ? ७४४ विल्पचरित्र, राजपुरोदित में वातचीत ŧ चारिये रहवींका लोक्ताभवनमें ञ्चन् ७४५ विद्वाभित्रसे वैर और ब्रह्म-न्यंच वेजकी महिगा त्ताधवनमें जाग सीनं हाके पार होना ७४१ रोजा फल्मापपाइकी कथा त्राच-पहर्वीका गएन बनमें जाना ७५६ राजाको शापसे छटना ७६१ सक्तिके पुत्र पराशरका क्रोध मिका यस साना गीकी म होर हिडिस्या जीर भृगुवंशियोंकी कथा म और हिडिम्बका युद्ध ७६४ चौर्वका क्रोध वारी, ७६७ छोर्दके फ्रोधकी ग्रास्ति हपेश दिस्यक वध ७६८ राज्ञस संदारके लिये पराग्रर -:पाचकी उत्पत्ति दका नगरीमें जाना का यश 🏂 गुके फुट्रं चकी चिन्ता ७७२ करुमापपादको पुत्र देनेका द्भाणीका सम्बाद कारण ঘাত্র ं योर पिता ७७५ पार्डवीने घीम्यकी पुरोहित पके लिये ७७६ पाएडच प.ञ्चाल नगरमें र ७७= स्वयंग्वर रचना और 'ा संवाद धुम्नका राजाभीक सुनाना न्ता सुत भी ७=२ स्वयंवरमें अर्ध वैठे



नारायण भगवान, नराम उत्तम नर-भगव न तथा वाणीकी श्रिधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार करके इतिहास प्राणादि की व्याख्या का आरम्भ करे॥ ॥ एक समय सौति उपनामधारी. पुराणींकी कथा कहने में प्रवीण, सूतकुलको आनन्द देनेवाले लोमहर्पण े पुत्र उत्रश्रवा, नैमिपारएयमें, कुलपति (दश सहस्र मनप्योंका प्रिप्त श्रादिसे पालन करनेवाले) सीनकके वारहवर्षके सब श्रर्थात जिसमें अनेको मनुष्यीको अर्जादिसे तुप्त कियाजाता था और जिसमें अनेको कर्म करनेवाले थे उस यहाँ आनन्दसे वैठेहुए तरवार की धारकी समान अखएड बतवाले ब्रह्मपियोंके समीप विनयसे नारे जी हुए आपहुँचे ॥ १ ॥ २ ॥ श्रेष्ठ तपस्त्रियाने, नैमिपारग्यवासिया। पूजित श्राश्रममें श्रायेहुए उनके (उन्नश्रवाके) मुखसे विचित्र कथाएं सुरामृत्ति ्रो के लिये चारों श्रीरसे इकट्टे होकर उनका श्रादर सत्कार किया, उज्ञातमा श्रवाने भी दोनो हाथ जोड़कर उन मुनियोंको नमस्कार कर उनवे स्त्रष्टा तपकी कुराल वृभी ॥ ३ ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह सब तपस्वी अपने दरके श्रासन पर वैठे तब लोमहर्षणके पुत्र पुराणवेत्ता सुत भी तपस्मिन पत्र के बताये हुए श्रासन पर विनयके साथ बैठे ॥ ५॥ - दुतकर्मवाहित

^{दि} साथ वैठेहर

खाया]

भाषानुवाद सहित

(३)

| मार्थिसंक्षिताः । दिवृत्तं नरेन्द्रालामृषीलुः

सृद्यं ऊचुः । हैरायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमिष्णः । सुरंत्रं क्षापितिः

श्रेष अग्र्या यदिभिष्तितम् ॥ १० ॥ तस्याच्यानयरिष्ठस्य विचित्रपद्य
पृत्यः । सुरःश्रायः युक्तस्य चर्यार्थम् पितस्य च ॥ १= ॥ भारतस्येतिः

। सदस्य पुरायं जन्यार्थमं सुत्तः च संस्कारोपगतां वाह्यां नानाशालोपः

हिताम् ॥ १६ ॥ जनमेनयस्य यां रालो चेमम्यायन उक्तयात् । ययाः

सस्य पुरायं जन्यार्थमं यात्रा चेमम्यायन उक्तयात् । ययाः

सस्य सुरिस्तुष्ट्या सत्र हैरायनाण्या ॥ २० ।॥ चेद्रै अनुभिः संयुक्ताः

प्रास्त सुरिस्तुष्ट्या सत्र हैरायनाण्या ॥ २० ।॥ चेद्रै अनुभिः संयुक्ताः

प्रास्त स्वर्यत्वकार्यम् स्वर्यात्वायाः पुराणं प्राप्तभाषाम् ।

११ ॥ सीतियया । ज्ञायं पुरायमीयानं पुरातं पुरावत्व प्राप्तः

सदस्य स्वर्याः । परावरात्वां स्वर्याः पुराणं परमञ्यम् ॥ २३ ॥ मह
प्राप्त स्वर्याः परावरात्वां स्वर्याः पुराव परमञ्यम् ॥ २३ ॥ मह
प्राप्त स्वर्याः । स्वर्यः पुनितस्येत सर्वेनीकर्महासमः । प्राप्तः । प्राप्तः ।

महतं पुरावं व्यातस्याद्वकार्याः । ॥ ॥ आचल्युः क्रययः कैचिः

महतं पुरावं व्यातस्याद्वकार्याः ॥ १५ ॥ आचल्युः क्रययः कैचिः

तथा महातमा महाराजात्र्योंके नथा ऋषियोंके इतिहास पवा तुम्हें निनाऊँ १ (यह सुवकर ऋषि स्नान सन्ध्यासे निवट कर आये और स्तजीसे वृभनेलगे) ॥ १६ ॥ ऋषि योले, कि-देवतार्थीने श्रीर ब्रह्म पियोंने जिसको सुनकर अपने २ लोकमें जिनकी प्रशंसा की है ऐसे उत्तम २ श्राख्यानोसे भरी, विचित्र पदरचनावाले पर्वावाली, सुद्रम श्रुथाको दिखानेवाली, न्यायसे भरी, वेदको श्रुथासे शोभायमान, प्रन्थ के श्रर्थके श्रद्धसार पदादि व्युत्पत्ति चाली, नानाप्रकारके शास्त्रीय विषयोंसे गौरवमयी, राजा जनमेजयके सर्पयहामें घेदव्यासजी की श्रामासे जिसको वैशम्पायन ऋषिने प्रसन्नतापूर्वक विस्तारके साथ कहा पेसी, चारों वेदीके विषयोंसे भरपूर, श्रद्धतकर्मा परमर्षि श्रीवेद-ज्यासजीकी रचीहुई, पवित्र श्रीर पापके भयकानाश करनेवाली महा-भारत नामक संहिताको सुननेकी हमारी इच्छा है॥१७—२१॥ सृतजी कहनेलगे, कि-ग्रादिपुरुप मदेश्वररूप, वड़े २ होताश्रोंसे पुजित भारामगोन करनेवालोसे स्तुति कियेद्वप, सत्य, ॐकारस्वरूप, ब्रह्ममूर्त्ति ियक तथा श्रम्यक, सनातन, कार्य तथा कारणुरूप, विश्वरूप, सुत्रात्मा था परमात्मासे पर. पर श्रीर श्रपर (भृत श्रीर भविष्य) के स्रष्टा ^जाग्रमृत्ति, पर, श्रविनाशी, मङ्गलदायक मङ्गलमृत्ति, विष्णु, आदरके

भरत नेजरहित, प्रवित्र, इत्द्रियोंके स्वामी, स्थावर जङ्गम जगत्के राजराज्यकार श्रीहरि भगवानको नमस्कार करके असुतकर्मवाली

महाभारत श्रादिपर्व # (8) प्रत्याचत्तते परे । श्राख्यास्यन्ति तथैवान्य इतिहासिममं भवि ॥२६ इदन्तु त्रिषु लोकेषु महज् बानं प्रतिष्ठितम्। विस्तरैश्च समासैश्च धार्य्यते यद् द्विजातिभिः ॥२०॥ श्रलंकृतंशुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः । छन्दौ-वृत्तेश्च विविधेरन्वितं विदुपां प्रियम् ॥ २८ ॥ निष्प्रभेऽस्मिश्नरालोके सर्वतस्तमसा वृते । वृहद्गडमभृदेकं प्रजानां वीजमव्ययम् ॥ २६ यगस्यादौ निमित्तं तन्महिह्व्यं प्रचत्तते । यस्मिन् संश्रुयते सत्यं ज्यो तिर्द्रास सनातनम् ॥३० ॥ श्रद्धतं चाण्यचिन्त्यश्च सर्वत्रं समतांगतम्। श्रज्यक्तं कारणं सूदमं यत्तत् सदसदात्मकम् ॥ ३१ ॥ यस्तात् पिता महो जल्ले प्रभुरेकः प्रजापितः । ब्रह्मा सुरगुरुः स्थाणुर्मेटुः कः परमे ष्ट्रयथ ॥ ३२ ॥ प्राचेतसस्तथा दत्तो दत्तपुत्राक्ष सप्त है । ततः प्रजानही पतयः प्राभवन्नेकविशतिः ॥ ३३ ॥ पुरुपश्चाप्रमेयात्मा यं सर्वे ऋएय स्वदः । विश्वेदेवास्तथादित्या वसंवोऽथाश्विनावि ॥ ३४ ॥ यद्मार् _ाः पिशाचाश्च गुखकाः पितरस्तथा । ततः प्रसृता विद्वांसः शिष्टा कितने ही कवि पहिले कहचुके हैं, कितने ही इससमय वर्णन करते हैं और श्रागैको भी कितने ही विद्वान इस इतिहासका व्याख्यान करके भूतल पर भले प्रकार प्रचार करेंगे ॥ २६ ॥ यह महाज्ञानरूप भारत तीनों लोकमें प्रतिष्ठा पायाहुआ है और जिसको ब्राह्मणादि द्विज वि-स्तारसे तथा संदोपले पढ़कर धारण करते हैं, यह परम ज्ञानवाली संहिता सुन्दर शब्दोंसे शोभायमान है, देवता और मनुष्योंके वर्णनसे गय अलंकत है, अतेको प्रकारके छन्द और वृत्तोंसे युक्त है तथा विद्वानीको र त्रिय है ॥ २७ ॥ २= ॥ यह जगत् जिस समय तेज श्रीर प्रभासे सर्वधा शन्य था, अर्थात् जव सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था, उस समय युगके आरम्भमें प्रजाओंका अविनाशी वीजरूप एक वडाभारी अगडा प्रकट हुआ, जिसको विद्वान चार प्रकारके प्राणियोंका सहत् श्रीर िदिव्य कारण कहते हैं, उलमें निःसन्देह सत्य, तेजःस्वरूप श्रीर सना तन ब्रह्म सुदमरूपसे वास करता है, पेसा श्रुतियें भी कहती हैं, यह ब्रह्म श्रद्भत, श्रचिन्त्य, सर्वत्र समानरूपको प्राप्त, श्रव्यक्त, सुक्त कारण रूप तथा सत् और असत्रूप है ॥ २६-३१ ॥ उस अगडेमेंसे देवगुरे पितामह, प्रभु ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, वह एक ही प्रजापतिथे, इसपन ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु, देवता, परमेष्टी, दश प्रचेता, दक्त और द सात पुत्र हुए, तद्नन्तर इक्कीस प्रजापति हुए॥ ३२.

m जिसको सब ऋषि जानते हैं पेसा अप्रमेयात्मा के

ब्रह्मविसत्तमाः ॥ ३५॥ राजर्पयश्च बहुवः सर्वैः समुद्रिता गुणैः। श्रापो थौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥ ३६ ॥ सम्बन्सरर्त्तवो मासाः पनाहौरात्रयः शमात् । यद्यान्यव्पि तत्सर्वं संभूतं लोकसान्निकम् ३७ यदिवं दृश्यते किञ्चिद्धतं स्थायरजङ्गमम् । पुनः संविष्यते सर्वे जग-।प्रतो युगन्ते ॥ ३= ॥ यथकांयुनुलिङ्गानि नानाकपाणि पर्य्यये। हश्य-न्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिवु ॥ ३६ ॥ एवमेनद्नाधन्तं भूत-संहारकारकम् । श्रनादिनिधनं लोकं चकं सम्परिवर्त्तते ॥ ४० ॥ श्रय-लेखिशन्सहन्नाणि जयस्त्रिंशच्छ्यानि च । प्रमस्त्रिशच्च देवानां सृष्टिः |संबेपलक्षणा ॥ ४१ ॥ दियः पूजी वृहङ्गानुश्वक्ररात्मा विभावसः। स-विता स ऋचीकोऽकों भानुराशायहो रविः ॥ ४२ ॥ पुरा विवस्ततः वर्षे महास्तेषां तथावरः । देवसाद् ननयस्तस्य सुम्राखिति ततःस्मृतः ॥ ४३ ॥ सुम्राजस्तु त्रयः पुत्राः प्रजायन्तो चहुभूतोः। दशज्योतिः शेत-ज्योतिः सहक्रज्योतिरेव च ॥ ४४ ॥ दश पुत्रसंहस्राणि दशज्योतेर्महा-त्मनः । ततो दश्युणाध्यान्ये शतज्योनेरिहात्मजाः ॥ ४५ ॥ भूयस्ततो दशगुणाः सहस्रव्योतिषः सुनाः । तेभ्योऽयं क्षर्रवंशस्य यद्नां भरत-होनेके पीछे उत्तम शौर विद्वान यहे २ महापि उत्पन्न हुए॥ ३५॥ इन के प्रतिरिक्त सकल श्रेष्ट गुणोंसे प्रसिद्ध धनेकों राजर्षि तथा पृथ्वी, जल, श्राकाश, बायु, श्रम्तरिज्ञ, दिशायें ॥ ३६ ॥ संबत्सर, ऋनु, मास पन, दिन, रात्रि तथा श्रीर जो कुड़ भी लोकमें प्रसिद्ध है वह सय क्रमसे उत्पन्न हुआ। ३७॥ जैसे नाना प्रकारके फल ऋतुक्रीमे कम से आते हैं और ऋनुके बदलने पर शान्त होजाते हैं तैसे ही स्थावर जहमरूप जो प्राणी इस जगत्में दीन्तरे हैं वह सब ही प्रसयकाल श्राने पर कारणमें समाजाते हैं तथा दूसरेयुगके झारम्भ कालमें फिर मकट होजाते हैं ॥ ३= ॥ ३६ ॥ इसमकार अनादि अनन्त प्राणी—पदार्थमात्र का संहार करनेवाला कालचक इस जगत्में निरन्तर धुमता रहता है ॥ ४० ॥ संत्रेपमें देवतात्रोंकी खुष्टि तैतीस हजार, तैतीस सी, तैतीस

* भाषानुवाद सहित *

(4)

पेता शालमें कहा है ॥४३॥ इस सुम्नादके प्रजावाले श्रोर परम प्रसिख बड़ेमारी विद्वान दशज्योति शतज्योति श्रीर सहजज्योति नामयाले तीन पुन हुए ॥ ४८ ॥ महात्मा दशज्योतिक दश हजार इससे दशगुणे शत-ज्योतिक श्रीर उससे दशगुणे पुत्र सहस्रज्योतिक हुए,उनसे कुर, यह, भरत ययाति श्रोर इत्वाकु श्रादि श्रनेको राजियोक वड़े विस्तार वाले

है ॥ ४१ ॥ वृहङ्गानु, चतुरातमा, विसावछ, स्विता माजिक, खर्क, भानु, खाखावत् और रिव इतने दिचकेपुत्र हुग॥४२॥सुर्यके सकत पुत्री में मनु श्रेष्ठ था, उलकापुत्र देवसार् और देवसार्कापुत्र सुभार् हुखा,

श्रन्याय ी

महाभारत श्रादिपर्व # पिहला (8) स्य च ॥ ४६ ॥ ययातीच्वाक्वंशध्य राजवींणाञ्च सर्वशः । संभूता वह वो वंशा भतसर्गाः सविस्तराः ॥ ४७ ॥ भतस्थानोनि सर्वाणि रहस्यं ला त्रिविधञ्ज यत् । वेदा योगः सविशानो धर्मोऽर्थः काम एव च ॥ ४८॥ धर्मकामार्थयकानि शास्त्राणि विविधानि च । लोकयात्राविधानञ्ज सर्वे तदबप्रवान् विः ॥४१॥ इतिहासाः सर्वेयाख्या विविधाः श्रतयोऽपि च इह सर्वमनुकान्तमुक्त प्रन्थस्य लक्त्यम् ॥ ५०॥ विस्तीर्येतन्महज्-बानमिष: संविष्य चात्रवीत । इष्टं हि विदर्षां लोके समासन्यासधा-रणम् ॥ ५१ ॥ मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे । तथोपरिच-रादन्ये विद्याः सम्यगधीयते ॥ ५२ ॥ विविधं संहितालानं दीपयन्ति मनीविणः। व्याख्यातं क्रशलाः केचिद्र ग्रन्थान् धारयितं परे ॥ ५३ ॥ तपसा बहाचर्येण ज्यस्य वेदं सनातनम् । इतिहासमिमं चक्रे पूर्या सत्यवततीस्ततः ॥ ५४ ॥ पराशरात्मजो विद्वान ब्रह्मर्षिः संशितव्रतः ॥ वंश हुए तथा श्रन्य प्राणियोंके विस्तारवाले वंश हुए॥४५-४०॥प्राणिमात्र के रहनेके सकल स्थान जैसे कि-किले. परकोटे. नगर, बाग आदि तथा तीर्थवेत श्रादि पवित्र स्थान, धर्मका तीन प्रकारका रहस्य,वेद अर्थात कर्मकाएड, उपालनाकाएड, ज्ञानकाएड, स्मार्चधर्म, लोकप्रसिद्ध धर्म अर्थ और कामका वर्णन करनेवाले अनेकों प्रकारके धर्मशास्त्र अर्थ-है शास्त्र, कामशास्त्र आदि, जिनसे लोगोंकी आजाविका चलती है ऐसे व आयर्वेद. धत्रवेद. गान्धर्व वेद आदिकी रचना इस सबको योगविद्यार गत्र के प्रभावको वेदव्यासजी जानते थे ॥ ४८ ॥ ४८ ॥ इतिहास और नाना प्रकारकी अतियोको उनके व्याख्यान सहित जानतेथे,यह सब विषयन इसमें कमसे कहे हैं और यह सब ही इस मन्थका विषय है।।५०।।व्यासन ज्यविने इस महान् ज्ञानको संचेपसे और विस्तारसे कहा है, क्योंकि इस जगतमें विद्वान पुरुष संत्रेप और विस्तार दोनो प्रकारसे प्रन्थको य पढते हैं ॥ ५१ ॥ कोई ब्राह्मण इस महाभारतको "नारायणं नमस्कृत्य" यहांसे आरम्भ करके पढ़ते हैं, कितने ही आस्तीक आदिकी कथासे पढनेका आरम्भ करते हैं, कितने ही उपरिचरकी कथासे पढनेकान श्रारम्म करते हैं,दूसरे कोई बाह्यण सकल महाभारतको पढ़ते हैं।।पूर्म कितने ही विद्वान पुरुष इस भारतसंहिताके ऊपर नाना प्रकारकी टीकाएं करके संदिताके ज्ञानको प्रकट करते हैं, कितने ही विद्वानन व्याख्या करनेमें चतुर होते हैं श्रीर कितने ही केवल मुखसे श्रन्थका पाठमात्र करनेमें ही प्रवीण होते हैं ॥५३॥ सत्यवतीके पुत्र व्यासजीने तप और प्रसचर्यके प्रभावसे सनातन एक वेदका विस्तार करके इस महाभारतके पवित्र इतिहासको रचा है॥ ५४ ॥ श्रखएडव्रतधार

श्रध्याय] तदाख्यानवरिष्ठं स फ़त्या हैपायनः प्रमः॥ ५५.॥ फथमध्यापयानीह शिष्यानित्यन्यचिन्तयत् । तस्य तिधान्तितं हात्वा ऋषेग्रंपायनस्य च ॥ ५६॥ तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरुः खयम् । प्रीत्यर्थं तस्य चैवर्षेलोंकानां हितकाम्यया ॥ ५० ॥ तं एष्टा विस्मितो भत्वा प्राञ्ज्ञलिः प्रणतः स्थितः । श्रासनं फल्पयामास सर्वेमीनगर्णवेतः॥ ५= ॥ हिरण्यगर्भमासीनं तर्हिमस्त परमासने : परिवत्यासनाभ्यासं वास-चेयः स्थितोऽभवत् ॥ ५६ ॥ अनुहातोऽथ कृष्णस्त् ब्रह्मणा परसेष्ठिना नियसादासनाभ्यासे प्रीयमाणः शुचिस्मितः ॥ ६० ॥ उवाच स महा-तेजा ब्रह्माणं परमेष्टिनम् । इतं मयेदं भगवन् फाव्यं परमपजितम् ६१ व्रह्मन्वेदरहस्यश्च यद्मान्यत् स्थापितं मया । सांगोपनिपदाष्ट्वेय घेटा-नां विस्तरिक्षयाः ॥ ६२ ॥ इतिहासपुराणानामन्मेपं निर्मितञ्ज यत । भृतं भन्यं भविष्यञ्च त्रिविधं फालसंजितम् ॥ ६३ ॥ जरामत्यगयन्या-धिभावाभावविनिश्चयः । विविधस्य च धर्मस्य धाश्रमाणीश लन्नणम ॥ ६४ ॥ चातुर्वर्ण्यविधानञ्च पुराणानाञ्च कृत्स्नशः। तपस्रो ब्रष्ट्रचर्य्य-

विद्वान पराशरके पत्र, ब्रह्मपि, भगयान क्षेपायन चेदच्यासजीने जब इस उत्तम इतिहासको परा किया उस समय उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुन्ना, कि—मैं यह ब्रन्थ श्रपने शिष्योंको किसप्रकार सिलाऊँ? म्मपि हैपायनके इस विचारको जानकर उन देवर्षिके मनको शान्ति देनेकी तथा लोकोंका हित करनेकी इच्छावाले लोकग्रह भगवान प्राप्ता-जी तहाँ आपहुँचे ॥ ५५-५७ ॥ जिनके चारी और अनेकी मनि चेठे हैं ऐसे व्यासजीने जब ब्रह्माजीको देखा तब उनको श्राश्चर्य हुआ, घह दोनो हाथ जोडकर प्रणाम करतेहुए खडे होगए और प्रह्माजीको ग्रासन दिया ॥५०॥५=॥ व्यासजीके प्रदक्षिणा करलेने पर हिरएयगर्भ ब्रह्माजी श्रेष्ठ श्रासन पर वैठे श्रीर ज्यासजी हाथ जोडेहुए उनके शासन के समीप खड़े रहे ॥ ५८ ॥ श्रीर जब परमेग्री ब्रह्माजीने उनको बैठने की श्राका दी तब पवित्र हास्यवाले वेदव्यासजी बड़े प्रसन्न होकर उनके श्रासनके पास ही नीचे श्रासन पर येंडे ॥ ६० ॥ श्रीर महातेजस्वी व्यासजीने तव परमेष्ठी ब्रह्माजींसे कहा, कि-हे भगवन् ! मैंने यह उत्तम कोव्य रचा है ॥ ६१ ॥ हे ब्रह्मन ! इस उत्तम काव्यमें वेदोंका रहुइय, श्रङ्ग, उपनिपद् श्रोर वेदौंका पूर्ण विस्तार तथा श्रोर भी जो . 🕊 🛭 है उसका विस्तारसे वर्णन किया है ॥ ६२ ॥ इसमें इतिहास और 🏿 गोंका विस्तार कहा है, भूत भविष्य और वर्त्तमान इन तीनप्रकार कालकी संज्ञात्रोंका भी वर्णन है ॥ ६३ ॥ जरा,मृत्यु,भय, व्याधि,

स्तत्व श्रीर विनाशिताका निश्चय भी कियागया है, नाना प्रकार वर्म श्रोर श्राश्रमीके लक्स कहे हैं ॥ ६४ ॥ चारी वर्सीके धर्म श्रीर

H Caronagan Control

1

्र ृधिज्याखन्द्रसूर्ययोः॥ ६५ ॥ त्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणश्च युगैः लह । इहुको पर्कृषि कामानि वेदाल्यातमं तथैव च ॥ ६६ ॥ न्यायशिका चिद्धित्हा च दार्गे पाशुपतं तथा। हेतुनव समं जन्म दिव्यमानुपसं-हित्स् ॥ ६० ॥ तीर्थानाँ क्षेत्र पुग्यानाँ देशानाञ्चत्र कीर्त्तनस् ।नदीनां

पर्वतार प्र बनानां सागरस्य स ॥ ६८ ॥ पुराणां सेव दिव्यानां करपा-हाँ हुकुर्कश्चलम् । चादवजानिविशेपाञ्च लोकयात्राक्रमञ्च यः ॥ ६६ ॥ एक्टादि सर्वगं वस्तु तरुवेद प्रतिपादितम्। परं न लेखकः कश्चिदे तस्य सुद्धि विचते ॥ ७० ॥ ज्ञह्मावाच । तपोविशिष्टाद्पि वे विशिष्टात हुनिल्ङ्क्ष्यात् । सन्ये श्रेष्ठतरं न्दां दें रहस्यद्वानदेवनात् ॥ ७१ ॥ जन्म

प्रसृति सत्यान्ते देशि गां प्रहादादिनीम् । त्वया च काव्यमित्युक्त तस्मात काव्यं भविज्यति ॥ ७२ ॥ घ्रस्य काव्यस्य कवयो न समर्था हिहेन्से : दिहोदसे पृहस्थस्य शेपाख्य इवाधमाः ॥ ७३ ॥ काव्यस्य तेक्त यांच गर्हेतः स्मर्ज्तां सुने। सीतिरुदाच । पवमामाप्य तं

पुरालीका सद जार रक्ता है, तप, पृथियी, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्, बह्नण, दारा तथा चारों युगीका प्रमाण कहा है, ऋग, यजु, सामवेद, प्रज्या-रमशास्त्र, न्याय, चिदिान्या. दान, अन्तर्यामीका माहारम्य तथा देवता झौर महुन्योंके जना, तीर्थ, पविद्य स्थान, निर्देश, पर्वत, यन, ससुद्र,

दिव्य दगर तथा कोट किठाँकी रचना और सेनाके व्यहकी रचना जादिकोशालॉका एसमें वर्णन किया है, नथा इसमें युद्धचातुरी, पृथकर

भाषाची होर प्रजार्कोकी स्तुनि, निन्दा छादि छनेको विपयोका तथा लोकव्यवदारमें उपयोगी नीतिशास्त्रका दिचार तथा अन्य सर्वत्रके उपदोगा दिल्पोंका दिसार इस प्रन्थमें वर्णन किया है, परन्त देसे न प्रनथका हिस्तिवाला हुकै भूमएडल पर कोई नहीं मिलतो॥ ६५॥

॥ ७० ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-तुम्हारे तत्त्वशानके कारणसे में, तपस्याके कारण उत्तर मानेजानेवाले और श्रेष्ठ कुलके गिनेजानेवाले सकल मुनियोंके समृहके सामने आपको ही परमोक्तम मानता हूँ ॥ ७१ ॥ जन्मले ही तुन्हारी ब्रह्मचादिनी सत्यवाणीको में भले प्रकार जानता

हैं, दुसने अपने इस प्रन्थको कान्य नाम से कहा है तो यह जगतमें काव्य ही कहलावेगा ॥ ७२ ॥ ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास यह तीन प्राप्तम जैसे एक गृहस्थ भ्राश्रमसे नहीं बढ़सकते तैसे ही ऐसा होई कवि नहीं है कि जिसका काव्य वर्णन आदिमें इस काव्यसे वढ लक्षे प्रधात तुम्हारा कान्य सकल कान्योका आश्रय होगा ॥ ७३ ॥ हे

हुने ! अब तुम अपने इस कान्यको लिखनेके लिये गणपतिका स्मरण करो अर्थात् उनल विनय करो सौतिकहते हैं, कि-

ी श्रभाषानुबाद सहित श

ब्रह्मा जगाम स्वं निवेशनम् ॥७४॥ ततः सस्मार देरम्यं व्यासः सत्य-वतीसुतः । स्मृतमात्रो गर्धशानो भक्तचिन्तिनपुरकः ॥ ७५ ॥ तत्राज-गाम त्रिन्नेशो वेदच्यासो यतः स्थितः । प्रजितश्चोपविष्टश्च व्यासेनो-

क्तस्तदानघ ॥ ७६ ॥ लेखको भारतस्यास्य भव त्यं गलनायक । मर्येव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ॥ ७७ ॥ श्रृत्वेतत् प्राहः विष्नेष्ठी यद् मे लेखनी चलम् । लिचतो नायतिष्ठेत तदाः स्यां लेखको छहम्

॥ ७= ॥ व्यासोऽप्युवाच तं देवमवुष्या मा लिस प्रचित् । स्रोमि-रियुक्त्या गणेशोऽपि वभूव किल लेखकः ॥ ७६ ॥ ग्रन्थप्रस्थि तदा चम्रे किर्माई छुन्दलात् । यस्मिन् प्रतियया प्राह्मसुनिर्द्धपायनस्चिदस् =० स्राटो क्रोकसहस्त्राणि स्राटो रहोकशतानि च । स्राह्मसे विस्

सङ्जयो देत्ति वा न वा ॥ =१ ॥ तत् श्लोककृटमद्यापि प्रथित्॥ ६६ ॥ सुने । भेत्तुं न शपवतेऽर्थस्य गृडत्वात् प्रश्रितस्य च ॥ =२॥ सर्वपप्राणां गणेशो यत् सण्यास्ते विचारयम् । तावसकारः व्यासोऽपि श्लोदैताम्

कहकर ब्राप्नाजी श्रपने लोकको चलेगए ॥ ७४ ॥ तदनन्तर सत्यव^{भूरे} के पुत्र व्यासजीने, गणपनि का स्मरण किया, स्मरण करते ही भक्ती का मनोरथ पुरा करनेवाले विद्यनायक गणपनि, जहाँ व्यासजी चैठे थे तहाँ श्राकर खड़े होगए, पुजनके श्रनन्तर चैठने पर उनसे व्यास

जीने इस प्रकार कहा, कि—हें पापरहित गणनायक | में श्रपने मनसे रचना करके जिस महाभारत काव्यको वोल् उसको श्राप लिख |तीजिये ॥ ७५—७७ ॥ व्यासजीका यह वचन सुनकर गणपतिने जनर दिया, कि—यदि एक जणको भी मेरी लेखनी चलते में बन्द

उत्तर दिया, कि—यदि एक दाणको भी मेरी लेखनी चलते में वन्द न हो नी में भारतका लेखक वनता हैं॥ ७०॥ व्यासजीने गणेशजीसे कहा, कि—द्राप भी विना समसे कदापि न लिखें, गणपतिने इस वातको लोकार किया और भारतके लेखक वनगण॥ ७६॥ इसके द्रातन्तर व्याससूनि कृत्तुलसे घन्यकी गृह रचना, करनेलगे, व्यास-

श्रनस्तर ब्याससुनि कृत्हलसं घन्यकी गृड रचना. करनेलगे, ब्यास् जीने ब्रापदी कहा है, कि—॥ =० ॥ इस भारत में ब्राठ हजार श्राठसी श्रोक्तांकी रचना ऐसी कठिन है कि—जिनको एक में (स्वयं ब्यास) श्रीर दृखरे शुकदेव जानते हैं श्रीर् कदाचित सब्जय भी जानता हो

श्चार कुसर शुकरव जानत है और कराज्यत सञ्जय मा जानता हा । तो जानता हो ॥ =१ ॥ श्वीर हे मुने । उन कुर श्लोकाँको ऐसा कार्डक श्री सुद्धना करी है, कि—जिनका श्रय होता श्रीर हे श्रीर भासता हू∕ है, श्लीर श्रव भी गृढ़ श्रर्थ होनेके कारण शब्दप्रमाणका श्राश्चय क क

भी उसका श्रर्थ ठीक २ स्पष्ट नहीं कियाजासकता ॥ ६२ ॥ यद्या पति सर्वेद्य हैं तव भी उनको उन कूट ऋोकोंके विषयमें ज्ञणअर विचार करना पड़ता थां, उतने ही समयमें अगवान व्यासजी

वासिक पर्वकृषी घमला है श्रीर मीग्रलपर्व ऊपरके भागमें फैलीहुई वड़ी शाखा है, श्रेष्ठ द्विजकृषी पिल्पोले यह भारतकृषी गृत्त सेवा कियाहुआ है ॥ == -१,॥जैत मेम प्राणियांकी श्रविनाशी श्राजीविका है तैसे ही यह महाभारतकृषी श्रविनाशी हुन भी सकत मुख्य कवियों के जीवनके संमान होगा ॥ ६२ ॥ सुत्वजी कहते हैं, कि —श्रव में को जीवनके समान होगा ॥ ६२ ॥ सुत्वजी कहते हैं, कि —श्रव में

न्नोर विस्तारसे वर्णन है ऐसे भारतरूपी सुर्यसे मनुष्योंके अन्धकार का व्यासजीने नाश किया है॥ =४॥=५॥ पूर्ण चन्द्रमा, चाँदनीसे कमलको खिलाता है तैसे ही यह भारतपुराणरूपी पूर्ण चन्द्रमा भी

वदवाधि शश्वत् पुष्पफलोदयम् ।स्वाहुमेध्वरसोपेतमच्छेयममरैरपि&३ मानुर्नियोगाद्धर्मात्मा गांगेयस्य च घामतः। चेत्रे विचित्रवीर्व्यस्य कृष्णुहेपायनः प्रा। भीनज्ञानिय कौरव्यान् जनयामास वीर्य्यवान् ॥ ६४॥ उत्पार्थे धृतराष्ट्रश्च पाराडुं विदुरमेव च । जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति ॥ ६५ ॥ तेषु जातेषु चृद्धेषु गतेषु परमां गनिम्। ब्रद्भवीद्धारतं लोके मानुपेऽस्मिन्महानृषिः ॥ ६६ ॥ जनमेजयेन पृष्टः हन् ब्राह्मणेश्च सहस्रदाः। शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके \६७ ॥ स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम् । कर्मान्तरेषु तस्य चोत्रमानः पुनः पुनः ॥ ६=॥ विस्तरं कुरुवंशस्य गांधार्य्या धर्म-होलताम्। सत्तुः प्रज्ञां भृति कुन्त्याः सम्यक् हैपायनोऽप्रवीत् ॥ ६६ ॥ पासुरेवस्य माहात्म्यं पाएडयानाश्च सत्यताम् । दुर्च त्तंधार्त्तराष्ट्राणा क्तियान भगवानुपिः॥१००॥ चतुर्विशतिसाहर्सी चक्रे भारतसंहिताम् [मसे उस बृहाके नित्य, पुष्प श्रीर स्वादयुक्त तथा पवित्र रससे भरे हिलक्षप धर्म श्रीर मोज्ञका वर्णन करताहुँ कि-जो देवताश्रीको भी दुर्लभ , तथा पवित्र रससे पूर्ण है,॥६३॥पहिले मातासत्यवती श्रीर गद्धाके 🏋 🖟 द्विमान् पुत्र भीष्मकी श्राहाले वीर्यवान् व्यासजीने विचिववीर्यकी ∥विका श्रादि स्त्रियोंमें भृतराष्ट्र, पाएड, श्रोर विदुर नामवाले श्रक्तिकी मान तेजस्वी तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥६४॥ थीर तद्ननन्तर युद्धिमान् वासजी किर तप करनेको श्रपने श्राश्रमकी श्रोरको चलेगए ।६५। 🛮 ृतराष्ट्र, पाग्डु श्रीर बिहुर वड़े हुए श्रीर वृढे होकर वह परमधाम ित पंचारगए तदनन्तर महर्षि व्यासजीने इस मनुष्यलोक में महावारत क्री प्रसिद्ध किया ॥ ६६ ॥ राजा जनमेजय तथा दूसरे सहस्री ब्राह्मणीके प्रश्न करने पर व्यासजीने। अपने पास बेंडेहुए वैशस्पायन त्रामक शिज्यको यह महाभारत पढ़ाया था, तदनन्तर यज्ञकर्ममें श्रव-हाश मिलनेके समय वारंबार कहनेले समासद्दोंके साथ बैठकर वैदाruयनको श्रौर सभासदीको सुनानेके लिये श्राज्ञा करने पर वैशस्पा-पनने वह भारत सर्व सभासदीको सुनाया है ॥ ६७ ॥ ६⊏ ॥ इस पहाभारतमें ऋषि वेदव्यासजीने कुरुवंशका विस्तार,गान्धारीकी धर्म-भीलता,विदुरकी बुद्धिमानी,कुन्तीका धेर्य कहा है ॥**८**६॥भगवान् कृष्ण पवित्र माहातम्य, पाएडवीकी सत्यता श्रीर धृतराष्ट्रके पुत्रीका भाचरण पूर्णरीतिसे वर्णन किया है ॥१००॥ पवित्र कर्म करनेवाले रीन पुरुपीके चरित्रोंके सहित यह महाभारत एक लाख है,

्तु पहिलेतोकथामागको छोड़कर व्यासजीने भारतसंहितामात्र बीस सहस्र श्लोकोकी रचो थी और उसको विद्वान पुरुप भारत

भाषाञ्चवाद् सहित

श्रध्याय ी

श्रवक्रमणिकाका संवित श्रध्याय डेढसी श्लोकीका रचा॥१०२॥श्ली उन व्यासजीने पहिले यह महाभारत श्रपने पत्र शुकदेवजीको पढाय फिर उनकी समान ही गुणवान इसरे शिष्योंको भी व्यास मनि भारत पढाया था, ॥१०३॥ तदनन्तर और भी साठ लाख ऋोकीन महाभारत बनाया,उनमेंसे तीस लाख श्लोक देवलोकमें, पन्द्रह लार पितुलोकमें श्रोर चौदहलाख गन्धर्च लोकमें पहुँचगपहें श्रोर केवलप्य लाख श्लोकहो मनुष्यलोकमें रहे हैं॥१०४॥१०५॥वह भारत नारदमनि ने देवलोकको, देवल ऋषिने पितलोकको, ग्रुकदेवजीने गन्धर्व, यह श्रौर राज्ञसोंको सुनाया ॥१०६॥ श्रौर इस मनुष्यलोकको व्यासमुनियं परमशिष्य धर्मात्मा श्रीर सकल वेदवेत्ताश्रीमें श्रेष्ठ वैशम्पायनजीने सनाया है वह एक लाख स्होकोंका महाभारतहै.जो कि-मैंने तमसे कहा है ॥ १०७ ॥ कर्णक्षी स्कंध शक्तिक्षी शाखा दःशासनक्षी फल पुष्पोकी सम्पदा और अल्पवृद्धि धृतराष्ट्ररूपी मृल वाला दुर्यो धनरूपी कोधमय एक बड़ाभारी बृक्त है॥ १०=॥ श्रीर श्रर्जनरूपी स्कंब, भीमसेनरूपी शाखा श्रीर नकुल सहदेवरूपी फल पुष्पीकी सम्पदावाला तथा श्रीऋष्ण, ब्रह्म श्रीर ब्राह्मण यह जिसकी मुल है पेसा एक युधिष्ठिररूपी धर्ममय वृत्त है ॥ १०८ ॥ वृद्धि और पराक्र-मसे वहतसे देशों को जीतकर राजा पाएड शिकार खेलनेकी इच्छासे एक वनमें जाकर मुनियोंके साथ वसे थे ॥ ११० ॥ तहां उन्होंने एक

महाभारत आदिपर्व

(१२)

पिहिला

श्रभाषानुवाद सहित श्र (१३) अध्याय] वायनिधनात् कुरुक्षां प्राप स श्रापदम् । जन्मप्रभृति पार्थानां तत्राचार विधिकमः ॥ १११ ॥ मात्रोरभ्यपपत्तिश्च धर्मोपनिपदं प्रति । धर्मस्य वायोः शक्रस्य देवयोश्य तथाश्विनोः ॥ ११२ ॥ तापसीः सह् संबृद्धा मात्भ्यां परिरक्तिताः । मेध्यारएयेषु पूर्वेषु मद्दतामाश्रमेषु च ॥११३॥ ऋषिभिर्यत्तदा नीता धार्त्तराष्ट्रान् प्रति स्वयम् । शिशवशाभिरुपाध जटिला ब्रह्मचारिणः ॥ ११४ ॥ प्रवाश्च भातरखेमे शिष्याश्च सहदश्च वः । पाण्डवा एत इत्युत्क्वा मुनयोऽन्तर्हितास्ततः ॥ १६५ ॥ तांस्तैर्नि वेदिनान् इष्ट्रा पारङ्यान् कौरवास्तदा । शिष्टाश्च वर्णाः पौरा ये ते हर्राञ्कलुर्भ्शम् ॥ ११६ ॥ आहुः केचित्र तस्येते तस्येत इति,चापरे । यदा चिरमुतः पाएडःकथन्तस्येति चापरे ॥ १९७ ॥ स्त्रागतं सर्वथा विष्या पार्गडोः पश्याम सन्ततिम् । उष्मतां स्वागतमिति वाचोऽश्र-मुगरूपधारी ऋषिको, मैथुनके समय मारकर श्रपने शिर पर बड़ी भारी श्रापत्ति लेली थी, जो श्रामैको पाएडवाँके जीवन पर्यन्त उनके कुलाचारकी रीतिके लिये, एक चेतावनी रूप हुई थी॥ १११॥ तद-नन्तर राजा पागडुको दोनों ख्रियोंने विचार किया, कि-प्राचीनकाल में राजाश्रोंकी कुलीन ख्रियोंने सन्तान के लिये महात्मा प्राप्तिकी प्रार्थना की है, तैसे ही उन दोनों रानियोंने आपित्तकालमें खीधर्मको खीकार करके दुर्वासाके मंद्रका श्रवुष्टान किया, तय धर्म, वायु इन्द श्रीर दोनों श्रश्वनीकुमार उन रानियाँके पास गए तथा उन्होंने रानियाँ में पत्र उत्पन्न किये ॥ ११२ ॥ छोर जब बहु उन पवित्र बनोमें तथा वड़े भारी श्राश्रमोमें श्रवनी दोनों माताश्रीके श्रभीन रहकर तपखियों के रहा करने से यडे हुए ॥ ११३ ॥ तय उन जटाधारी शार योग्य ब्रह्मचारी वालकोंको ऋषि स्वयं ही धतराष्ट्र और उनके प्रशेक पास लेश्राये ॥ ११४ ॥ धृतराष्ट्रके पास आकर ऋषियोने कहा, कि-यह तुम्हारे पुत्र, शिष्य, भाई तथा संबन्धी हैं, यह पाराडुके पुत्र हैं, पैसा कहकर ऋषि तहांसे शन्तर्धान होगए ॥ ११५ ॥ ऋषियोंके वतायेहए पाएडवोंको देखकर उस समय कौरव श्रीर नगर के जो प्रतिष्ठित गृहस्थ थे वह हर्पकी गर्जना करने लगे ॥ ११६ ॥ उनमेसे किन्हीने कहा, कि—कदाचित् यह पाएडुराजाके पुत्र न हो ? तो दसरीनेकहा कि—यह राजा पाएडके ही पुत्र हैं, कितने ही यह भी कहनेलगे,

कि—राजा पाराडुको तो मरेहुए बहुत दिन होगए और यह तो बालक हैं फिर यह उनके पुत्र कैसे होसकते हैं ?॥१९०॥ ऐसी होज पर भी चारों ओरले नगरनिवासी बोलउड़े, कि—रनका श्रांग बड़ा ही अच्छा हुआ, हमारा वड़ा भाग्य है जो हम आज राजा पाराडु की

महाभारत आदिपर्व # िपहिला (\$8) यन्त सर्वशः॥ ११= ॥ तस्मित्रुपरते शब्दे दिशः सर्वा निनादयन् । द्यान्तर्हितानां भूनानां निःस्यनस्तुसुलोऽभवत् ॥ ११६ ॥ पुष्पबृष्टिःश्रुमा ्रान्धाः अञ्चर्द्विमिनिस्बनाः। श्रासन् प्रवेशे पार्थानां तद्द्वतिमचामवत् ॥ १२० " तस्त्रीत्या चैत्र सर्वेषां पौराणां हर्पसम्भवः। शब्द आसीन्म हांन्द्रम दिवरमुक्कीत्तिवर्द्धनः ॥ १२१ ॥ तेऽधीत्य निखिलान्वेदांश्खा-राजि विविधानि च । न्यवसन् पाएडवास्तत्र पूजिता श्रकुतोमयाः॥ ॥ १२२ ॥ युधिष्ठिरस्य शौचेन प्रीताः प्रकृतयोऽभवन् । घृत्या च भीम-सेरस्य विक्रतेलार्जनस्य च ॥ १२३ गुरुशुश्रुपया कुन्त्या यमयोर्विनयेन च । तुद्दोर होकः सकलस्तेषां शौर्यगुर्णन च ॥ १२४ ॥ समवाये ततो राहाँ कन्यां भक्त एक्यस्वराम् ।प्राप्तवानर्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म सद्द्रक रम् ॥ १२५ ॥ नंतःप्रमृति लोकेऽस्मिन् पूज्यः सर्वधनुष्मताम्। श्रादित्य इव दुष्टेच्यः जनरेष्यपि चाभवत् ॥ १२६ ॥ स सर्वान् पार्थिवान् जि-त्दा सहीक महती गणात् । श्राजहारार्जुनी राको राजसूर्य महाऋतुम् सन्तानको देखरहे हैं, यह सुनकर पाएडव भी कहनेलगे, कि-हम हापके पान इनरूप, यह अच्छा हुआ, इस बातको भी सबने सुना ११= यह वार्त होच्छन यर न दीखनेवाले प्राणियोंका सव(दिशाश्रोंको गुंजा-नेवाला बङ्गामानी शब्द हुन्ना ॥ ११६ ॥ पाएडदीने नगरमें प्रवेश करा उस समय प्राकाशनेंसे सुन्दर गन्धवाले उत्तम पुण्पीकी वर्षा हुई ग्रीर हांक तथा बुद्धियें वजनेलगी यह देखकर सर्वीने वड़ा आश्चर्य नाना॥१२०॥ उस समय पाएडबोके अपर प्रेम होनेके कारण सकल पर दासियोक्षी सन्तोपस्चक बड़ी हर्षध्विन हुई जिससे स्वर्गपर्यन्त उन पार्ड्योकी कीर्त्ति ज्ञानई॥ १२१॥ तदनन्तर पार्ड्य संपूर्णवेद तथ। कीर अनेकी बाल्बोंको पढ़कर सर्वथा निर्भय हो, सबसे आदर पातेहृय हस्तिवापुरमें रहनेत्तने ॥ १२२ ॥ फिर्फ़ गौचले शीमसेनके धैर्यसे अर्जुनके पराक्रमसे, कुन्ती की गुक्लेवासे तथा नकुल श्रीर सहदेवके विनयसे परम श्रानन्द को प्राप्त हुए, इतनाही नहीं, किन्तु सव लोग उनके गुण और शूरताले दड़े प्रसन्न हुए ॥१२३ ॥ १२४ ॥ तदनन्तर स्वयंवरको मण्डप में इकहें हुए राजाओंको समुहमें महाकटिन (मत्स्यको वेधने-का) पार्श करके अर्जुनने द्र पदकी कन्या द्रौपदीको जो खयं ही वर-को खोकार करनेको तत्पर हुई थी, उसको वरा ॥ १२५ ॥ उस समय से झर्डुन इस लोकमें सकल धनुषधारियों में श्रेष्ठ श्रीर सूर्यकी समान संप्राममे भी श्रहत होगया ॥ १२६ ॥ तदनन्तर श्रर्जुनने श्रास पासके खब राजाओं को तथा दसरी कितनी ही प्रजाओंको जीता और वास देशको न्यायको तथा भीमसोन और अर्जनको बलसे, घमएडमें भरेहप्

 भापानुवाद सहित # ध्राध्याय ी (१५. ॥ १२७ ॥ श्रवचान् दक्तिणाचांश्यसर्वेः समुदितो गुर्णेः ॥ युधिष्टिरेण संप्राप्तो राजसूयो महाऋतुः ॥ १२= ॥ सुनयाद्वासुदेवस्य भीमाज्ञनव-लेन च । घातयित्वा जरासन्धं चैद्यञ्च वलगर्वितम् ॥१२६ ॥ हुर्ग्यी-धनं समागच्छन्नईशानि ततस्तनः।मशिकाञ्चनरजानि गोहरूत्यश्चधनाः नि च ॥ १३० ॥ विचित्राणि च वासांसि प्रावारावरणानि च । कम्ब-लाजिनरत्नानि राद्धवास्तरणानि च ॥ १३१ ॥ समुद्धान्तां तथा रष्टा पारडवानां तदा श्रियम् । ईर्ण्यासमुत्थः सुमहांस्तरेय मन्युरजायत ॥ ॥ १३२ ॥ विमानव्रतिमान्तत्र मयेन सुरुत्ती सभाम् । पारडवानासुप-हतो स हष्ट्रा पर्व्यतप्यत ॥ १३३ ॥ तत्रायहसितधासात् प्रस्कन्द्शिय सम्ब्रमात् । प्रत्यन् वासुद्वस्य भीमेनानभिजातवत्॥१३४॥ स भोगान् विविधान् भृज्जन् रत्नानि विविधानि च । कथितो धृतराष्ट्रस्य विवर्णो हरिएः कृशः ॥१३५ ॥ श्रन्वज्ञानात्ततो धृतं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः। तच्छु-जरासन्ध श्रीर चेदिराज शिशुपालको मारकर, यशके योग्य श्रन्त, दक्षिणा त्रादि जो जो वस्तुएं त्रावश्यक थीं उन सबको इकट्टा कर राजस्य नामक महायदको करनेका उद्योग किया अर्थात् राजा युधि-व्डिरने राजसूय महायदा किया ॥ १२७—१२६ ॥ यहामें नानाप्रकारकी भेंट लेनेके लिये दुर्योधनको नियत किया था, यहके समय श्रनेको राजाश्रोंके यहाँसे मणि, सुवर्ण, रत, गी, हाथी, घोड़े श्रीर शनेकी प्रकारके धन ॥ १३० ॥ विचित्रप्रकारके वस्त्र, पहरनेकी साड़ियें श्रोह-नेके वस्त्र, उत्तम शालके जोड़े, बहुमूल्य मृगचर्म, रंकु नामक मृगके रुएंके वने गलीचे आदि भेटें दुर्योधनके पास आई॥ १३१॥ इसप्रकार पारडवॉकी लक्ष्मीको बढ़तीहुई देखकर डाहके कारण दुर्योनको बड़ा-ही क्रोध श्राया ॥ १३२ ॥ तथा सहसा जलके स्थानपर धलका छीर थलमें जलका तथा द्वार न हो तहाँ द्वारका भ्रम डालनेवाली, विमान की समान श्रद्धत, मच दानवने वनाकर पाएडचोंको भेट की हुई पाएडवीं कीं सभाको देखकर दर्योधनको वडाही टःख हुआ ॥६३३॥

द्योंधनको फोधजनित होमके कारण समामें, विदा होते समय जल म थल श्रोर थलमें जलका भ्रम होनेलगा उस समय शीमलेवने श्रीकृष्णके सामने उसकी पक शामील पुरुषको समान हरेंसी करी ॥१३८॥ इसकारेण नान प्रकारके भोगोंको भोगता श्रोर नाना प्रकार के स्जाटि शामूपलों को धारण करताहुआ भी द्योंधन प्रतिहित पोके रंगका होता हुआ सुखनेलगा ॥१३५ ॥ यह वात जब धृतराष्ट्रके जान नेमें शाई तव उन्होंने पुत्रकेळपर बड़ाभारी प्रेम होनेके कारण शुशि-ष्टिरके साथ जुआ खेलनेके लिये अपनी संगति दी, यह वात श्रीकृष्ण

[पहिला (१६) # महाभारत श्रादिपर्व # त्वा वासुदेवस्य कोपः समभवन्महान् ॥ १३६ ॥ नातिप्रीतमनाध्यासी-द्विचादांश्चान्वमोदत्। चतादीननयान् घोरान् विविधांश्चाप्यपैकृत १३७ निरस्य विदुरं भीषां द्रोणं शारद्वतं रूपम् । वित्रदे तुमुले तस्मिन् दद त् त्तवं परस्परम् ॥ १३= ॥ जयत्सुपारडपुत्रेषु श्रुत्या सुमहद्वियम् । दुर्ग्योधनमतं शात्वा कर्णस्य शकुनेस्तथा ॥१३६॥ यृतराष्ट्रश्चरं ध्यात्वा सञ्जयं वापवमद्यवीत् । शृणु सञ्जय सर्वं मे न चास्यितुमर्रास १४० श्रतवानसि मेथावी बुद्धिमान् प्राप्तसम्मतः। न विग्रहे मम मनिन च भीये कुलक्तये ॥ १४१ ॥ न मे विशेषः पुत्रेषु स्वेषु पागदसुनेषु वा । वृद्धं सामस्यस्यनित पुत्रा मन्युपरायणाः ॥ १४२ ॥ श्रहं त्यचनुः कार्पग्यात् पुत्रप्रीत्या सहामि तत् । मुखन्तं चानुमुछामि दुर्ग्योधनमचेतनम् १४३ राजसूर्ये श्रियं रहा पाएडवस्य महीजसः।तद्याबहसनं प्राप्य सभारी-ह्रणदर्शने ॥ १४४ ॥ श्रमर्पणः स्वयं जेतुमशक्तः पाएडवान् रणे । निरु-के कानमें पड़ते ही उनको बड़ा फोध स्त्राया ॥ १३६ ॥ स्त्रीर बह मनमें श्रधिक प्रसन्त नहीं रहे तथा उन्होंने विवाद श्रीर जए श्रादि श्रनेकों भयानक श्रन्याय होने दिये ॥ १३७ ॥ तथा तुमुल युद्धमें विदुर, भीष्म, द्रोण श्रीर शरद्वतके पुत्र कृपाचार्य का तिरस्कार करके दुर्योधन, चत्रियोका परस्पर संहार करनेलगा ॥ १२= ॥ विजय करनेको जातेहुए पाण्डुपुत्रोंके, मन दुखानेवाले महौ-विजयको सुनकर तथा चाहे प्राण चलेजायँ परन्तु श्राधा राज्य नहीं देंगे. ऐसी दुर्योधन कर्ण श्रीर शकुनिकी हठको जानकर ॥ १३८॥ वहत देर विचार करके राजा भूतराष्ट्रने सञ्जयसे कहा, कि-हे संजय ! मैं जो कुछ कहताहूँ, उस सबको तू सून, इस विषयमें मुक्ते बुराई नहीं देना चाहिये ॥ १४० ॥ वर्षोकि-त् शास्त्रक्ष, बुद्धिमान्,

घारणायक्तियाला श्रीर थिद्वानोमें प्रतिष्ठित है, मेरी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी श्रीर कुलका नाग्र हो इसमें भी में कुछ प्रसल नहीं था ॥ १२४ ॥ मुझे श्रपने पृत्रोमें छोर पाएडके पृत्रोमें कुछ भेदभाव नहीं था ॥ १२४ ॥ मुझे श्रपने पृत्रोमें छोर पाएडके पृत्रोमें कुछ भेदभाव नहीं था, तथाधि मेरे पृत्र कोधमें होकर मुझ पृत्रे की निन्दा करते हैं १२५ हे संख्य ! में खन्या होनेसे लाचार हैं इसीसे पुत्रोके मेमके कारण में यह सब सहरहा हैं, श्रीर श्ररपद्धि दुर्योधन जैसे मोहदश मुखता करता था उनसे हैं १२६ राजस्य यवने समय महावीर पाएडवाँकी लक्ष्मीको देखकर तथासमा भवनामें चढ़ते समय और उसको देखते समय श्रपनी हँसीहर्ष थी, इसकारण ॥ १२४ ॥ मेरे पुत्र दुर्योधनको वड़ा कोध श्राया, वह राण्डें पाएडवाँकी जीत भी नहीं सकता है और हावन होत्र होत्र भी श्रप्त हात्र मार्थ मेरे स्व

अभाषानुवाद सहित श (१७) श्रम्याय ी रसाद्य सम्प्राप्त् सुधियं चित्रयोऽपि सन् ॥ १४५ ॥ नान्धारराजस-हितः छुन्नयुत्तममन्त्रयत्। तत्र यद्यद्यथा ज्ञातं मया संजय सच्छण् ॥ १४६ ॥ श्रुत्वा तु मम वापवानि वुद्धियुक्तानि तत्वतः । ततो प्रास्यसि मां सीते प्रजाचन्पमित्युत ॥ १४७ ॥ यदाश्रीपं धनुरायस्य चित्रं विद्धं त्तद्यं पातितं वै पृथिवशाम् । कृप्णां हतां प्रेचतां सर्वरायाम तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४= ॥ यदाशीपं द्वारकायां सुभद्यां प्रस-छोडां माध्यीमर्जनेन इन्द्रप्रस्थं वृष्णियीरी च याती तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १४६ ॥ यदाश्रीपं देवराजं प्रविष्टं शरेदिंग्यैवारितं चार्जनेन । श्रशि नदा तर्पितं खांडचे च तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५०॥ यदाशीपं जानुपाहरमनस्तान्मुकान् पार्थान् पंच फत्या समेतान् । युक्तं चैपां विदुरं स्वार्थसिद्धौ तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५१ ॥ यदाश्रीपं द्रीपदी रंगमध्ये लच्यं भित्वा निर्जितामर्ज्नेन । शरान्पाञ्चालान्पाएडवेयांख युक्तान् तदा नाशंसे विजयाय संजय १५२ सामर्थ्यसे सम्पत्ति प्राप्त करनेमें उत्साह होन है॥ १४५ ॥ ध्रतः उसने एकान्तमें गान्धारराजशकुनिसे कपटसे जुला खेलनेका विचार किया. परन्त हे सन्जय उस विचारके पहिले और पीछे पाएडबॉकोजीतनेकी थाशा भंग करनेवाले जो २ यानक बने हैं, मैंने उनको जिस प्रकार जाना है सो तुमसे कहताहुं सुन ॥ १४६ ॥ हे सब्जय त् मेरे बुद्धियुक्त वाववींको अञ्छीपकार सुनकर मुभको प्रशाचन जानेगा ॥१४०॥ जब अर्जुनने हाथमें धनुष लेकर अञ्चन लदयको वेथे पृथ्वीमें गिरादिया और संय राजाश्रोंके देखतेही राजा द्रपदकी कन्या द्रौपदीको हरिलया, ऐसा मैंने सुना तवसे मुभी विजयकी आशा नहीं रही ॥ १४= ॥ मधुवंशमें उत्पन्न हुई सुभद्राको चलात्कारसे हरकर श्रज्य उसके साथ द्वारिकामें विवाहा गया तो भी वृष्णिवंशके दी शर्बीर हेपको त्याग मित्रभावसे इन्द्रप्रस्थमें आये जब मैंने ऐसा सेना तवसे हे सञ्जय मैं विजयकी श्राशा नहीं रखता जॅब मैंने सुनाकि-श्रर्जुनने वृष्टि करतेहुए देवराज इन्द्रको दिञ्च वाणींसे रोकॅदिया और खागडव बनकी विल देकर श्रम्निको तुप्तकरा तयसे हे सञ्जय में विजयकी आशा नहीं करता॥ १५० " व मैने सुनाकि-लाखके घरमें छुन्तीके साथ पाँची पागडर आशा नहीं रही विदर पाएडवीके हितकारीकायमें ही लगे हुए हैं तसे घोपयावामें जाते मर्भ विजयकी श्राशा नहीं है॥१५१॥रंगभूमिमें स्वकी शर्ज नने छडाया पदीको चिनाहा शीर पाञ्चालदेशुके कि गरी ॥१६५ ॥ हे सत जब भूक्या तबसे अक्षिप धारणकर चुचिष्ठिरके समीप ंजगये ^{ही}ं युधिष्ठिरंते उनका प्रत्युत्तर दिया हे तुमको विजयको श्राशा नहीं रही॥१६६॥ हे संजय जब

ः महाभारत श्रादिपर्घ 🏶 पहिल ववाधीपं मागधानास्वरिष्ठं जरासम्धं द्यमध्ये उवसंत । वोभ्या व्रतं भीमसेनेन गत्वा तका माशंसे विजयाय संजय ॥ १५३ ॥ यदाओं वं दिग्जये पाएडपनैर्वशीकृतान् भूमिपालान् प्रसद्य । महाऋतुं राजस्यं कृतं च तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५४ ॥ यदाभीष वीपवीसथकण्डी सभा नीतां वःखिनामेकवद्यां । रजस्वली माथण-तीमनाथवंत्तवा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५५ ॥ यदाश्रीपं घाससी-तत्र राशि समाज्ञिपत कितवो मन्दयुद्धिः । द्वःशासनी गतवानीव चान्तं तदा नाशंसे विजयाय० ॥ १५६ ॥ यदाश्रीपं हतराज्यं युधिष्ठरं पराजितं सौवलेनात्त्वत्यां । अन्वागतं भ्रातुभिरममेयैशत्वा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५७ ॥ यवाश्रीपं विविधास्तव चेष्टा धर्मात्मनां प्रस्थितानां चनाच ॥ ज्येष्रप्रीत्या जिल्लायतां पागञ्जवामां तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५६ - यदाश्रौपं स्नातकानां सहस्रौ रन्वागतं धर्मराजं वनस्थं। भिनाभजां ब्राह्मशोनां महात्मनां तदा ज्ञतियोंमें श्रेष्ठ मगधदेश के महाराज जरासंधको भीमलेनमे केवल दो भजाओंसेही मारडाला जवमैने ऐसा सना तबसे है सञ्जय मुस्तै विजयकी श्राशा नहींरहीर५३पांडवीने दिग्विषयमें पृथ्वी के राजाश्चीको वलात्कारचे जीतकर राजस्य नामवाला महायज्ञ करा। पेसा मैने स ना तपसे हे संजय मक्ते विजयकी श्राशा नहीं रही १५४ हे सब्जय जो एकही वहा पहिरे रजस्वला शर्थात ऋतमती और श्रभ-प्रवाहसे गद्भव कण्ठवाली तथा दुःखसे जिसका हृदय सन्तम होरहा था पेनी प्रतिमति दौपदीको अनाथ खीकी समान सभामें खेंचा और द:ख दिया जब मैंने पेसा सना तबसे मुक्ते विजयकी आशा नहीं रही १५५ मन्यविद्ध दृष्ट दःशासनने एकवस्त्रधारिणी द्रौपदीका वस्त्र खेँचना प्रारम्भ किया परन्तु उसका श्रंत नहीं पाया श्रीरवल्लोंका देर लगगया, हे सहजय जब मैंने ऐसा सना तबसे मुक्ते विजयकी आशा नहीं रही ॥ १५६ ॥ शकुनिसे जुएमें हारे हुए तथा राज्यसे मूट हुए राजा यथि-विरक्षे पीछे श्रपार बलवाले उनके भाई जाते हैं हे सब्जय ! जब मैने ऐसा सना तवसेही मुझै विजयकी आया नहीं रही १५७ धर्म निष्ठ पांडप वनको जाते समय अपने वड़े भाईके दुःखको देखकर उनसे अधिक प्रीति होनेके कारण बहुतही खिन्न हुए और उन्होंने बाहु आदिसे बहुत ्रेडरके श्रपना पराक्रम सुचित किया हे संजय! जब भैने ऐसा करता है तैसे ही उसे विजयकी श्राशा गहीं रहीं॥१५=॥ जब मैंने सुना कि-राजसूय यक्षके समय महे छ ब्रह्मचर्यावरुथामें विचा पढ़कर उस विद्यानत भवनमें चढ़ते समय और स्नाप्तः और भिद्धासे आजीविका चलानेवाले इसकारण ॥ १४४ ॥ मेरे पुत्र दुर्योधन हे संजय! केंउसीसमयसे विजयकी पागडवीको जीत भी नहीं सकता है श्रारकार्य हान्छन

श्रध्याय े भाषानुवाद सहित (33) नाशंसे विजयाय संजय ॥ १५८ ॥ यदाश्रीपसर्ज्नं देवदेवं किरातरुएं इयम्बर्कतोष्य युद्धे । श्रवासयन्तं पाशुपतं महारतं तदा मारांखे विजयाय ० ॥१६०॥ गदाशीपं जिहिबस्थं धनंत्रयं शुकारसाकायु विबय-सस्यं राषायत । छाषीयानं शंसितं स्तरमसंघं तदा गाशंसे विजयाय० ॥ १६१ ॥ यदाश्रीपं कालकेयास्ततस्ते पीलोशानो वरदानाद्य हताः देवैरजेया गिर्जिताधार्जुनेन तदा नःशंखे विजयाय संजय ॥ १६२ ॥ यदाश्रीपमसराणां घघाधं किरोटिनं यातमभित्रकर्षण्यः । इतार्थं चाप्यागतं शक्ततोकालदा माशंसे विजयाय संजय ॥ १६३ ॥ यदा श्रीपं पैश्रवण्ने सार्वं समागतं भीममन्यांश पार्थान् । तस्मिन्देशे मातुषाणामगम्पे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १६४॥ यशाश्रीपं घोष-यात्रागतानां बंधं गन्धवैमीज्ञणं चार्जनेन । स्वेषां खुतानां कर्ण-बुद्धी रतानां तदा नाशंसे विजयाय० ॥ १६५ ॥ यदाश्रीपं यक्तरूपेण धर्मै समागतेन धर्मराजेन सुन । प्रशान फांधित विद्धाण्य सम्यक्ष तदा नागले विजयाय संजय ॥ १६६ ॥ यदाधीयं न विद्यम्भिकास्तान्य-श्रामा नहीं रखता हूँ ॥ १५८ ॥ जब मैंने सना कि—ग्रर्जुनने किरात के पेपमें धायेष्ट्रप देवींके देव भगवान् शंकरको युद्धमें श्रतिप्रसन्त करके उनसे पाश्रपत नामवाला महास्त्र प्राप्तकर लिया, हे संजय! तव से मुर्भी विजयकी आशा नहीं रही॥ १६० ॥ मैंने जिलसमय जना कि सत्यबादी फीलिमान धनव्ययने देवलोकमें जाकर साधात इन्ट से दिन्य श्रस्त्रविद्याकाष्यध्ययन करा है, हे संजय तबसे मुक्त दिजय की बाग्रा नहीं रही १६१हें संजय जिस समय मैंने सुना कि-श्रज नने देवलोक्समें जानेके पथात वरदानके प्रभावसे देवताश्रीसेभी श्राज्य मदोन्सत फालकेय श्रीर पीलोम नामके राज्यसीको जीता है तयसे मुक्तै विजयकी प्राप्ता नहीं रही॥ १६२ ॥ जब मैंने सुना कि शबुक्री के प्राणनायक अर्जुन अस्ट्रीका वध करनेके लिये इदलोकमें गये तदनंतरश्रनेकी श्रसुरी को हराकर स्वर्गकोक से लौट श्राये हैं तवसे हे संगपसुसै विजयकी भाशा नहीं रही॥१६३॥ जिस समय मैंने छुनाकि भीमसेन तथा परहराजके हुसरे पुत्र, जहां मनुष्य नहीं जासके ऐसे देशमें फ़ुवेरके साथ गये हैं, तबसे सुक्तको विजयकी श्राहा नहीं रही १६४ जिससमय मैंने सुना कि-कर्णकी सम्मतिसे घोषयात्रामें जाते हुए मेरे पुत्रोंका गंधवीने वन्दी करितया श्रीर उनकी श्रर्ज नने छुडाया तवसे हे संजय मुक्ते विजयकी बाशा नहीं रही ॥१६५ ॥ हे सूर्त जव मैंने सुना कि-धर्मराजने यक्तका रूपधारणकर गुधिष्ठिरके समीप श्रा बहुतसे प्रश्न किये श्रीक युधिष्ठिरने उनका प्रत्युत्तर दिया हे संजय तवसे मुसको विजयकी श्राशा नहीं रही॥१६६॥ हे संजय जव

पहिल सहाभारत छ।दिपर्ध क्ष व्हाबसपार् रासदः पाराउवेयान् । विराहराष्ट्रे सह क्रप्णया विजयाय संजय

सन्तान ।

(د ت

हामण गन्दरिक्षान धनंजयेर्वेकरथेर

इल्टरं जहारमना तदा नाशंसी विजयाय संजय ॥ १६= यराज्यतं करहतः सन्स्यराहा सुनां दत्तामुत्तरामज्ञनाय । ताञ्चार्जुनः प्रकार हुनार्थे तदा नारांसे विजयाय सम्जय ॥ १६६ ॥ यहाशीपं हिर्ज्ञिनस्याधनस्य प्रज्ञाजितस्य स्वजनात्प्रच्युतस्य । श्राक्वीहिएयः सप्त-यधिद्विरस्य तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १७०॥ यदाश्रीपं माधवं बाल्दंदं लर्दात्नना पाएडदार्थं निविष्टम्।यस्येमां गां विक्रमसेकमाहुस्तदा नालंदी विजयायक ॥ १७१ ॥ यदाश्रीपं नरनारायणी तौ सुप्लार्जनी बहनी राजदन्य । अर्त द्रष्टा व्यालोकी च सन्यक् तदा नाशंकी विज-दाद 🔈 🖰 २७२ ॥ यहाश्रीपं लोकहिताय कृष्णं शमार्थिनमुपयातं क्रवरणन् । यसं क्षत्रीलयक्षतार्थञ्च यातन्तदा नाग्रंसे विजयाय संजय ॥ १७६॥ पदार्शं रं कर्ण्डुचोधनाभ्यां दुर्द्धि छतां निष्रहे केशवस्य । तं र्मने लुकाकि—हो उद्दीके साथ राजा दिराटके नगरमें छुपक**र रहते** हुए पारवर्शको बुंदकेन मेरे पुत्र सफल नहीं हुए तबसे मुमको विजयकी दानम करीं रही ॥ १६० ॥ जब मैंने चुनाकि-विराट नगर में रहते हुए लहेके नहारमा एक्नीनने ही घेनुओं के हरणके समय रथमें दैठ मेरी होत्के करेको पोदार्झाको हरा दिया है सन्कय तबसे सुभी विजयकी प्राप्ता नहीं रही ॥ १६= ॥ जब मैंने सुनाकि—मत्स्यदेशके रोजाने रायनी लर्बगुणालंकत उत्तरा नामकी कन्या अर्जुनको े सत्कारके लाय देनेकी विनती करी और अर्जुनने वह कन्या अपने पुनके लिये हे ली तपसे हे सब्जय सुसी विजयकी आशा नहीं रही ॥ १६८ ॥ हैने जद जुना कि-जुन्ना विलाकर जीते हुए धनहीन वन-को निकाले हुए और स्वजनींसे घलग हुए राजा युधिष्ठिरने सात धजीहिणी जेना इकट्टी करली है, तबसे में विजयकी आशा नहीं रखता १७०जर मैने जुनाकि मधुवंशमें उत्पन्न हुए श्रीर जिनकेएकचरणमें सकल एक्टी समागई थी यह शास्त्र कहते हैं ऐसे थ्रीकृष्ण चित्तसे पागडवी की भहाई चाहते हैं, तयसे सुमे विजयकी ब्राशा नहीं रही॥१७१॥जव हैंने दुनाकि-नारदमुनि कहते थे कि श्रीकृष्ण और श्रर्जुन नरनारायण हैं. ज़ीर मेंते उनको ब्रह्मलोकमें भलेयकार देखा है तबसे हे सब्जय

नुभी विजयका व्यासा नहीं रही ॥ १७२ ॥ जब मैंने सुना कि श्रीकृष्ण भगवान लोकांके हितके लिये कौरवांको समकाने आये थे परन्तु पीरवीने छल नहीं माना और वह उनसे निराश होकर लौटगये

हे जब्जय तक्ते मुक्ते विजयकी आशा नहीं

श भाषानुवाद सहित # श्रद्याय ी (28) चातमानं यहधा दर्शयानं तदा नाशंसे विजयाय ।। श्रीपं वासदेवे प्रयाते रथस्यैकामग्रतस्तिष्ठामानाम् । श्रासी प्रथां सा-हिन्त्यतां केशवेन तदा नाशंसे विजयाय ०॥ १७५ ॥ यदाशीपं मन्त्रिणं वासदेवं तथा भीष्मं शान्तनवञ्च तेपाम। भारहाजञ्चाशिपोऽनव्र वाणं तहा नाशंसे विजयाय सम्जय ॥ १७६ ॥यदा कर्णो भीष्मम्बाचवाक्यं नाहं योत्स्ये यद्भपमाने त्वयीति । हित्वा सेनामपचक्राम चापि तदा नाहांसे विजयाय संजय ॥ १७७ ॥ यहाश्रीपं वासुदेवार्जुनी ती तथा धतर्गावडीवमवमेयम् । बीएयम्बीर्याणि समागतानि तदा नारांसे वि-जयाय संजय ॥ १७= ॥ यदाश्रीयं कश्मलेनाभिपन्ने रथोपस्थे सीदमा-नेऽर्ज ने वै । कृष्णं लोकान्दर्शयानं शरीरे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १०६ ॥ यदाशीयं भीष्मममित्रकर्पणं निघन्तमाजावयतं रधीनाम । नैयां कश्चिद्रध्यते स्थातसपस्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १८०॥ दर्योधनने श्रीक्रणाको गंदी करनेका विचार किया श्रीर श्रीक्रणाने उनको विश्वकप दिखाया. हे सञ्जय जब मैंने ऐसा स ना तबसे मक्षे विजयकी प्राप्ता नहीं रही।१७४॥जब श्रीक्रणाजी जानेलगे तबदःखित हुई श्रकेली कुन्ती उनके रथके सामने धाकर खड़ी होगई और श्रीकृ-णाजीने उसको ढाढस दिया है सब्जय जब मैंने ऐसा सुना तबसे मैं विजयकी श्राशा नहीं रखता ॥ १७५ ॥ श्रीकृष्णजी तथा शन्तनुकै पत्र भाग्मिवतामहजी पाराडवाँके मन्त्री एए और भरहाजके पत्र होणाचार्यने पागडवाँको श्राशीर्वाद दिया जब मैंने ऐसा सना तबसे में विजयकी श्राशा नहीं रखता ॥ १७६ ॥ जब कर्णने भीष्मपितामहस्रे फहा कि तम लड़ोगे तबतक मैं नहीं लड़ेगा श्रीरयह कहकर वह खेनाकी छोड़कर चलागया हे सब्जय पैसा सुना हैतवसे मुक्षे विजयकी श्राशा नहीं रही ॥ १७७ ॥ श्रीकृष्ण श्रज़्नेन श्रीर महापराक्रमवाला गाएडीय धनुष यह तीनों परमपराक्रमी एकही स्थानमें इकट्टे हुए हैं है सब्जय जबसे मैंने ऐसा सुना है तबसे मुक्ते, विजयकी आशा नहीं रहीं ॥ १७८ ॥ मोहको पाकर लिख होताहम्रा म्रर्जन रथके समीप खडा होगया और युद्ध न करनेका विचार करनेलगा तव भग-वान आहुः एने उसको अपने शरीरमें चौदह लोक दिखलाए जब मैंने पेसा सना तबसे हे सब्जय मभी विजयकी श्राशा नहीं रही ॥१७८॥ जब मैंने सुनाकि शत्रुपर्दन भीष्मिपितामह प्रतिदिन दशसहस्त रथियोंको वाणोंसे मारडालतेथे तथभी पाएडयोंका एक भी मख्य स भट योद्धा

नहीं मारागया तबसे हे सब्जयमैं विजयकी आशा नहीं रखताहूँ॥१=०॥

(२२) महाभारत छादिपर्व ॥ पहिला यदाश्रीपं चापगेयेन संख्ये स्वयं मृत्यं विहितं धार्मिक्रेण । तचाकर्युः पाएडवेयाः प्रहरास्तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १=१ ॥ यदाशीपं भीष्ममत्यन्तग्रं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम् । शिखरिडनं पुरतः स्थापयित्वा तदो नारांसे विजयाय ० ॥ १=२॥ यदाश्रीपं शरतस्पे शायानं वृद्धं बीरं सादितं चित्रपंकैः। सीव्यं कृत्वा सोमकानत्पश्चेपां-स्तदा नागंत्रे विजयाय ०॥१८३॥यदाशीपं शान्तत्रवे रायाने पानीया**र्थे** चोदितेगार्ज नेन।भर्मि सित्या तर्षितंतत्र भीष्मं तदा नाशंस्रे विजयाय ० १। १८४ ॥ यदा वायुः शकसूर्यों च युक्ती कौन्तेयानामद्रलोमा जयाय । निस्यं चोरुमान् श्वापदा भीषयन्ति तदा नाशंक्षे विजयाय संजय १=५ पदा द्वोणो विधिधानिक्षमार्गान् निदर्शयन समरे चित्रयोधी।नपाएड-षान् श्रेष्ठतराश्चिहन्ति तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ॥ १≖६ ॥ यदा-श्रीपं चारमदीयान्सहारथान्वयवस्थितानर्ज् नस्यान्तकाय।संसप्तकान्नि-हितानर्जु नेन तदा गाशंसे विजयाय सन्जय ॥ १८७ ॥ यदाश्रीपं व्युहा मभेद्यमन्यैर्भारद्वाजेनात्तशस्त्रेण गुप्तम् । भित्वा सौभद्गं वीरमेकं प्रविष्टं धर्मात्मा गङ्गापुत्र भीष्मने रेणमें श्रपने मरेणुका द्वार पाएडवींको दिखादिया और पाएडवींने उनको श्रानन्दले मारदिया ऐसा स्नाहि तवस्रोमुक्ते हे सं जय विजयका श्रामा नहींरही ॥ १=१ ॥ शिकएडी को छानै करके अत्यन्त शुर वीर अजेय भाष्मिपतामहको अर्जुनने मार, दिया जबले ऐसा सुना है तवसे हे संजय मुक्ते विजयकी छाशा नहीं रही ॥ १८२ ॥ मैंने जवसे सुना है कि वृद्ध श्रवीर भीष्मिपता-मञ्जवहतले सोमकवंशियोंको नए करके अनेको पाणीले विधकर शरराज्यापर सोरहेहें तवसे हे लंजय मुक्ते विजयकी शाशा नहीं रही ॥ १=३ शरशच्यापर सोतेहुए शन्तनु के पुत्र शीष्मने पानी पीनेकी इच्छाका तब अर्जुनने वालसे पृथ्वीको फोड़जल निकालकर उनको स्प्त किया जब पेसा सुना तवसे हे संजय मु औ विजयकी घाशा नहीं रही ॥ १८४॥ जब पाण्डवोंकी विजयके लिए पवन विचलकी खोर वहने लगा, चन्द्र सूर्य लाभस्थानमें आगए और चौपाये पश हमको चारम्वार अय उत्पन्न करनेलगे तवसे हे सम्जयमुक्ते विजयकी झाशा नहीं रही ॥ १८५ ॥ जब श्रद्धांत युद्धकर्चाद्रीणांचार्यने अद्भुतरीतिसे ही बद्धिक्या तदभी पाएडवॉमेंसे अष्ठतर एककोभी न मारसके तबसे हे लब्जय मुभी विजयको श्रांशा नहीं रही॥१८६॥ जय हमारी से नाके स सप्तक महारथी अर्जु नको मारनेके लिये शाकरखडे हुए तब अक्लेही ष्यज्ञीनने सबको मारडाला जबसे ऐसा खुना तबसे हे संजय मुक्ते विजयकी आशा नहीं रही ॥ १८७ ॥ दूसरों से अभेद्य ब्यह कि-जिसमें भारहाजके पुत्र द्रीण श्रस्त्र लेकर खडे थे उसकी संभद्राका

(23) तदा नाशंसे विजयाय सन्जय ॥ १८८ ॥ सदाशिसन्यं परिवार्य वासं सर्वे हत्या हुएएपा वभृवः । महारथाः पार्थमशाहुबन्तस्तदा नाशंसे विजयाय सन्जय ॥ १=३॥ यदाश्रीपमभिसन्तुं निहत्य ६५ नि सृदान् कोशतो धार्तराष्ट्रान् । कोधाङ्कः सैन्ध्ये चार्ज्वेन तहा नाशंसेविक-याय सन्जय ॥ १६० ॥ यदार्थीयं संन्यवार्थं प्रतिवां प्रतिवातां सहधा-यार्ज्नेन । सत्यान्तीणी शुप्रध्ये च तेन तदा नाशंसे विजयाय सण्जय १६१यदाधीपं धान्तह्ये धनव्जये सुक्त्वा ह्यान् पाययित्वीपत्तान् पुनर्पु परवा वास्तु देवं प्रयानं तदा नाग्नंसे विजयाय संजय॥ १६२॥ यदाधीयं घाहनेव्यन्तमेषु रथोपस्थे तिष्ठता पाग्डवेग।सर्वान्योधान्यारि. तानर्जु नेन तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १६३ ॥ यदाश्रीपं नागपर्लेः स र:सहं द्रोणानीकं युगुधानं प्रमध्य यातं वाष्णीयं यत्र ती कृष्णगार्थी तदा नाशंसे विजयाय संजय॥१६४॥यदार्शापं कर्णमासाच मुक्तं वधा-क्रीमं क्रत्सियत्वा बचोभिः।धनःकोद्या तुच फर्णेन बीरं तदा नाशंसे पुत्र बीर श्रीसमन्यु केंद्रकर घुसगया जब ऐसा स्ना तब से दी है संजय मुभको विजय की खाशा नहीं रहा ॥ १== ॥ अर्जु नको मारनेमें अस-मर्थ ऐसे हमारे सब महारथियोंने छात्रुनके पालकपुत्र अभिमन्युको घरकर मारडोला और प्रसन्न हुए,जब यह सुना तवसे हे सं जयमुभको विजयको आशा नहीं रही ॥ १=६ ॥ श्रमिमन्यको मारफर हर्पित हो श्रासम्त कोलाइल करते हुए कारबीकी छोर जाकर अर्जु नने जयहथको मारनेकी प्रतिज्ञाकी ऐसा जब मैंने सुना तबसे है संजय मुक्तैविजय की छाशा नहीं रही ॥१६०॥ छर्जुनने संधवराजको मारनेके लिए का हुई प्रतिज्ञा, शत्र्य्योके मध्यमें संधिवराज (जयव्य) की मारकर सत्यकर दिसाई तबसे हे संजय मुक्ते विजयकी आशा नहीं रही ॥ १६१ ॥ बास्ट्रेव भगवान्ने छाज्निक रथके थकेतुए घोड़ीको खोल पानी पिला पूनः रथमें जोड दिया श्रीर पहलेकी लमान हांकने लगे, जब मैंने ऐसा सुना तबसे हे संजय मैंने विजयकी शाएगा नहीं

रक्षी ॥ १६२॥थके हुए घोड़ोंको जल पिलाकर रथमें जोड़ा तव तक अर्जुन रथके आने खड़ा होकर शतुकांको रोके रहा यह छुनो तवसे हे संजय मुक्ते विजयकी आशा नहीं रहीं १६३ हाथियों के वससे भी न हूट सके ऐसी युद्ध करतीहुई द्रोणकी सेनाकी न एकर कात्यकी थाइव, जहां कुल्ए और अर्जुन थे तहां शाग्या जब थेने ऐसा खुना तवसे मुक्ते विजयकी आशा नहीं रहीं ॥ १६४ ॥ कर्णुने वशमें शाएहुए भीमसेनका तिरस्कार कर उसको वहुतसे हुर्वचन कहें शोर छजुनकी कोटिसे प्रहार करके छोड़िया ऐसा जम मैंने जना तबसे कोटिसे प्रहार करके छोड़िया ऐसा जम मैंने जना तबसे

समरे सञ्यसाची तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १८= ॥ यहाश्रीवं द्रोणमाचार्यमेकं धृष्ट्युम्नेनाभ्यतिकस्य धर्मम् । रथोपस्थे प्रायगते वि-शस्त्रे तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १६६॥ यदाश्रीपं दौर्शिनाद्वै रथ-स्थं मादीस तं नकलं लोकमध्ये । समं यद्धे मगडलशक्त्वरस्तं तदा नाशंसो विजयाय संजय ॥ २०० ॥ यदा द्रोगो निहते द्रोगपूत्री नारायगं दिव्यमस्त्रं विकर्वन् । नैपामन्तं गतवान् पाएडवानां तदा नाशंसो विजयाय संजय ॥ २०१ ॥ यदाश्रीपं भीमसेनेन पीतं रक्तं भातर्यधि षुःशासनस्यानिवारितं नान्यतमेन भीमं तदा नाशंसे विजयाय संजय मक्ते जीतनेकी आशा नहीं रही॥ १६५॥ अर्जनने जयद्रथको मार्ड ला उसको द्वोण, कृपाचार्य, कर्ण कृतवर्मा, और शरवीर शहय इत्यादिने सहन करा जब मैंने ऐसा सुना तबसे मुभको विजयकी अशा नहीं रही ॥ १८६ कर्णने अर्जनके मोरनेके लिए जो दिव्यशक्ति इन्हरने पाकर रख छोड़ी थी वह शक्ति कृष्णने चतुराईले घोरकप घटोत्क-चंद्रों ऊपर छडवादीं ऐसा जब मैंने सुना तबसे मुभौ विजयकी आशा नहीं रही॥ १८७॥ कर्ण तथा घटोत्कच युद्ध करते थे उस समय जिस शक्तिसे युद्धमें अर्जुनको मारना था वह शक्ति कर्णने घटोत्कचके ऊपर छोड़दी ऐसा जब मेरे सुननेमें श्राया तबसे है संजय मक्षे विजयकी श्राशा नहीं रही ॥ १६= ॥ जब ऐसा सुनाकि रथके समीप शत्रुत्रीके मारनेके लिए निश्चल खड़े हुए द्रोणाचार्थ्यको धृष्ट्यम्तने श्रधमीले मारडालां तवसे हे संजय मुभी विजयकी श्राशानहीं रही ॥ १६६ ॥ जब मैंने स्नाकि मादीके पुत्र नक्तलने सम्पर्णसेनाके

मध्यमें द्रोणके पुत्र अर्थवस्थामां साथ अनेतेही युद्ध करना प्रारम्भ किया और मंडलाकार फिरनेमें उसके बरावर उतरा तबसे हे स्व अप मुझे विजयकी आशा नहीं रही ॥ २००॥ जब द्रोणाचार्य मारोगए तब उनके पुत्र अवस्थायामां नारायणतामका ।दिव्य अख्य छोड़ा तब पाएडवीमेंसे एकभी नहीं मारागया जब ऐसा सूना तबसे हेस्तुनमुक्ते विजयकी आशा नहीं रहीं २०५ जब युद्धभूमिमें अपने मा देहुं आहे जा उसके माइयोंमेंसे फिली है मा देहुं अर्थक आहे हो से स्व किसी ने नहीं रोका जब एसा माइयोंमेंसे फिली ने नहीं रोका जब ऐसा माइयोंमेंसे किसी ने नहीं रोका जब ऐसा महींस्की

. 🕸 महाभारत श्रादिपर्व 🏶

विजयाय संजय ॥ १६५ ॥ यदाश्रीपं कृतवर्मा कृपस्च कर्णो द्रौणिर्म-द्रराजश्च शूरः। श्रमपंयन् संन्धयं वध्यमानं तदा नाशंसे विजयाय संजय ॥ १८६ ॥ यदाश्रीपं देवराजेन दत्तां दिव्यां शक्तिव्यस्ति माध-वेन । घटोत्कचे राज्ञसे घोरकपं तदा नाशंसे विजयाय संजय ।१८० । यदाश्रीपं क्षीयटोत्कचाभ्यां युद्धे मुक्तांसुतपुत्रेण शक्ति । यया वध्या

पिहला

(28)

🕸 भाषानुवाद सहित 🎎 ॥ २०२॥ यदाश्रीपं कर्णमत्यन्तशरं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रभ्रप्यम् । तस्मिन् भ्रातुणां विष्रहे देवगुहा तदा नाशंसे विजयाय सम्जय।। २०३ ॥ यदाशीपं होणपुत्रञ्च शरं दुःशासनं कृतवर्माणमुत्रम् । युधिप्ठिरं धर्म राजं जयन्तं तदा नागंसे विजयाय सम्जय ॥ २०४ ॥ यदाशीपं निहतं मद्रराजं रखे शरं धर्मराजेन सन्। सदा संग्रामे स्पर्वते यस्त् छप्णं तदा नाशंसे विजयाय ० ॥ २०५ ॥ यदाश्रीपं फलह्यतमृलं भायायलं सौबलं पाण्डधेन । एतं संग्रामे सहदेयेन पापं तदा नाशंसे विज-याय ० ॥ २०६ ॥ यदाश्रीपं भान्तमेफं शयान एवं गत्वा स्तंभयित्वा तहरूमः । दुर्योधनं विरधं भग्नशक्ति तदा नाशंसे विजयाय ० ॥२०७ ॥ यदाश्रीपं पारडवान्तिष्ठमानान् गत्वा हृदे वासुदेवेन साध । शामर्पर्ण धर्पयतः सृतं मे तदा नाशंसे विजयाय ० २०=॥ यदाशीपं विविधां-श्चित्रमार्गान् गदायुद्धे मएङ्लशुखरन्तं।मिथ्याद्दतं वास् देवस्य धुद्ध्या । ॥ २:२ महाशरधीर युद्धमे अजित फर्ण,जिसको देयता भी नहीं सम-भसके अर्थात् कर्ण अर्जुनका भाई था परन्तु यह यात न जाननेसे युद्ध हुआथा, उसको भाइयोकी लड़ाईमें शर्जुनने मारडाला जय पेंसा लगा तवसे हे संजय मभी विजयकी आशो नहीं रही ॥ २०३ ॥ जय मैंने सुना कि-राजा युधिष्टिरने द्रोलके पुत्र अश्वत्थामाको श्र-पीर दुःशासनको और उत्र कृतवर्माको जीतलिया तवसे हेस जय मुक्ते जीतनेकी आशा नहीं रही ॥ २०४ ॥ हे सुत जब मैंने सुना फि-संवाममें भ्रीकृष्णकी स्पर्धा करनेवाले औररणभूमिमें वड़े शरवीर मद्र-देशके राजा शल्यको यथिष्ठिरने मारदिया तबसे मक विजय की शाशा महीं रही ॥ २०५ ॥ पापी, मायाके बलवाले तथा कलह श्रीर जुपमें प्रधान शुक्रनिको पाएडवीमेंके सहदेवने मारदिया मैंने जब ऐसा सुना तबसे हे संजय मुक्ते जीतनेकी भाशा नहीं रही ॥ २०६॥ जिस समय मैंने स नाकि- अकेला ही युद्ध करता हुआ दुर्योधनशक्तिहीन होगया है और वह पानीको रोक कर पानीकी भूमिमें चैठगया है तव से हे संजय मुभी विजयकी आशा नहीं रही ॥ २०७ ॥ दुर्योधन जिस पानीकी पृथ्वीमें (सरोवरमें) वैठगया था वहां श्रीक्रप्णके साथ

पाएडव गए श्रीर मेरे पुत्रसे तिरस्कारके वचन कहनेलगे जवसे सैंने ऐसा सुना तवसे हे संजय मुक्तै जीतनेकी श्रोशा नहीं रही॥२००॥ युद्धके लिये विविधप्रकारसे श्रनेक-रीतिके चक्राकारसे घूमतेहुए मेरे वटे दुर्योधनको भीमसेनने श्रीकृष्णकी संमतिसे कपट करके नीचेके (२६) अ महाभारत आदिपर्व अ [पहिला तदा नाशंसे विजयाय०॥ २०६॥ यदाश्रीप द्रोणपुत्रादिभिस्तैहँतान्पा-आलान्द्रीपदेयांश्च सुप्तान् । इतं वीभत्समयशस्यश्च कर्म तदा नाशंसे विजयाय०॥ ११०॥ यदाश्रीपम्भीमसेनातुयातेनाश्वत्याम्ना परमास्वं प्रयुक्तम् । कुद्देनेपीकमवधयोनगर्भे तदा नाशंसे विजयाय०॥ २११॥ यदाश्रीपम् ब्रह्मशिरोऽजुनेन स्वस्तीत्युक्त्वास्त्रमस्त्रेणः शान्तम् । स्रत्व-

यदाधीपम् ब्रह्मशिरोऽर्जुनेन स्वस्तीत्युक्त्वाख्यमस्त्रेण् शान्तम्। श्रद्य-स्थान्ना म ग्रेपत्वम् च दत्तम् तदा नाथंसे विजयाय ०॥ २१२॥ यदा-श्रीयम् द्रोणपुत्रेण् गर्मे वराद्या वे पात्यमाने महास्त्रैः । द्वेषायनः क्षेत्रावो द्रोणपुत्रम् परस्परेण्णिमशारीः श्रुयाण् ॥ २१३॥ शोच्या गांचारी पुत्रपौत्रीविहीनत तथा वन्धुभिर्तितृतिम्रह्मातृतिमक्ष्य । कृतम् कार्य दुष्करं पाराङ्ययेः प्राप्तम् राज्यमसपत्वम् पुनस्तः ॥ २१४॥ कष्टं युद्ध दयः श्रेषाः भुत्वा मे वर्षोऽसमकम् पाराङ्यामाञ्च सत्त । यूना विश्वतिराहता-ज्ञीहिणानां तिसम्बानामे मैरवे सवियाणाम् ॥ २१॥ तमस्वतीय-विस्तीर्ण् मोह् श्राविश्वतीय माम् । स्वां नीपलामे स्तुत मनो विह्वल

संजय मुक्ते विजयकी आशा नहीं रही २०८ जब मैंने सुनाकि-द्रोणके पुत्र अध्यवस्थामा आदिने पाञ्चाल देयके राजाओंको तथा द्रीपदिक पुत्रोकों सोते ही मारडाला ऐसा भयंकर और अपयश देनेवाला कर्म करां तबसे है संजय में जीतकी आशा नहीं रखताहूँ ॥ २१०॥ भीमस्वेनको अपने पोजे क्षात्र करें हो स्वेज प्रमुक्त अध्यक्ष स्थान पेपीक नामका परम अख जान पर्वे के अध्यक्ष में अध्यक्ष स्थान पर्वे के सामक परम अख जी अक्ष कर पर्वे के सामक परम अख जी अध्यक्ष स्थान हो है स्वेजय मुक्ते विजयको अध्या नहीं रही ॥ २११॥ जब मैंने सुनाकि—
अध्यक्ष प्रमुक्त विजयको अध्या नहीं रही ॥ २११॥ जब मैंने सुनाकि—
अध्यक्ष प्रमुक्त विजयको अध्यक्ष स्थान स्

राजाकी पुत्री उत्तराका गर्म गिरानेकों ब्रह्मास्त्र छोड़ाहै उससमय वेव्डयासजी और श्रीकृरणजी दोनोंने उसकी श्राप विचा तवस में विजयको श्राप तिया तवस में विजयको श्राप तिया तवस में विजयको श्राप तही रखताहूँ।। २१३। अहाहा पुत्र, पौत्र, पितृ, और स्वानेकीलोचे रहित हुई विचारी। गांधारीकी द्या केसी द्याजनक होरहीहें और वड़ाही दुन्कर कर्म करके पारख्वोंने निष्कारटक राज्य लौटाकर लेलियाहै।।२१३॥ अरेरे अठारह अलीहियी सेनावाले स्त्रिन्योंके स्व मयद्वर सं अपामीं तीन हमारे पत्तके और सात. पारख्वों के पत्तके सव मिलाकर दश मजुण्यही जीते वचे हैं ऐसा सूननेसे अरे नेवीके सामने अर्थेरा झाताहै. मक्ते कर्जा झाती हैं और हे सत मोहस्रे

भाषानुवाद सहित[ं] # (২৩) श्चायी तीव मे ॥ ११६ ॥ सौतिरुवाच । इत्युक्त्वा धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य यहु-दु:खितः । मृर्छितः पुनराश्वस्तः संजयं वाक्यमप्रवीत् ॥ २१७ ॥ भृत-राष्ट्र उवाच । सञ्जयेवं गते प्राणांस्यक् मिच्छामि मा चिरं । स्तोकं हापि न पश्यामि फलं जीवितधार्णे ॥ २१= ॥ सीतिरुवाच । तं तथा चादिनं दीनं विलयनां मेहीपति । निश्वसन्तं यथा नागं मुहामानं पुनः पुनः । गावरुगणिरिदं घीमान् महाथँ वायप्रमद्रवीत् २१६सण्जयउवाच श्रुतवानिस वै राजन्महोत्साहान्महावलान्। ह्रिपायनस्य वदती नारदस्य च धोमतः॥ २२०॥ महत्त्वु राजवंशेषु गुणैः समुदितेषु च।जातान्दि-ब्यास्त्रविद्यः शक्तप्रतिमतेज्ञसः॥ २२१ ॥ धर्मेण् पृथ्वी जिन्वा यद्धे-रिष्टा स दक्षिणै: । अस्मिक्षोके यशः प्राप्य ततः कालवशं गतान् ॥ २२२॥ शैवं महारथं वीरं सृंजयं जयनाम्यरम् । स होत्रं रन्तिदेवञ्च काक्तीयन्तं महायुति ॥ २२३ ॥ वाल्हीकं दमनं चैय शर्यातिमजितं नलम् । विश्वामित्रममित्रग्रमम्बरीपं महायुतिम् ॥ २२४ ॥ मरुन्तम-नुमिह्माकुं गर्य भरतमेव च । एएं दाशरथिश्चीय शशिविन्दुं भगी-रधम् ॥ २२५ ॥ कृतवीयं महाभागं तथेव जनमेजयम् । ययाति अभ धिराहुआ मेरा मन घवडाताहै तथा व्याकुल होताहै २१५-२१६ सुतजी कहते हैं कि इसवकार संजयसे फहकर बहुतही दुःखित हुए धृतराष्ट्र मूर्छित होगए, संजयने पवन करके उन्हें सावधान किया और मूर्जी दूर होनेके छनन्तर वह कहने लगे ॥२१०॥ घृतराष्ट्रने कहा कि हे संजय पेंसा परिणाम निकलनेसे शव मै जीनेमें फुँछ भी फल नहीं देखता श्रीर कुछही समयमें में श्रपने प्राण त्यागना चाहता हूँ ॥ २१=॥ सीति कहते हैं कि इसप्रकार कहकर दीनतासे विलाप करते, सर्वकी समान श्वास लेते श्रीर वारम्वार मोह पाते हुए राजा धृतराष्ट्र से गावरगणीका चतुर पुत्र संजय गंभीर विषयसेभरे वाक्य कहने लगा ॥ २१६ ॥ संजयने कहा कि—हे राजन् ! ब्यासजी श्रीर बुद्धिमान् नारदजीके मुखसे आपने सुनाहै कि-यड़े उत्साही महावली गुणींसे उज्ज्वल यहें राजवंशमें उत्पन्नहुए दिव्य श्रस्नोंको जानने वाले श्रीर इन्द्रकी समान तेजस्वी, धर्मसे इस पृथ्वीको जीत यह याग करकी वडी २ दक्षिणाएँ दे इस संसारमें कीर्त्ति पानेवाले राजाश्रीको भी श्रन्तमं कालके वशमं होना पड़ा है, देखो पहिले महारथी श्रीर शरबीर राजा शैन्य, जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ संजय, फीर्त्तिवालोंमें श्रेष्ठ सुहोत्र, रंतिदेव, कात्तीवंत, श्रौशिज, वाल्हीक, दमन, चैच, शर्याति, श्रजित नल, रात्रुत्रोंके मारनेवाले विश्वामित्र, महावलवान् श्रावरीप, महत्त. मनु,इच्वाकु, गय, भरत, दशरथके पुत्र रामचन्द्र,शशिविन्हु,भगीरथ

महाभाग्यशाली कृतवीर्य. श्रीर जनमेजय, शुभक्तमें करनेवाले ययाति.

[पहिला # महाभारत आदिपर्व # कर्माणं देवैयों याजितः स्वयम्॥ २२६॥ चैत्ययूपाङ्किता भूमिर्यस्येयं सवनाकरा । इति राज्ञां चतुर्विशं नारदेन स्राविणा ॥ २२० ॥ पुत्रशोकाभितप्ताय पुरा शैव्याय कीर्त्तितम् ॥ २२= ॥ तेभ्यश्चान्ये गताः पूर्व राजानो वलवत्तराः ॥ २२६ ॥ महारथा महात्मानः सर्वैः समुदिता गुणैः । पुरुः कुरुर्यदुः श्रो विश्वगश्वो महायतिः । श्रशुहो युवनाश्वश्च ककुत्स्थो :विकमी रघुः ॥ २३० ॥ विजयो वीतिहोत्रोऽगो भयः श्वेती वृत्वगुरुः। उशीनरः शतरथः कंको दुलिदुही द्रमः ॥ २३१ ॥ दम्भोद्भवः परो वेणः सगरः सं कृतिनिर्मिः । अजेयः परशुः पुराद्रः ग्रमहें वाव्योऽनयः ॥२३२॥ देयाह्यः स प्रतिमः सुप्रतीको बृहद्रथः । महोत्साहो विनीतात्मा स्ऋतुर्नेषघो नतः ॥ २३३ ॥ सत्यव्रतः शान्तभयः स् मित्रः स् वतः प्रभुः । जानुजंघोऽनरएयोऽर्कः प्रियमृत्यः श्चित्रतः ॥ २३४ ॥ वलवन्ध्निरामद्दः केतुशुक्को बृहद्वलः । धृष्टकेतु र्व् हत्केतुर्दीप्तकेतुर्निरामयः २३५ श्रविक्षिच्चपलो धूर्पः कृतवम्धुर्द्ध दे पुधिः। महापुराणसम्भाव्यः प्रत्यङ्गः परहा श्रुतिः॥ २३६ ॥ एते चान्ये च राजानः शतशोऽथ सहस्रशः। श्रयन्ते शतशश्चान्ये संख्याताश्चेव पद्मशः॥२३७॥हित्वा स विपुतान् भोगान् बुद्धिमन्तो महावलाः।राजानो जिनको देवताओंने यह कराया था और जिनके यहस्तम्भोंसे आधी प्रथ्वी घिरगई थी, ऐसे इन चीवीस राजाश्रोंकी कथा, पुत्रशोकसे सन्तप्तहुए ख़ैत्यराजसे उसका शोकको दूर करनेके लिए नारदजीने

महारसाहा चिनाताता स्कृतिनुष्या नतः ॥ तर्मा सित्यवतः ग्रान्तमयः सृतिकः सृ वकः मुः। । जानुज्ञां । तर्राक्षः प्रियभृताः ग्रान्तमयः सृतिकः सृ वकः मुः। । जानुज्ञां । तर्राक्षः प्रियभृताः ग्रान्तमयः सृतिकः सृत्यकः मुः। । जानुज्ञां हृ हृ हृ त्कृतुर्वां सक्तुर्वान्तमायः स्वयः प्रथः । सृत्यः । सृत्यः । सृत्यः । सृत्यः विक्रव्यः । सृत्यः । सृत

प्रमो आपके पुत्रोंकी समान ही कासके बशमें होगए हैं अर्थात् मृत्युको

श्रम्याय] ः भाषानुवाद सहित 🕾 (38) निधनम् प्राप्तास्तव पुत्रा इव प्रभा ॥ २३= ॥ येपां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च । माहात्म्यमपि चारितक्यं सत्यं शीचं दयार्ज-वम् ॥२३६॥ विद्वन्तिः फथ्यते लोके पुराणे कवि सत्तमैः । सर्वर्द्धिगु-णसम्पद्मास्ते चापि निधनं गताः ॥२४०॥ तव पुत्रा दुरात्मानः प्रतप्ता-रचैव मन्यना । लब्धा दर्व त्तभिषष्टा न ताण्होचित्रमहीस ॥ २४१ ॥ श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान् प्रावसम्मतः येषां । शास्त्रानुगा बुद्धिर्न ते मुखन्ति भारत॥२४२॥निब्रहानुब्रही चापिधिदिती ते नराधिप।नात्य न्तमेषानुवृत्तिः पार्या ते पुत्ररक्षेणे ॥२४३॥ भवितव्यं तथा तद्य नानु-शोचितमहीस । हैवं प्रशाविरोपेणको निवक्तित्महीत ॥२४४॥ विधात विहितं गागं न कश्चिद्तियक्ते । कालम्लमिदं सर्वं भावाभाषी स कासके ॥ २४५ ॥ कालः खजति भृतानि कालः संहरते प्रजाः । निर्देहित प्रजाः फालः फालः शमयते पुनः ॥ २४६ ॥ कालो हि फुक्ते भाषान् सर्वलोके शुभाशुभान् । कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विख्जते पुनः २४७ ॥ फालः स्पूर्वेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः। फालः सर्वेषु प्राप्त हुए हैं ॥ २३५—२३= ॥ इतने ही नहीं परन्तु वली दिव्यकर्मवाले पराफ्रमी, दानशील, बडे माहात्म्यवाले ब्रास्तिक, सत्यवादी, पवित्र, दयावीर, सरल, घड़े २ कवियों और विद्वानीने पुराणीमें जिनका वर्णन

करा है ऐसे सब प्रकारकी लमुद्धिवाले और गुण्युक्त, श्रनेकी राजे मरणकी शरण हुएहैं तो फिर दुरात्मा,फोधस तप्त,लोभी श्रीर श्रत्वन्त दुराचारी तुझारे पुत्र मरणकी शुरुण हो तो उनके लिए शोक करना आपको शोभा नहीं देता॥ २३६-२४१ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! आप धर्म श्रीर शास्त्रके ज्ञाता बुद्धिमान् श्रीर विद्वन्मान्य हो, जिनकी बुद्धि शास्त्र श्रनुसार होतीहै यह शोकको नहीं प्राप्त होतेहैं २४२ हेमनुष्याधिपते श्राप भाग्यकी भवितव्यता धौर कर्मकी कठिनताको जानते हैं श्रतः श्राप को श्रपने पत्रोंकी रज्ञाके लिए बहुत ब्याकल नहीं होना चाहिये॥२४३॥ श्रीर जो होनेवालाहै उसकेलिए शोककरना श्रापकोयोग्य नहीं है वर्षी कि कीनसा मनुष्य बुद्धिवलसे दैवको फेरसकता है? कोई नहीं॥२४४॥ विधाताके दिखायेहुए मार्गका कोई भी उहांघन नहीं करसकता जन्म, मरण, सुख श्रीर दुःख इन सब का कारण काल ही है ॥ २४५ ॥ कालही संव भूतोंको उत्पन्न करता है श्रीर कालही सब प्राणियोंका संहार भी करता है, इतनाहीं नहीं किंतु प्रजाम्नीका संहारकरनेवाले कालको भी कालही फिर शांत करता है ॥ २४६ ॥ कालही सम्पर्ण ज़ोकमें ग्रम तथा श्रश्रम भावको उत्पन्न करता है कालही सब प्रजा-द्योंका नाश करता है और फिर उसको उत्पत्न करता है ॥ २४७॥ जय सब सुपुप्ति श्रवस्थामें होते हैं तबभी कालही जागता रहता है

वीता हुआ, होने वाला और आजकल होरहा है अर्थात भत भविष्य श्रीर वर्तमान कालमें जो कुछ है वह सबही कालने बनाया है यह जानते हुए आपको ज्ञाननिष्ठा नहीं त्यागनी चाहिये व्योकि शोकको हरने वाला ज्ञानके सिवाय दूसरा नहीं है ॥ २४६ ॥ सूतजी कहते हैं कि पुत्रशोकसे व्याकुल हुए राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार गावन्गरा के पुत्र संजयने आश्वासन देकर स्वस्थ करा॥ २५०॥ इस वृत्तांतका श्राधार लेकर व्यासजीने शोकातुरका शोक शांत करने के लिए प्राय-दायक उपनिषदों का ज्ञान वर्णन किया है कि जो विद्वानों और प्रसिद्ध कवियोंकी परानी रचनामें आकर जगत् में प्रसिद्ध हुआ है ॥ २५१ ॥ इस महाभारतके एक स्होकका एक पादभी अद्धासे पढाजाय तो सम्पूर्ण पाप पूर्णक्रप से नप होजाते हैं तो सम्पूर्ण महाभारतका पढना पुरायकारी होगा इसमें आश्चर्य ही क्या है? इस महाभारतमें देवता देवर्षि पवित्र ब्रह्मपि, शुभकर्म करनेवाले यक्त श्रीर वडेर सर्पीकावसात. कहा है।। २,१२ । २५३ ॥ श्रीर इस भारतमें सनातन भगवान् श्री कृष्णजोका चरित्रभी कहा है, बहही स्वयं संत्य, ऋत, पवित्र और पुरायस्वरूप हैं ॥ २५४॥ यहही शाश्वत. ब्रह्म, परम, ध्रव, सनातन श्रीर ज्योतिक प हैं जिनके दिव्य कमें को चतुर और विद्वान पुरुष गाते हैं ॥ २५५ ॥ जिनसे असत् और सत्हर जगत्, सन्तति, यक्षादिकी प्रवृत्ति, जन्म, मरण, पुनर्जन्म श्रादि होता है ॥ २५६ ॥ जो शरीर में

रहनेवाले पश्चभूतोंका गुणांत्मक सुना जाता है वह यह ही हैं और जो

महाभारत आदिपर्व # भतेष चरत्यविधृतः समः॥२४=॥ श्रतीतानागता भावा ये च वर्त्तरितः सांप्रतम् । तान् कालनिर्मितान् बुद्ध्वा न संद्यां होतुमहीस ॥ २४६ ॥ सौतिरुवाच । इत्येवं पुत्रशोकार्त्तं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् । श्राश्वास्य स्व-स्थमकरोत सतो गावलगणिस्तदा ॥ २५० ॥ श्रत्रोपनिषदं पुरायां कृष्ण-द्वैपायनोऽब्रबीत् । विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः ॥ २५१॥ भारताध्ययनं पुरुवमपि पादमधीयतः । श्रद्धधानस्य पुयन्ते सर्वपापा-न्यशेषतः ॥ १५२ ॥ देवा देवर्षयो छत्र तथा ब्रह्मर्पयोऽमेलाः । कीर्र्यन्ते शभक्रमांगस्तथा यहा। महोरगाः ॥ २५३ ॥ भगवान वाल देवश्च कीर्त्य तेऽत्र सनातनः। स हि सत्यमृतञ्चीव पवित्रं पुरस्यमेव च ॥ २५४॥ शाश्वतं ब्रह्म परमं भूवं ज्योतिः सनातनम् । यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीपिणः ॥ २५५ ॥ श्रसच सदसबैव यस्माद्विश्वं प्रवर्त्तते सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपनर्भवाः ॥ २५६॥ श्रध्यातमं श्रयते यञ्च और कालही सब लोकोंमें अलङ्गनीय है, बली काल सब प्राणियोंमें वेरोकटोक फिरता है और वह सबका आत्मा है ॥२४६॥ यह कालही

(30)

पहिला

न्त्यात्मन्यवस्थितम् ॥ २५=॥धद्वधानः सदायुक्तः सदा धर्मपरायसः । शास विजिममध्यायं नरः पाषात् प्रमुच्यते ॥ २५६ ॥ ध्रमुक्रमणिका-ध्यायं भारतस्येममादितः। शास्तिकः सततं शुग्यन्न कृच्छुेप्ययसी-दति ॥२६०॥ उसे मध्यं जपन् किञ्चित्सद्यो मुच्येत किरिवपात् । शह-क्रमराया यावत स्यांद्ह्या राज्या च सञ्चितम् ॥ २६१ ॥ भारतस्य चपु-ह्ये तत्सत्यं चामनमेव च । नवनीतं यथा दश्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ २६२ ॥ ब्रार्ग्यकं च वेदेभ्यश्चीवधीभ्योऽमतं यथा । हदानामृद्धिः श्रेष्टो गौर्वरिष्टा चतुष्पदाम् ॥ २६३ ॥ यथैतानीतिहासानां तथा भार तमुच्यते । यश्चैनं श्रावयेच्छाद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः । श्रद्मय्यमज्ञ-पानं वै पित्रस्तस्योपतिष्ठते ॥२६४ ॥ इतिहासप्राणाभ्यां वेदं सम्प-इ'हयेन् । विभेत्यल्पश्चनाहेदो मामयं प्रहरिष्यनि ॥ २६५॥ कार्ष्ण चेट-मिमं विद्वान श्रावियत्वार्थमञ्जूते । भ्रणहत्यादिकं चापि पापं दह्याद-श्रव्यक्तादि है जो परम निर्विशेष रूप फल जाना है वह भी यह ही हैं ॥ २५७ ॥ ध्यान योगके यलवाले जो योगीइवर मुक्त होगए 👸 उनके हृदय में रहनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको दर्पण में दीयनेवाले प्रति विस्वकी समान देखते हैं ॥ २७= ॥ सर्वदा धर्ममें दत्तचित्त, अद्धाल श्रोर सर्वदा उद्योगी जोपुरुष,सर्वदा इस श्रव्यायका पाठ करता है वह मुक्त होजाता है ॥ २५६ ॥ जो श्रास्तिक पुरुष श्रद्धाले इस महाभारत के श्रदक्रमणिका श्रध्यायको प्रारम्भको संगाप्ति पर्यन्त सनता है। यह कदापि सङ्घटमं नही पड़ता है।।२६०॥ इस श्रनुक्रमिकापर्वके एक श्राधे खोकको भी जो कोई मनसे प्रातःकाल वा सन्ध्याकालको पढ़ता है तो वह तत्काल दिन या रात्रिमें फिए हुए सब पापींसे छुट जाता है ॥ २६१ ॥ यह अध्याय महाभारतका शरीररूप सत्य श्रीर श्रमृत की समान है, दहीमें जैसे मक्खन मनुष्यों में जेसे ब्राह्मण 🖟 वेदोंमें जैसे आरएयक, औषधियों में जैसे अमृत सरोबरी में जैसे समद्र और पशुश्रोंमें जैसे गी श्रेप्ट है उसीवकार यह महाभारत इतिहासोमें श्रेष्ठ कहाजाताहै जो कोई. इसका एक चरण भी ब्राह्मणींको श्राद्धके समय श्रन्तमें सुनाता है तो उसके पितरींको श्रवश्य श्रज्ञय श्रज्ञपान मिलताहै इतिहास श्रीर गुराखोंकी सहायता से वेदांकी वृद्धि करनी चाहिये॥ २६२—२६५॥ परन्तु देद, श्रहपत पुरुप हमारा नाश करेंगे ऐसा विचार कर उनसे डरतेहैं। ब्यासजी

के रचेहर इस सम्पूर्ण वेदको जो पुरुष सुनता है वह पुरुपार्थको पाता

 भाषानुवाद सहित । पञ्चभृतगुणात्मकम् । श्रव्यक्तादिषरं यद्य स एय परिगीयते ॥ २५७ ॥ यत्तद्यतिवरा मुक्ता ध्यानयोगवलान्विताः । प्रतिविस्वमिवादशै पश्य-

श्रध्याय]

(३१)

(३२) * महाभारत श्रादिपर्व * [पहिला संग्रयम् ॥ २२६ ॥ य इमं ग्रुचिरच्यायं पठेत् पर्वेणि पर्वेणि । श्राप्तीतं भारतं तेन कृत्स्त स्वितः ॥ २६० ॥ यद्यैनं ग्रुण्याश्वित्य-मार्य श्रद्धासमित्यतः । स दीर्घमागुः कोलिङ्क स्वर्गोठं चापुन्याश्वरः ॥ २६६ ॥ एकतश्चतुरो वेदान् भारतं चतदेकतः । पुरा किल सुरैः सर्वेः समेर्य तुल्या भृतम् ॥ २६६ ॥ चतुन्यः सरहस्येभ्यो वेदेश्यो इन

धिकं यदा। तदाभभृति क्षोकेऽस्मिन्महाभारतमुच्यते॥ २७०॥ महत्त्वे च ग्रियमाणं यतोऽधिकम्। महत्त्वाद्भारतस्याच महाभारत्व्यक्ष्मम् महत्त्वाद्भारतस्याच महाभारत्व्यक्षम् यो निरुक्तमस्य यो वेद सर्वयापि अमुच्यते॥ २०१॥ तपा न क-हकोऽध्ययनं न करकः स्वाभाविको वेदिविधिनं करकः। प्रसास विचाहर्र्यणं न करकस्तान्येय भाषोपहतानि करकः॥ २७२॥ हित श्रीमहाभारतशतसाहकार्य संहितायाँ वैयासिक्यां स्वाधिवयां। अधिवर्योग्यमकम्। विकास प्रसादिकार्याः। अधिवर्योग्यम्यकम्। विकास प्रस्तिक्यां। विवासिक्यां

है और गर्भपात (बालहत्या) श्रादि पाप भी महाभारतको सुननेसे अवश्य नए होजातेहें, इसमें साग्य नहीं है जो पुत्र पवित्र होकर इस अध्यायका पर्व २ में पाठ करताहै उसको सम्पूर्ण महाभारतको पढ़नेका पुत्र फल मिलताहै ऐसा मेरा मत है, जो पुत्र इस महाभारतको अद्यासे सुनेंगे। २६०॥२६॥ वह वहां आगु और कीर्त पाकर अस्तमें स्वर्ग जायेगे पहिले सब देवताओं ने एक और वार्रीवेदोंको और उसीर प्रदेश करते असेरी और अकेले महाभारतमात्र को रखकर तोलाथा, तय रहस्य

सहित चारों बेदोंकी अपंता भी भारत अधिक हुआथा॥ २६६॥ २००॥ तबसे सं सारमें यह महाभारत कहाता है क्योंकि यह अन्य महस्व और गुक्त इन दोनोंफकारसे उत्तम हुआथा, यह अन्य सब अन्यों हैं, जिन्त गड़ा होनेसे और अयेंमभी गंभीरहोनेस महाभारत कहाता हैं, जिन्त गुक्योंने इसका ठीक र अर्थसमका है यह सब पापों से मुक होगए हैं॥ २०१॥ २०२॥ तप निर्मल साधन गिना जाता हैं, वेदा-ध्ययन निर्मल साधन गिनाजाता है, स्वाआविक बेदोक्तिविधि भी

निर्मल गिनीजाती है दुर्शत शिलोञ्छुतृत्ति भी निर्मल साधन गिनी जाती है परन्तु ऊपर करे हुए यह तप आदिक यदि शुद्ध भावरहित किये हों तो वह शुद्धसाधन नहीं गिनेजाएँगे किन्तु पापबद होते हैं॥ २७३॥ ॥॥ अधम अध्याय समात ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

 भाषानुवाद सहित % (33) श्रद्याय ी भूषय ऊचुः । समन्तपञ्चकमिति यदुक्तं सृतनन्दन । एतन् सर्व यथातः यं श्रोतुमिच्छामहे चयम् ॥ १ ॥ सीतिक्याच । शगुध्यं मम भो विशा ब्रावतक्ष , कथाः शभाः । समन्तपञ्चकारुयञ्च श्रांतुमहेथ सत्तमाः॥ २॥ वंताहापरयोः सन्धी रामः शस्त्रभृतां वरः । श्रसकु-त्यार्थिवं स्तरं जवानामयेचादितः ॥ ३ ॥ स सर्वं स्वमत्साय स्ववीर्यं-गानलयतिः । समन्तपञ्चके पञ्च चकार रीधिरान् हदान् ॥ ४॥ स तेषु विधराम्भःसु हु रेषु फोधमू छितः । पितृन् सन्तर्पयामास विध-रेणेति नः अनम् ॥ ५ ॥ श्रोधर्याकादयोऽभ्येत्य पितरो राममञ्जन । राम राम महाभाग प्रीताः स्म तब भागव ॥ ६ ॥ प्रानया वित्यस्वा च विक्रमेण तब प्रभो । वरं वृणीष्य भद्रं ते यमिच्छसि महाय्ते॥७॥ राम उवाचे । यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुप्राहाता मथि । यद्य रोपाभि भूतेन स्वमुन्सादितं मया ॥ = ॥ शतश्च पापान्तुच्येऽर मेप मे प्राधितो वरः। हुनाख तीर्थभृता मे भवेयुर्भुवि विश्वताः॥ १ ॥ एवं भविष्य-मृपिप्छुनेलगे कि-हे स्वपुत्र ! श्रापने जो समंतपंचक नामका तीर्ध फहा उसके विषयमें हम सर्वोको यथार्थरूपसे छुनने की इच्छा है।१। सुनने कहा कि—हे बासली में वह शुभकारी कथाएं कहताहूँ तुम सनो हे मन्द्रयोंमें श्रेष्ठ !समंतर्वचक नामक चेत्रके विषयमें जो कुछ कहा जाय उसको खननेके तुम योग्य हो ॥२॥ घेतायुग और द्वापरयुग के संधिकालमें चत्रियोंने परशुरामजीके पिताको मारडालाथा श्रतः उत्पद्म

याँमे श्रेष्ठ ऐसे जमदिलके पुत्र परशुरामने श्रंपने पराक्रमसे चारस्वार बहुतसे चित्रियोंको गठ करके संमंतर्पवक नामक तीर्थमें क्लियोंके रक्त से भरेहुण्यांच तालाच चनाये थे॥३-४॥ श्रापने सुना है कि क्लियेंके रक्त हे पर्युरामने रक्तसे पूर्ण पांच हुदों के रक्तसे पितरोंका तर्पण कराथा॥ ५ ॥ तथा इस तर्पण तुन् हुए परशुरामने रक्तसे पूर्ण पांच हुदों के रक्तसे पितरोंने प्रत्यक्त कराथा॥ ५ ॥ तथा इस तर्पण तृन हुए क्रुवीकादि पितरोंने प्रत्यक हर्यान देकर परशुरामजीसे इस प्रकार कहा था कि-हे राम हे राम हे महाभाग हे मुगुकुलोश्यन तुम्हारी इस पितृमिक्तसे श्रीर पराक्रमसे हम प्रस्तान हुए हैं है विभो तुम्हारा कल्याण हो हे महा प्रतायी ! तुम्हारी इन्ह्यां श्रावे चहु वर हमसे मांगलो॥ ६ ॥ ७॥ परश्राम कहनेलोकि-हे पितरों ! श्रांग को मेरे अपर प्रसन्त हुए हैं शीर

हुए कोघले उसकाए हुए श्रक्तिकी समान तेजस्वी श्रीर सब श्रक्षधारि-

मुभे कृतार्थं करनेकी इच्छा करतेहैं तो मैने जो कोधवश होकर चृत्रियों के कुलका नाश करा है में इन पापसे छुटू औरयह मेरे सरोवर पृथ्वी में प्रसिद्ध और तीर्थक्ष होवें ऐसा वर मुभे दीजिए ॥=—६॥ तव पितरोंने कहा कि श्रच्छा ऐसाही होगा और तुमभी श्रव चमाकरो ऐसा

सहाभारत प्रादिपर्व # [पहिला (35) र्धात्वेदं वितरस्तमधात्रुवन् । तं क्षमस्वेति निपिपिश्रुस्ततः स विर-्यन हु॥ १०॥ तेयां लगीपे यो देशो हदानां रुधिरास्भलाम् । सम-स्टपक्कर मिनि पुरुषं तत्परिकीर्तितम् ॥ ११ ॥ येन लिंगेन यो देशो हुन्तः लहुप्तृत्वते । तेनैव नास्ना तं देशं वाच्यमहिर्मनीषिणः ॥१२ ॥ इत्हरे देव सन्द्राप्ते स्तिद्वापरयोरभृत् । समन्तपञ्चके युद्धं कुवपी-ग्राद हेनदी: ॥१३ ॥ तश्मिन परमधर्मिष्ठ देशे भूदोपवर्जिते । श्रप्रादश लमारान्द्रकोहितवो युव्तसया ॥ १४ ॥ समेत्य तं द्विजास्ताश्च तत्रैष विकारं गताः । एतन्नामाभिनिवृत्तं तस्य देशस्य वे द्विजाः ॥ १५ ॥ पुरुदाइ रमर्गायक ज देशो वः प्रकीर्तितः । तदेतत् कथितं सर्वभया ि होहुक्तराहाः ॥ १६ ॥ यथा देशः स विख्यातस्त्रिषु लोकेषु सुव्रताः । प्राप्त हार्युः । प्रज्ञीहिएय इति प्रोक्तं यस्त्रया सुतनन्दन। एतदिच्छा-तरे कोनं सर्वनेव यथातथम् ॥ १७ ॥ असौहिएयाः परीमाणं नरा-व्यर्थप्नितनान्। यथावखेव नो ब्रहि सर्व हि विदितं तव ॥ १=॥ र्छातित्वाच । दक्ती तथी गजधीको नराः पञ्च पदातयः । त्रयध्य तर-फहकर उनको हिंसा करनेका निषेध किया तब परशुराम हिंसा करनेसे रुक्षे छीर पितर भी अपने **लोकको चलेगप॥१०॥इसके अनन्तर रुधिर** के क्रोबरों के क्रमीएमें को पवित्र प्रदेश थायह समंतपञ्चक इस नामसे असिव्ह हुआ। ११॥को देश जिस तक्षणसे पहिचाना जाय वह ही उस देश का हान कहता चाहिये ऐसा चतुर मनुष्य कहते हैं ॥१२॥ कलि और हाररके लंधिकालमें समंतर्पचक नामके स्रेत्रमें कौरवी और पागडसी की लेनाका महानवंकर युद्ध हुआ था॥१३॥ उस समय परम पवित्रं द्यीर भूतीप (कांदा घादि) से रहित प्रदेशमें युद्धकरनेकी इच्छा करने दाली अठारह जज़ीहिसी सेनांप इकट्टी हुई थीं ॥१४॥ और हे श्रेष्ठ ब्रा-खर्गो! वहलेनाएं उस प्रदेशमें इकट्टी होकर परस्पर कटमरी हे ब्राह्मणीं तक्ले उस देएका समंतपञ्चक नाम पड़ा है ॥१५॥ और हे सदाचारी ब्राह्मणी | वह पवित्र और रमणीयप्रदेश जिसप्रकार तीनी लोकोंमें प्रक्तिक हुन्ना वह जानने योग्य सम्पूर्ण वाते मैंने तुमको अञ्जी प्रकार कह हुनाई हैं ॥ १६ ॥ ऋषि पंडनेलगे कि हे सुतात्मज आपने जो छलौहिणी सेनाके विषयमें कहा है उस विषय में हम पूर्णरीति से जुनना चाहते हैं ॥ १७ ॥ आप सर्वेश हैं अतः अन्तीहिशीका परिमाण तथा उसमें कितने पैदल, घोड़े, हाथी और रथ होते

हैं वह हरूले यथार्थ रीतिले कहियेगा ॥१= ॥ सूत कहनेलगे जिसमें म्फरण एक हाथी, पांच पैदल, और तीन घोड़े होते हैं उस को

विद्वान एक पत्ति कहते हैं ॥ १८ ॥ श्रीर इस तीनगुणी पत्तिको विद्वान एक सेनामुक कहते हैं ॥ सेनामुक्क प्रका गुरुम कहते हैं ॥ शा तीन गुणिकी एक पाहिनी श्रोर तीन हैं ॥ शा तीन गणिकी एक पाहिनी श्रोर तीन हैं ॥ सिनी प्रकार पत्ता होती हैं, ऐसा सेनाने पिनने पालों में चतुर मुख्य कहते हैं ॥ २१॥ तीन प्रताकी एक चमू और तीम चमूकी एक श्रानीकिनी और दश श्रानीकिनीकी एक श्रानीकिनी होते हैं, इसप्रकार विद्वान कहते हैं ॥ २१॥ है श्रेन्ड ब्राह्मणी गणितवेस्ताश्रीने गणित । अस्त कहते हैं ॥ २२॥ है श्रेन्ड ब्राह्मणी गणितवेस्ताश्रीने गणित । इस्ति कहते हैं ॥ २२॥ ह श्रेन्ड ब्राह्मणी गणितवेस्ताश्रीने हैं उतमी ही । इस्ति कहते हैं ॥ २३॥ ३३॥ ३४॥ श्रीर हे वीपरहित ब्राह्मणी कही हैं ॥ ३३॥ ३४॥ श्रीर हे वीपरहित ब्राह्मणी

 (६६) # महाभारत श्रादिपर्य # [दूस

ह्म है परमान्त्रिति । श्रष्टानि पञ्च द्वोणस्तु ररस् क्षुतृवाहिनीम् ३० शहनी युगुशं हे तु कर्णः परवलाईनः । शहयोऽर्व्धदिवसञ्चेव गदायु-ह्मनः एरम् । दुष्योधनस्य भीमस्य दिनाईममयन्वयोः॥३१॥ तस्यैव ग्रियः सन्तान्त्रं द्वीतिहार्दिक्यगातमाः । प्रसुप्तः निश्च विश्ववस्तं कम्मुर्यौ-विष्टि नित्त्रः ॥ यन्तु शौनकसत्रे ते भारताख्यानश्चन्तमम् । जनते प्रतृष्ट्य नगस्त्रे व्यासांश्रप्येण् धीमता ॥ ३३॥ कथितं विस्तरा-र्थक्ष व्योगं वीवर्षं महीस्तिताम् । पौष्यं तत्र चपौलोममास्तीकं चादितः

स्मृतस् ॥ ३४ ॥ विचित्रार्थपदः त्वयानमनेकसमयान्वितम् । प्रतिपक्षं नरेः प्रार्धवैरान्यभित्र मोजिभिः ॥ ३५॥ आरमेव वेदितस्येषु प्रियेषिष हि जीवितम् । इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्ठः सर्वागमेष्वयम् ॥ ३६ ॥ सन् क्षिन्येत्रसाख्यानं कथा भुवि न विचते । श्राहारमनपाश्यस्यश्ररी-रास्तेत अन्तराह् ॥ ३०॥ तदेतद्वारतं नाम क्षेत्रिस्त्पकीव्यते । उद-एकेन्दु (सर्मु न्देर् अकात इदेश्वरः ॥ ३८ ॥इतिहासोत्तमे श्राह्ममार्थिता

हार्यने गुंच ज़िनतक युद्ध किया था ॥३०॥ शत्रुखेना केपीडक कर्णने हो ज़िनतक पुद्ध किया था, आधे दिन शत्यने युद्ध कराथा, और वाकी का हाटा दिन. मानलेन और तुर्योधनके चले हुए गदायुद्ध में पूरा हुआ था ॥ ३१ ॥ उलहीं दिन रातको द्रोणके पुत्र अश्वरक्थामा, कृतवर्मा ग्रीर हपाचार्यने जिलकर निर्मयहों सोती हुई शुधिएकी सेनाका नाश करा था ॥ ११ ॥ हे शीनक | १ल उत्तम महाभारतका जो मैंने तुम्हारे दश्ते क्यां हु शीनक | १ वर्च क्यां महाभारतका जो मैंने तुम्हारे दश्ते क्यां था ॥ १८ ॥ हे शीनक | १ वर्च क्यां महाभारतका जो मैंने तुम्हारे दश्ते क्यां हु उच्च हो हो भगवान वेद्यासके शिष्य युद्धिमान हे शुण्यान शीने कनसेकय राजाके सर्पयक्षमें वर्णन किया था महाभारत

का बहुतका विस्तार है उसमें राजाओं के यश और पराक्रमका विस्तार के वर्णन करते हुए पांच्य, पौलोम और आस्तीकपर्व प्रारम्भमें कहे हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ योक्कार्थियों ने कैसे वैराग्य प्रहण करा है, तैसे ही विद्वानीने विस्वित्र कारके स्रयं और अनेकों कथाओं से पूर्ण तथा अनेक प्रकारकी विद्वानीने किया कराहे ॥ ३५ ॥ काननेयोग्य विद्यामों कैसे आतम्बान अष्ठ है, और प्रिय वस्तुओं में कैसे जीवन ग्रेस्ट है, कीर प्रय वस्तुओं में कैसे जीवन ग्रेस्ट है, हो है विद्वान सरवेवाला यह महाभारत स्रय शास्त्रों किस

जारन अण्ड है, तस अक्षकान करनवाला यह महामारत सर्व शास्त्रा से रोग्न राजाता है। विश्वश आहारके विना जैसे ग्रारीर नहीं टहरसकता तेले ही एस जनत्में ऐसी कोई कथा नहीं है जो महाभारतके अधीन नहीं। ३, आश्रानी वढ़ती चाहने वाला सेवक जैसे सरकुलमें उत्पन्न हुए स्यामीकी दिनदसे सेवा करताहै, तैसे हा सम्पूर्ण किव अद्भुतकाव्यकी एका करनेके लिए एस महाभारतका ही आश्रय लेते हैं।। ३८॥ जैसे संसारको एनेस्प्रकारसे वेदका हान देनेवाली वाणी स्वर और व्यक्जन

भाषानुवाद सहित # (३७) अध्याय ी बुद्धिरत्तमा । स्वरव्यंजनयोः कृत्स्नां लोकवेदाश्रयेव वाक् ॥ ३८ ॥ तस्य प्रशामिपन्नस्य विचित्रपदपर्वणः । सन्मार्थन्याययक्तस्य वैदार्थे-र्भृतितस्य च ॥४०॥ भारतस्येतिहासस्य श्रृयतां पर्वसंत्रहः । पर्वातु-क्रमणीपर्व हितीयः पर्वसंबहः ॥ ४१ ॥ पौष्यं पौलोगमास्तीकमादिवं शावतारणम् । ततः सम्भवपर्योक्तमद्भतं रोमहर्पणम् ॥ ४२ ॥ दाहो जनुगृहस्यात्र हैडिम्बं पर्व चोच्यते । ततो वक्षधः पर्व पर्व चैत्ररथं ततः ॥ ४३ ॥ ततः स्वयम्वरो देव्याः पाञ्चाल्याः पर्व घोच्यते । ज्ञात्र-धर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम् ॥ ४४ ॥ विहुरागमनं पर्व राज्य-लाभस्तर्थव च । अर्जुनस्य वने वासः सुभद्राहरणं ततः ॥ ४५ ॥ सुभद्राहरणादृद्धं हेये हरणहारिकम् । ततः लाग्डबदाहालवं नथव भयदर्शनम् ॥ ४६ ॥ सभापर्यं ततः प्रोक्तं मन्त्रपर्यं ततः परम्। जरास-म्ध्रयथः पर्व पर्व दिग्विजयं तथा॥ ४०॥ पर्व दिग्विजयादृष्वे राज-स्थिकमुच्यते । तत्थार्घाभिहरणं शिश्यालयधस्ततः ॥४= ॥ धतपर्व में रहती है, तैसेही दितकारिणी युद्धि इसही सर्वोत्तम इतिहास-प्रस्थ में रहती है ॥ ३६ ॥ घार तुम सकत प्रहाके भएडारक्ष विचित्र-पद और पर्ववाले सुरम अर्थऔर न्यायों से भरेहर तथा वेदों के अहीं से शोभायमान इस महाभारत नामक इतिदासके विचित्र पद्वाले पर्वाकी श्रवक्रमणिकाको सुनो ॥४०॥ प्रथमपर्व श्रवक्रमणिकापर्व है दूसरापर्व संब्रहपर्व है उसके अनन्तर पोष्य, पोलोग और खास्तीक पर्व हैं ४१ उसके अनन्तर आदिवंशावतार पर्व है, उसके पीछे, अदुभुत और रोमांचजनक संभवपर्य कहाहै॥४२॥उसके विछे जतुगृहदाह पर्व हैडिम्ब षत्रपर्व, वकवधपर्व और उसके पीछे चैत्ररथ पर्व श्राताहै॥४३॥ फिर जिसमें देवी पांचालीने वर प्राप्त कराहै वह हवयम्बरपर्व कहाताहै, उसके श्रान्तर चत्रियधर्मसे सबको जीतकर द्वीपदीको विवाहा वह षैवाहिकपर्व प्राताहै॥ ४४॥ उसके प्रमन्तर विदुरागमनपर्व और राज्यलाभपर्व श्राताहै उसके श्रमन्तर श्रर्जुनवनवासपर्व सुभद्राहरण-पर्व ॥ ४२ ॥ श्रीर उसके श्रान्तर हरलाहरलपर्व श्राता है, उसके श्रन-न्तर खाएडवदाह नामका पर्व कि जिसमें मयदानवका दर्शन हुआ है ॥ ४६ ॥ उसके पीछे जो पर्व थाता है वह सभापर्व कहाता है, उसके भीतर मंत्रपर्व, जरासंधवधपर्व, दिग्विजयपर्व ॥ ४७ ॥ शौर दिन्वि

जयके श्रनन्तर राजस्विकपर्व श्राताहै, उसके श्रनन्तर श्रवीभिहरण-पर्व, शिश्चपालवधपर्व, ॥ ४= ॥ यूनपर्व श्रीर किर श्रनु यूनपर्व श्राता है, उसके पीछे श्रारएयक (वन) पर्वका प्रारम्म होताहे उसके भीतर

पिहला # महाभारत श्राविपर्व # (==) ततः प्रोक्तम्बुध्तमतः परम् । तत आरण्यकं पर्व किर्मीरवध एव च ॥ १६॥ छातुन्स्वाभितसनं पर्वे होयमतः अरम् । ईश्वरोज्नयोर्युद्ध पर्द कैरानसंक्षितस् ॥ ५०॥ इन्द्रलोकासिगमनं पर्व क्षेयमतः परम् । पर्पत्कवानम्मि च व्यामिकं करेणीद्यम्॥ ५१ ॥ तीर्थयात्रा ततः प्य हुनुराज्ञक्य धीमतः । जटाखुरस्यः पर्य यत्त्रयुद्धमतः परम् ५२ निदातकक्षेत्रीद्वं पर्वं चाजगरं ततः। सार्कग्रहेयसमस्या च पर्वान-न्तरजुञ्यते ॥ ५३ ॥ संबादश्च ततः पर्व द्वीपदीसत्यभामयोः । घोषः यात्रा ततः पूर्वभृगत्वप्रोद्भवस्ततः ॥ पृष्ठ ॥ ब्रीहिद्दीणिकमाख्यान-मैन्द्रपुन्नं तरीव द । द्रौपदीहरखं पर्व जयद्रथविमोक्सम् ॥ ५५ ॥ पतिव्रताया मोहात्म्य लाविज्याधीयमञ्जूतम्।रामोपाखवानमञ्जेव पर्व क्षेत्रमतः परम् ॥ ५६ ॥ कुएडलाहरणं पन् ततः परमिहोच्यते। श्रार-लुँ इंहतः पर्दे च राटं तदनन्तरम्। पागडवानां प्रवेशश्च समयस्य च पाहरम् ॥ ५० ॥ कीचकानां वधः पर्यं पर्वं गोग्रहण् ततः। श्रिम-किसीरवधपर्व द्याता है॥ ४६॥ उसके अनन्तर श्रर्जुनाभिगमननामका एचे जाता है, एसके प्रमन्तर जिसमें महादेव और अर्जुनका युद्ध हुआ है वह कैरात नामका पर्व आता है।।५०।। और उसके पाँछे इन्द्रलोका-भिगमन पर्दे झाता है और उसके अनंतर धार्मिक और करणारस से पूर्ण नहाख्यान पर्ने बाता है ५१ उसके री छे बुखिमान् कुरुराजकी तीर्थयात्रा का पर्व दाताहै उसके भीतर ही जहासुरवधपव कहा है, उसके अनन्तर यक्तयुद्धपर्व झाता है ॥ ५२ ॥ उसके पीछे निवातकवर्षीके साथ युद्ध हुआ वह पर्व, उसके अनन्तर आजगरपर्व, और उसके पीछे मार्क्तरङ्ग्यसमस्यापम् कहनेमें जाता है॥५३॥ उसके पीछे द्रौपदी सत्य-भासासम्बादपर्व और उसके अनंतर घोषयात्रा पर्व आता है उसमें ही मृगद्दशोङ्ख्पर्व त्रीर ब्रीहिद्रौणिकपर्वती कथा कही है, उसके इनंतर ऍद्रद्युस्तका आख्यान आता है, उसके अनंतर द्रौपदी-हरणपर्व झाता है, उसमें जयद्रथ विमोत्तग है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ तथा रासीपांख्यान ग्रीर पतिवता साविशीके महात्म्यरूपी पर्वेनिकी कथाएं जाती हैं॥ ५६ ॥ उसके अनन्तर कुंडलाहरण नामकापर्य कहतेमें जाता है, उसके पीछे जारखेय पर्व हैं और उसके अनन्तर क्राद्यवंका झारम्भ होता है इस पर्वके भीतर पागडवन्न वेशपर्व तथा एक वर्षपर्यन्त गुप्त रहना अर्थात् तहचना नुसार समय पालन पर्वर्की कया आती है ॥ ५७॥ उसके अनन्तर की चकवध पर्व है. वलके पीछे गोहरण पर्व आता है, उसके पीछे अभिमन्यु और विराद् राजाकी पुनोके विवाहका वैवाहिकपर्व श्राता है, उसके अनन्तर परम प्रजागरस्तथा पर्व धनराष्ट्य चिन्तया। पर्व सानत्स जातं वे गुह्य-मध्यात्मदर्शनम् ॥ ६० ॥ यानसन्धिस्ततः पर्वे भगवयानमेव च । मातलीयमुपाऱ्यानं चरितं गालवस्य च ॥ ६१ ॥ सावित्रवासदेवस्च पौर योपाल्यानमे व च। जामद्रम्यमुपाल्यानं पर्व पोडशराजिकम ६२ सभाप्रवेशः रूप्णुस्य विद्वलाषुत्रशासनम् । उद्योगः सैन्यनिर्याणं प्रवे-त्तोपाल्यानमेव ॥६३॥ इत्यं विवादपर्वात्र कर्णस्यापि महात्मनः। निर्वाण्डच ततः पर्वे क्रुरुपाएडवसेनयोः ॥ ६४ ॥ रथातिरथसं^{व्}या

च पूर्वोक्तं तदनन्तरम्। उल्कदृतागमनं पर्वामपीववर्द्धनम् ॥ ६५ ॥ श्रम्बोपाखयानमञ्जय पर्वा रामातः परम् । भीष्माभिषेचनं पर्वा तत-

श्रद्धत उद्योग पर्वका श्रारम्भ होता है ॥ ५= ॥ उसके भीतर संजय-यान पर्व ज्ञाताहै॥ ५६ ॥ उसके जनन्तर भृतराष्ट्रकी चिन्तासे भरा गुजा प्रजागर पर्व आताहै, तदनन्तर जिसमें गुहा अध्यात्मदर्शनका समावेश दुशा है पेसा सनत्सुजात पर्व जानो ॥ ६० ॥ उसके पीछे पानसंधिपर्व, उसके अनन्तर भगवद्वयानपर्वश्राता है उसमें मातली का उपाख्यान, गालवका चरित्र, सावित्र, धामदेव और वैएय का श्राख्यान जमदभ्तका श्राख्यान, पोडशराज नामका श्राख्यांन ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ श्रीहुप्लजीका सभाप्रवेश, विद्लाकापुत्रको उपदेश, उसका

कराहुआ उद्योग, आदि पर्वी की कथाएँ आती हैं उसके पीछे सैन्य-निर्याण नामका पर्व है, उसके अनन्तर विश्वोपाख्यानपर्व आता है ॥६३ ॥ उसके पीछे श्रीरूप्णजी श्रीर महात्मा फर्णका वादानुवाद पर्व आता है, उसके पीछे कोरवी और पाएडवीकी सेनाका निर्याल-पर्व है, तदनंतर रथातिरथ संख्या पर्व है, और उसके अनन्तर अपार फोधको उत्पन्न करे ऐसा उल्कट्ताभिगमन नामका पर्व है,।।६४॥६५॥ उसके पीछे अम्बोपाच्यानपर्व आता है. ऐसा जानो, उसके अनन्तर

भोष्मिपतामह जो स्वयं वृद्ध छोर श्रदुभृत थे उनका सेनाधिपतिकी रीतिसे अभिषेक हुआ है ऐसा भीष्माभिषेक पर्वका आरम्भ होता है उसके मध्यमें प्रथम जम्यूखरूड निर्माणपर्व है उसके श्रनन्तर भूमिपर्व है जिसमें ब्रीपका विस्तारसे वर्णन किया है, तदम-न्तर भगवद्गीतापर्व श्राता है, तदनन्तर भीष्मवधपर्व है, तदनन्तर

द्रोणाचार्यका सेनाधिपतिके पद्पर प्रतिष्ठित करनेका जिसमें वर्णन है।ऐसा द्रोणाभिपेकपर्व है,तदनन्तर संशप्तकवधपर्व है,तदनन्तर श्राभ-मन्युवध है, तदन्तर प्रतिज्ञापर्व श्राता है, उसके श्रनन्तर जयद्वथवध

दूसरा # महाभारत श्रादिपर्व # (80) श्चाद्भतमुख्यते ॥ ६६ ॥ जम्बखरडविनिर्भागं पर्वोक्तं तदनन्तरम् । भमिपूर्व ततः प्रोक्तं द्वीपविस्तारकीर्त्तनम्॥ ६७ ॥पर्वोक्तं भगवद्गीता पूर्व श्रीप्मवधस्ततः । द्रोगाभिषेचनं पूर्व संशतकवधरततः ॥ ६८ ॥ श्रभिमन्युवधः पर्व प्रतिकापर्व चोच्यते । जयद्रथवधः पर्व घटोत्व च-वधस्ततः ॥ ६८ ॥ ततो द्रोणवधः पर्व विवेयं लोमहर्पणम् । मोक्तो नारायणास्त्रस्य पूर्वानन्तरम्ब्यते ॥ ८०" वर्णपूर्व ततो होयं शत्यपूर्व सतः परम । ह दप्रवेशनं पर्व गदायु सतः परम् ॥ ७१ ॥ सारस्वतं ततः पर्व तीर्थव शानुकीर्त्तनम् । अत ऊर्व्व सुदीभत्सं पर्व सीप्तिक-मुच्यते ॥ ७२ ॥ ऐवीकं पर्व चोहिष्टमत ऊर्ध्व सदाहरणम्। जलप्रदानिकं पर्व स्त्रीविलापस्ततः परम् ॥ ७३ ॥ श्राद्धपर्व ततो होयं करू सामी धर्वनै-हिकम । चार्चाकस्य वधः पर्व रत्तसो ब्रह्मरूपिणः ॥ ७४ ॥ श्राभिपैच-निकं पर्व धर्मराजस्य धीमतः। प्रविभागो गृहाणाञ्च पर्वोक्तं तदन-न्तरम् ॥ ७५ ॥ शान्तिपर्व ततोयत्र राज्यमानुशासनम् । श्रापद्धर्म-श्च पर्वोक्तं मोक्तधर्मस्ततः परम् ॥ ७६ ॥ शुक्रप्रश्नाभिगमनं ब्रह्माप्र-श्नानशासनम् । प्रादर्भावक्षा दुर्वासाःसवादश्चमायया ॥ ७७ ॥ ततः पर्व परिक्षेयमानुशासनिकं परम् । स्वर्गारोहण्यि बचैव ततो पर्व. तदनन्तर घटोत्कचवधपर्व. तदनन्तर रोमांच खडे करनेवाला द्वीर्णवधपर्व है, तदनन्तर नारायणास्त्रमोत्तपर्व कहनेमें ज्ञाता है, ६६ ७०॥ तदनन्तर कर्ण पर्व का आरम्भ होता है, उसके पीछेशक्यपर्व का ष्प्रारम्भ होता है, उसके भीतर हदप्रवेशपर्व है. तदनन्तर गदायदा-पर्व है ॥ ७१ ॥ उसके अनन्तर सारस्वतपर्व है, उसमें तीथाँका और वंशोंका वर्णन कियागया है, तदनन्तर वीभत्सरससे पर्ण सौप्ति कपव कहा जाताहै॥ ७२॥ तदनन्तर जो श्रतिदारुण है ऐसा ऐपीक पर्व श्राताहै, तदनन्तर जलप्रदानिकपर्व है, उसके पीछे स्त्रीविलापपर्व आताहै ॥ ७३ ॥ तदनन्तर जिसमें मरे हुए कौरवोंकी उत्तरक्रियाका वर्णन है ऐसा श्राद्धपर्व श्राताहै, तदनन्तर जिसमें ब्राह्मणके वेपसे आएंडए चार्वाक राज्ञसका वध करना रूपी जिसमें कथा है ऐसा चार्वाकराक्तस वधपर्व है, तदनन्तर वुद्धिमान् धर्मराजको राज्याभिन षेकपर्व है, तदनन्तर प्रहप्रविभाग नामका पर्व कहा है॥ ७४॥ ७५॥ तदनन्तर शांतिपर्वका आरम्भ कियाजाताहै. उसके भीतर प्रथम राज-धर्माद्रशासन पर्व है, तिसके अनन्तर आपद्धर्मपर्व है, तदनन्तर मोज-धर्मपर्व है ॥ ७६ ॥ उसमें शुक्रप्रश्नाभिगमनपर्व ब्रह्मप्रश्नुशासनपर्व,

दुर्वांसा प्रादुर्भावप० श्रीर मायासम्वाद इत्यादि पर्व श्राजाते हैं॥ ७०॥ तदनन्तर श्रानुशासिकप० श्राताहै उसमें वृद्धिमान भीष्मजीका स्वर्गा-

श्रध्याय] भीष्तर्य धीसतः॥ ७=॥ ततोऽर्यमेधिकं पर्य । सर्व पापप्रणाशनम् । शनुगीता नतः पर्वं प्रेयमध्यात्मवाचकम् ॥ ७६ ॥ पर्वः चाश्रमवासा-सायं पुत्रवृशीनमेय च । नारवागमनं पर्यं ततः परमिष्ठोध्यते ॥ =० ॥ मीसलं पर्व चोहिएं ततो घोरं स्दारुणम् । मदाप्रस्थानिकं पर्व स्व-र्गारोहिणिकं नतः ॥ =१॥ हरियंशस्ततः पर्व पराणं खिलसंकितम् विकापर्य शिरोध्यम्या विक्लोः कंसवधस्तधा ॥ =२ ॥ मविष्यंपर्यचा प्युक्तं जिले धैवाइतं महत् । भेन् पर्वशतं पूर्णे व्यासेनोक्तं महा-रजना ॥ =३ ॥ यथायत् स्तपुर्वश् लीमद्वर्षशिना ततः । उक्तानि मैंभि-पारग्वे पर्वाग्यष्टादरीय तु ॥ =४ ॥ समासो भारतस्यायमत्रोत्तः पर्व-संब्रहः। पीर्यं पीलोममास्तीकमादिवंशावतारणम् ॥ =५ ॥सम्भवो जतवेशमाल्यं दिजिम्बबकयोर्वधः । तथा धैनरथं देव्याःपाञ्चाल्याध रत्रयम्बरः ॥ =६ ॥ ज्ञात्रथमंग निर्कित्य ततो चैवाहिकं समतम् ।चिद्र-रागमन्त्रीय राज्यलम्भस्तथैष च ॥ ८० ॥ वनवासोऽर्जुनस्यापिसुभ-हाहरणं ततः। हरणाहरणञ्जैकेदहनं सागडवस्य च ॥ 🕮 ॥ मयस्य दर्शनक्षीय शादिपर्याण कथ्यते । पीत्ये पर्याण माहात्म्यसुतहास्योपध-र्शितम्॥ = १॥ पौलोमे भृगुवंशस्य विस्तारः परिकीर्तितः । आरतीके राद्विकप० भी स्राजाताहै ॥ ७= ॥ तदनन्तर सम्पर्ण पापाँका नाश-करनेवाला शाय्वमेधिकप० का शारम्भ होताहै, उसमें जात्मशान फरानेवाला श्रवुगीताप॰ श्राताहै ॥ ७६॥ उसके पीछे श्राधमवासी प॰ का धारम्भ किया जाताहै उसके मध्यमें पुत्रदर्शनप० है, तदनन्तर नारदागमनप० फद्दा है ॥=०॥ तदनन्तर जिसमें भयानक वर्णन है ऐसा मीसलप० फहाहै, तदनन्तर महाप्रस्थान श्रीरस्वर्गारोहणिकप० श्राता है ॥ = १ ॥ तवनन्तर हरिवंशप० है जो खिलपुराण कहाता है, इसमें विष्णुप० विष्णुको वाल्यकीष्ठाप०, श्रीर फंसवधप०का समावेश किया गया है॥।=२॥ उसके पीछे सर्वीमें श्रत्यन्त श्रदुसुत श्रीर वडा भविष्यप० भी थोड़े से भागमें कहा है, इसप्रकार महात्मा व्यासजी ने सी (१००) प० कहे हैं॥ =३॥ उनको सतके पुत्रने शठारह पर्वीमें वाँधकर नैमिपार्यमें सुनियोंके लामने यथावत सुनाया था ॥ =४॥ में श्चव तुमले महाभारतके पपाका संब्रह संदोपसे कहताहूँ उसको सुनो, पीष्य, पोलीम, शास्तीक, श्रादिवंशायतारणप०, संभव,लाद्मागृ-हदहन, हिडम्बवध, बकवध, चैवरथप०, द्वापदी स्वयम्यरप० जान-धर्मसे विजय करनेके पीछे वैवाहिकप० विदुरागमनप०, उनका ही राज्यलाभप०, श्रज् नवनवासप०, सुभद्राहरणप० हरणाहरणप० तथा खाएडववनदाहप०, श्रीर मयदानवदर्शनप०, इतने पर्व श्रादिपर्वमें

कहे हैं पौष्यप० में उत्तंकका माहात्स्य वर्णन किया है ॥ =५

सदिनारानां गरुइस्य च सम्मवः ॥ ६० ॥ त्रीरोदमथनञ्जे व जन्मोचोः ध्रवसन्त्रायः । यजतः सर्वस्त्रेष्ण राग्नः पारीत्नितस्य च ॥ ६१ ॥ क्रयेग्रम्मितिह् त्रा भरतानां महात्मनाम् । विविधाः सम्मवाः राग्नामुकाः
ग्रम्मितिह् त्रा भरतानां महात्मनाम् । विविधाः सम्मवाः राग्नामुकाः
ग्रम्मितिह् त्रा भरतानां महात्मनाम् । विविधाः सम्मवाः राग्नामुकाः
ग्रम्मित्राण् ॥ ६२ ॥ अत्येपाञ्चेव ग्र्राणामृवेद्वेपायनस्य च । अंग्राग्रम्मित्राण् महोजलाम् । नागानामथ सर्पाणां गन्धवाणां पतित्रिणाम्
॥ ६४ ॥ अन्येपाञ्चेव मृतानां विविधानां समुद्रवः । महर्पेराअमपदे
क्रयुक्तयः च तर्पालतः ॥ ६५ ॥ श्रञ्जनतायां दुन्यन्ताम् मरतस्थापि जप्रवारः । यस्य नातेष्ठे नान्नेदं प्रथितं भारतं कुत्वम् ॥ ६६ ॥ वस्तां
पुनवन्यिक्तभागिर्थ्यां महात्मनाम् । ग्रम्तनोवेद्यानि पुनस्तेपांचारोतृत्तं विवि ॥ ६० ॥ तेष्टांप्रधानाम् सम्मवातो भीध्यस्याप्यत्र सम्भवः ।
प्राप्तिक्तित्रकं तस्य प्रश्चर्यायते स्थितः ॥ ६॥ प्रतिवापालनञ्जेव
क्रान्वित्राराह्म्य च । हते चित्राह्रदे चेव रचा भ्रातुर्ण्यवीयसः ॥६६॥
हिक्षिण्याप्यत्रम्य च । हते चित्राह्रदे चेव रचा भ्रातुर्ण्यवीयसः ॥६६॥
हिक्षिण्याप्यत्रम्य च । हते चित्राह्रदे चेव रचा भ्रातुर्ण्यवीयसः ॥६६॥
हिक्षणायस्यापात्रम्य च । हते चित्राह्रदे चेव रचा भ्रातुर्ण्यवीयसः ॥६६॥

दीहोसर०में मुनुवंसका विस्तार कहा है,श्रास्तीकप**्में सव नागोंकी** क्षया तथा गर्वेटकी उत्पत्ति, समुद्रमधन, उद्येश्रवा नामक घोडेका इन्स, भीर सन्तमें जनमेजय राजाके लर्पयसमें कहेहूर महात्मा भर-तरंदी राजागींका चरिर और वृत्तान्त कहा है, संभवपव में बहुतसे हुएहिलीका प्रवेको चीतियोले जन्म यहा है ॥ ६०—६२ ॥उनही वर्ली हीर पराक्रमी तथा शरवीर राजवंशियोंका वंश और महामूनि कृष्ण-हैराजनकीका जन्म आदि कहा है, अंशावतारण नामके पर्व में देव. ्र महावतराही दैत्य, दानद, यत्त, नाग,सर्प, गंधर्य, पत्ती तथा बहुतसे द्रांशियोंकी उत्पति कही है । तपस्वी करवनामक महर्षिके आश्रममें हुन्यन्त तथा ग्रह्जन्तकासे भरत नामके एक कुमारका जन्म हुआथा, जिसके नामले उसका कुल भारतके नामले संसारमें प्रसिद्ध हुआ है जलका करिक भी इक्तमें वर्णन करा है, और इसपर्वमें शन्ततुके घर रंगाजीसे सहात्मा बहुश्रोंका फिर जन्म श्रीर उनकास्वर्ण जाना दर्गन किया है ॥ ६३--६७ ॥ वसुर्घोक्षे तेजके त्रंशमृत भीष्मितामह का जन्म, उनकी राज्यसे निवृत्ति, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन, प्रतिका-पालन, चित्रांगदकी रचा, चित्रांगदका मरण तदनन्तर उसके छोटे भाईनी रत्ता, विचित्रवीर्यको राज्य देकर राज्याभिषेक, श्रीर माएडव्यके शाएले महत्यजातिमें धर्मराज (यम) की उत्पत्ति, तथा श्रीकृष्ण् है पायतके बरदानसे भृतराष्ट्र पाएडु तथा पांची पाएडवीकी उत्पक्ति

(£3) ः भाषानुदाद सहित ः राष्ट्रस्य पाराडोश्च पाराडवानाञ्च सम्भवः ॥ १०१ ॥ वाराह्यावतयात्रायां मन्त्रो दर्ग्याधनस्य च । कटस्य धार्त्तराष्ट्रेण प्रेयणं पोगडवान प्रति ॥ १०२ ॥ हितोपटेशस्य पथि धर्मराजस्य धीमनः । विट्रेण छतो यत्र हितार्थं म्लेच्छभाषया ॥ १०३ ॥ विट्रस्य च दाक्येन सरक्षोपक्रम-क्रियाः। निपाद्याः पञ्चषुक्रायाः सुप्ताया जनुवेश्मनि ॥ १०४ ॥ पुरोचन-स्य चात्रैव वहनं संप्रकीर्त्तितम् । पाग्डवानां वने घोरे दिडिम्बायाख दर्शनम् ॥ १०५ ॥ तत्रैव च हिडिम्बस्य वधो भीमानगहायलात् । घटो-त्कचस्य चोत्पत्तिरप्रव परिकीर्त्तिता ॥ १०६ ॥ महर्पर्दर्शनश्रीव व्यास-स्यामिततेज्ञसः । तदाप्रयैकचकायां ब्राप्तग्रस्य निवेशनं ॥ १०७ ॥ ध्र-प्रातचर्य्या वासी यत्र तेषां प्रकीर्त्तितः । वकस्य निधने चेव नागरा-णाऽच विस्मयः ॥ १०= ॥ सम्भवश्चेव कृष्णाया भ्रष्ट्यम्नस्य चैव हि । ब्राह्मणात्सम्पथत्य व्यासचाप्यप्रचोदिताः ॥ १०६ ॥ द्रोपदी प्रार्थय-न्तस्ते स्वयम्बरिङ्क्या । पाञ्चालानभितो जग्मर्यत्र कीत्रुएलान्विताः ॥ ११० ॥ श्रष्टारपर्णं निर्कित्य गङ्गाकुलेऽर्जुनस्तदा । सण्यं छत्वा तत-कही है ॥६=-१०१॥ लाज्ञा-गृहदाहप०में दुर्योधनसे हुपे रहनेके विचार से पाएडवीका बारणावतको जाना, तहां दुर्योधनका पुरुषीको भेजना ।१०२। श्रीर बुद्धिमान् मुधिष्टिरको उनके हिनके लिए विदुरका करा हुआ म्लेच्छभाषामें उपदेश १०३ तथा विद्वरजीके कहनेसे सुरंग खुदवानेका आरम्भ,पांच पुत्रीके साथ सोती हुई एक भीलकी ख़ीका शौर पुरोचनका लाजागृहमें जल कर मरजाना इत्यादि विषय वर्णन करे हैं हिडम्ब षभप०मं घोरवनमं पाएडव और हिटम्याका दर्शन ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

व्यासजीके सिन्त्रानेसेही एकाचकानगरीमें ब्राह्म कर पागड़वों का ग्राह्म प्रस्त विश्व करा है। यहाँही वकासुरका वध और उससे होती से मनमें उत्पव्य हुआ चमस्कार वर्षित है। १००॥ १००॥ १००॥ होयदीका जन्म भ्रष्टयुम्नकी उत्पत्ति, ब्राह्मणांसे स्वयम्वरकी चार्ना सुनकर और व्यासकीके कहनेसे द्रोपदीको विवाहनेकी इच्छाकरनेवाले पागड़वोंका स्वयम्वरमें जानेके निमित्त, ब्राह्मण्येसे पांचालदेशमें जाना इत्यादि विपय वर्णन किमेडें॥१००॥१०॥चैत्रस्वच्यप्रवर्म आर्जन ने गंगातटपर ग्रंगाएण नामक गंयवको जीतकर उसके साथ मित्रता की और उससेही तापत्य, वासिष्ठ तथा और्वनामक उत्तम श्राल्यानेको सुनने श्रादिकी कथाएँ वर्णन करी है, तदसन्तर द्रोपदी स्वयम्वरूप

महाबलवान् भीमसेनलत हिडम्ब राज्ञसका वध श्रौर घटोत्कचका जनम वर्णन करा है॥१०६॥तथा महातेजस्वी महर्षि व्यासका पाएडवो को दर्शन होना भी वर्णन करा है। तदनन्तर बक्रवधप में (४४) * महाभारत त्रादिगर्य * [दूसरा स्तेत तस्मादेव च ग्रुश्वे ॥ १२१ ॥ तापत्यमय वाशिष्ठमीर्धं चावधाः नमुत्तमम् । स्नाद्विसः सर्विदः सर्वे । पाड्यालानिततो यथो ॥ ११२ ॥ पाड्यालानगरे चापि ताच्यं भित्ता धनड्यदः । द्रौपद्गं ताब्यवानय मध्ये सर्वमहौक्षिताम् ॥ ११३ ॥ भोमसेतार्जुनी यय सरस्थात् पृथि-वीपतीन् । ग्रह्यस्त्र्णीं च तरसा जितवन्ती महामुष्ठे ॥ ११४ ॥ स्त्रुप्त त्योश्च तह्येवर्यममयेष्टमम् । ग्रह्मानी पाएडवास्तान् रामस्र-च्यी महामती ॥ ११२ ॥ जमनुस्तैः स्नमागन्तुं शालाञ्मार्गवयेदमित ।

वापतान्। शहरकण्यां च तरसा जितवन्तां महाभूषा (१८४॥ देश)
तयोश्च तद्वीच्यां ममयममानुपम्। शहरकानी पापव्यविद्यान् पापष्ठः
च्यां महामती॥ ११९॥ जम्मतुस्तैः समागन्तुं ग्राताञ्माग्वयेषमि।
पञ्चानामेकपत्तिःवे विमर्गे मृप्यस्य च ॥ ११६॥ पञ्चेन्द्राणानुपाः
स्वानामेकपत्तिःवे विमर्गे मृप्यस्य नेविद्यति विवाद्याप्यमानुपः
॥ ११०॥ चनुश्च पार्चराष्ट्रेण प्रेपचं पापडवान् प्रति। विदुरस्य च
सम्प्रातिदर्शनं केणवस्य च॥ ११८॥ चापडवप्रस्थवास्थ्य तथा राचन्यार्वणात्नम्। नारदस्याञ्चया चैय द्वीपद्याः समयिक्तया॥ ११६॥
सन्वोपसुन्वयोस्तद्यसम्बयानं परिक्रीतितम् । श्चनन्वरच्च द्वीपद्या
सक्षाद्यां प्रिविद्या॥ १२०॥ अग्रविषय विमार्थं पाराग्यो। ग्रह्म

आता है उसमें सब भाहरों के साथ अर्जुन पांचाल देयमें गए हैं १११ ॥११२॥ श्रीर तहाँ वहुतले राजाओं के मध्यमें मत्स्यवेध फरके अर्जुन ने द्वीपदीको प्राप्त किया वह कथा तथा हन महाबलवान, श्रीमस न श्रीर अर्जुनने कोधमें भरेडुए राजाओं को तथा शत्म खोर कर्य को युद्ध में जीतिलया यह कथाएं हैं ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ तदनन्तर वैवाहिकप० श्राता है उसमें दोनों का अप्राप्तिक अनन्त राराक्रम देखकर यह पायदव वह वैद्यान श्रीकृष्ण तथा चलदेवजीका कुम्हार के घरमें ठहरेडुए पायडवीके साथ मिलनेको श्राता तथा पाँच कर्तो के साथ अपनी एक कन्त्याके विवाहकों सम्यंभमें द्रपदराजका विचार अति अर्जुन पांच इन्हों को कथा देवताओं का कराहु ब्राप्त द्वाराम मन्त्र विवाह हतनी कथाएँ आती है।११५-१९॥तदनन्तर विदुराममन्त्र पूर्व है उसुमें राजा धृतरापूर्क पुर्चोका विदुरजीको पाएडवेंकि पास

मेतना, विद्वुरजीका ज्ञाना श्रोर श्रीकृष्णजीका दर्शन करना विद्वीमें पाणडवीको उद्दराना दरवादि कथाएं हैं॥ ११ = ॥ तदनन्तर राज्यलाम पाणडवीको उद्दराना दरवादि कथाएं हैं॥ ११ = ॥ तदनन्तर राज्यलाम पर्व श्रात है उसमें श्राये राज्यका श्रीकार मिलना तथा भगवान नारत प्रति की श्रावाके होंपत्रीके पासजानेका निर्मात समय दरवादि विपय वर्षन करे हैं॥ ११ ६॥ तदनन्तर श्रर्जुनवनवासपर्वमें सुन्त श्रीर उपसुप्त हों तथा द्रीपदीके लाथ एकांतमें थेठे द्वुए राजा युविष्ठिरके पास श्राकर, एक श्राक्षणके लिए श्रपने श्रापुष के उसे छुड़ाना चाहिये ऐसा विसने निध्य किया है तिस ।

त्र आनमस्यान् नुभूष्या जनाः स्वास्तितः। ॥ १२६ ॥ प्राच्यास्याः प्रमानः सन्पदोऽनु प्रकीसितः। विद्वारार्थश्च गतयोः छप्णयोपीयीना-पत्र ॥ १२०॥ तन्मानिश्चक्रप्रमुखाः स्वात्ववस्य च द्वार्तमम्। मयस्य सोन्नोद्रयतनाङ्ग्रतस्य च गोन्नसम् । १२=॥ महर्षेमस्यातस्य ग्रा-मोज्ञो ज्यलनाल् जद्गस्य च मोज्ञणम् ॥ १२= ॥ महर्षेमेन्द्रपालस्य शा-क्षुचां तनयसम्भवः ॥ १२६ ॥ इत्येतदादिवयांकां प्रथमम्बगुविस्तरम् । श्राचायानां शते हे तु संख्याते परमर्पिणा । सप्तविशतिरध्याया व्या-से नोत्तमतेजसा ॥ १३० ॥ अप्री श्रोकसद्स्नाणि अप्री श्रोकशतानि च । रहोकाश्च चतुरशीतिम्निनोक्ता महात्मना ॥ १३१ ॥ हितीयन्त् पार्जनका नियम तोड़गेफे फारण धनको जाना और इस बनवासमें उल्वी नामकी एक नागकन्याके साथ मार्गमें समागम होना १२०-१२२ इसके उपरान्त पवित्रतीथींमें अर्जुनका जाना, फिर बसुबाइनका जन्म होना और एक ब्राह्मणके शापसे मच्छी होकर उत्पन्न हुई पांच श्रन्सराश्री का शर्जुनकृत मोच्, प्रभासनीर्थमें अर्जुनका श्रीकृष्णजी के साथ मिलना इत्योदि कथाएं वर्णित हैं ॥१२३ ॥ १२४॥ फिर सुभ-द्राहरणपर्य आता है। उसमें शीकृष्ण भगवान की संमतिसे सुसद्रा के ऊपर धासक हुए अर्जनका होरिकाले सुभद्राका इरण करना बर्णन किया है ॥ १२५ ॥ तदनन्तर एरणहारिकपर्व श्राता है, उसमें र्व श्रीकृष्णको श्रनुमतिसे श्रर्जुनने सुमद्रोके साथ विवाद किया श्रीर सुभद्रासे महापराक्रमी और तेजस्वी ग्रभियन्युकी उत्पत्ति तथा द्रीप-वीके पूर्वोका जन्म इत्यादि कथाये श्रांती हैं ॥ १२६ ॥ तदनन्तर छा-एडवयनदाहपर्व आता है-उसमें श्रीकृष्णजी और अर्जुन विहार करने को यमुनाके किनारेके प्रदेशों में गए, चक्र श्रीर धनुपँकी प्राप्ति खाएडवबनका दाह, जलती हुई दावाग्निमेंसे मयदानव और एक नागकी रज्ञा करना, श्रीर महर्षि संद्रपालकी शार्कीनामक पत्तीसे उत्पत्ति कही है। इस प्रकार बहुत से विस्तार वाला खादिपर्व प्रथम कहा है १२= ॥१२६॥ इस शादिपर्वर्मे महातेजस्वी परमर्षि भगवान् व्यासजीने दोसौ सत्ताईस अध्याय रचे हैं ॥ १३० ॥ तथा इन महात्मा भुनिने ही इस-में प्राठहजार प्राठसी चौरासी ऋोकोंकी रचना की है ॥ १३१ ॥

पराजय फरके वनमें रहनेको मेजा इत्यादि सब बूसान्त महात्मा रे वेदन्याफडोने सभापर्वमें वर्णन करा है॥१४०॥हे द्विजोत्तमों।इस सभा---पर्दर्से अस्सी अध्याय हैं तथा दो हजार पांच सौ ग्यारह स्होक हैं १४१ व

* भाषानुवाद सहित * (80) श्रभ्याय] रठोकाश्चैकादश शेयाः पर्वेण्यस्मिन् द्विजोत्तमाः । श्रतः परं तृतीयन्तु हेयमारत्यकं महत् ॥ १४२ ॥ वनवासं प्रयातेषु पार्डवेषु महात्मसु । पौरानगमनर्ञीय धर्मपुषस्य धीमतः ॥ २४३॥ श्रशीपधीनाञ्च रुते पार्डवेन महात्मना । हिजानां भरगार्थञ्च कृतमाराधनं रघेः ॥१४४॥ धौम्योपदेशात्तिग्मांश्रवसादादन्नसम्भयः । दितञ्च ब्र्वतः सत्तः परि त्यागोऽस्विकासुनान् ॥ १४५ ॥ त्यक्तस्य पागडपुत्राणां समीपगमनं तथा । पुनरागमनञ्जीव भूतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ १४६ ॥ कर्णशेत्साह-नाचैव धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः । चनस्थान् पाण्डवान् हन्तुं मन्त्रो दुर्ग्या-धनस्य च ॥ १४७ ॥ तं दुष्टभावं विषाय व्यासस्यागमनं इतम् । नि-र्व्याणुप्रतिपेषध्य सुरभ्याख्यानमेव च ॥ १४८ ॥ मैत्रेयागमनं चात्र राज्ञक्षीवानुद्यासनम् । शापोत्सर्गक्ष तेनीव राज्ञो दुर्व्योधनस्य च १८६ किर्मारस्य वधश्रात्र भीमसेनेन संयुगे । तृष्णीनामागमश्रात्र पाञ्चा-लानाञ्च सर्वशः ॥ १५० ॥ श्रुत्वा शकुनिना धते निकृत्या निर्जितांश्च तान्। कुद्धस्यानुप्रशमनं हरेश्चेय फिरीटिना ॥ १५१ ॥ परिदेवनञ्च पाञ्चाल्या वासुदेवस्य सन्निधौ । ग्राश्वासनञ्च कृष्णेन द्वःखार्त्तायाः ्र) तदनन्तर श्रारएयक नामक बड़े पर्यका प्रारम्भ होता है ॥ १४२ ॥ महातमा पाग्डव जब बनवासको गए तब धर्मके पुत्र विद्वान् धर्मराज के पीछे नगरवासी गए, ब्राह्मणींके भरण पोपल्के लिए शह तथा श्रीपधीके निमित्त महात्मा पाएडवींका सूर्याराधन,करना॥१४३॥१४४॥ धीम्बद्धविके कहनेके अनुसार सूर्यकी आराधना करने पर सर्वके प्रसादसे श्रन्नके श्रव्य पात्रकी प्राप्ति होना, सर्वदा स्वाभीके हितके लिए बोलनेवाले विदुरजीको धृतराष्ट्रका त्यागना, तद्गन्तर विदुरका पा-गृहपुत्रीके पास जाना फिर ।धृतराष्ट्रकी श्राधासे विद्रर का हस्तिना-प्रमें श्राना ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ कर्णकी उत्तेजनासे दुर्मति धृतराष्टके पुत्र दुर्योधनका बनमें रहते हुए पाएडवाँके मारडालनेका विचार करना॥१४७॥उसके द्रष्ट श्रमिश्रायको जानकर व्यासजीका तत्काल तहां ब्रानाबीरपेसा करनेसे दुर्योधनको रोकना, सुरभिकी कथा॥ १४**८**॥ मैंत्रेयका श्रावगमन, उनका धृतराष्ट्रको उपदेश देना, राजा दुर्योधनको उनकाही शाप देना, युद्धमें भीमसनका किमीरको मारना यादवी छोर पाञ्चालीका पागडवीके पास श्राना ॥ १४६ ॥ १५० ॥ शकुनिने जुएसे कपटके जुपसे पाएडवीका पराजय करा ऐसा सुनकर श्रीकृष्णका को ध करना और अर्जुनके द्वाराही उनके कोधका शान्त होना ॥ १५१॥ श्रीकृष्णजीके सामने द्रौपदीका रोना, श्रीकृष्णजीका उस दुःखित श्रव-लाको श्रार्वासनदेना तथा महर्पिका कहा हुआ सौभवधका श्राख्यान.

महाभारत श्रादिपर्व # (૪=) प्रकीत्तितम् ॥ १५२ ॥ तथा सौभवधाल्यानमञ्जैदोक्तं महर्षिणा । स्रभ-द्रायाः सपुत्रायाः क्रप्णेन द्वारकां पुरीम् ॥ १५३ ॥ नयनं द्रौपदेयानां भूएसुम्नेन चव हि । प्रवेशः पार्डवेयानां रम्ये द्वैतवने ततः ॥ १५४॥ धर्मराजस्य चानैय संवादः कृष्ण्या सह । संवादश्च तथा राज्ञा भी-मर्यापि प्रकीर्त्तितः ॥ १५५ ॥ समीपं पार्ड्पुत्राणां व्यासस्यागमनं तथा। प्रतिस्मत्याथ विद्याया दानं राज्ञो महर्षिणा ॥ १५६॥ गमनं काम्यके चापि व्यासे प्रतिगते ततः । श्रस्त्रहेतोर्विवासश्च पार्थस्यामि-ततेजसः ॥ १५७ ॥ महादेवेन युद्धश्च किरातवपुषा सह । दर्शनं लोक-पालानामस्त्रप्राप्तिस्तथैव च ॥ १५= ॥ महेन्द्रलोकगमनमस्त्रार्ध च किरीटिन: । यत्र चिन्ता ससुत्पन्ना धृतराष्ट्रस्य भूयसी ॥ १५६॥ दर्शनं वृहदश्वस्य महर्पेर्भावितात्मनः। युधिष्ठिरस्य चार्सस्य व्यसनं परिदेवनम् ॥ १६० ॥ नलोपाख्यानमञ्जेव धर्मिष्ठं करुणोदयम् । इमयन्त्याः स्थितिर्यञ्च नलस्य चरितं तथा॥१६१॥तथाच्वहृद्यप्राप्तिस्त-स्मादेवमहर्षितः। लोमशस्यागमस्तत्र स्वर्गात् पारवुस्तान् प्रति।१६२। वनवासगतानाञ्च पार्डवानां महात्मनाम् । स्वर्गे प्रवृत्तिराख्याता सुभद्राका पुत्रीसहित श्रीकृष्णके साथ हारिकाकोजाना तथा घृष्ट्युम्न के साथ द्रौपदाके पुत्रोंका पांचालको जाना तदनन्तर पाएँडवीका रम्य द्वेतवनमें प्रवेश, तहांही द्रौपदीके साथ युधिष्टिरका सम्बाद और भीमसेनका युधिष्टिरके साथ सम्वाद वर्णन करा है १५२-१५५ महर्षिव्यासजीका पाएडवोंके पांस श्राना तहां व्यासजीका राजा युधिष्ठिरको प्रतिरमृति नामकी मंत्रविद्या सिखाना ॥ १५६॥ व्यास-जीके चले जानेपर पाएडवोंका काम्यकवनमें जाना तहांसे परस तेज-स्वी अर्जुनका खल प्राप्त करनेफे लिये जाना, वहां किरातकेरूपमें आए हए महादेवजीके साथ अर्जुनका युद्ध और दिव्य अखकी प्राप्ति होना तदनन्तर अर्जनको लोकपालोका दर्शन और अखोकी प्राप्ति होना (वर्णन किया है) ॥ १५७ ॥ १५= ॥ और ऋलों को प्राप्त करनेके लिए अर्जुन का इंद्रलोकमें जाना, उससे धृतराष्ट्रको बड़ी चिता होना ॥ १५६ ॥ तदनन्तर शुद्धात्मा महर्षि बृहपुरवका पांडवी को दर्शन होना, उदास हुए युधिष्ठिर का दःख तथा विलाप, उनको शोक तथा दुःखसे छुडाने के लिए ऋषिका करुणा रसपूर्ण धर्मवोधक नलाख्यान कहना, जिसमें दमयन्तीका धैर्य तथा मलको यरित्र श्राताहै ॥ १६० ॥ १६१ ॥ और पांडवोंको उनहीं महर्षि से युत्रविद्याके रहस्यका लाभ होना, खर्गसे लोमश ऋषिका पांडवोंके समीप पंचारना ॥ १६२ ॥ वनवासमें फिरते हुए पांडवींसे लोमश

अध्याय] # भाषानुवाद सहित । (38) लोमशेनार्ज्ननस्य चै॥ १६३॥ सन्देशादर्ज्नस्यात्र तीर्घाभिगमनिकया तीर्थानाञ्च फलप्राप्तिः प्रयत्वञ्चापि कीर्त्तितम् ॥ १६४ ॥ पुलस्त्यती-र्धयात्रा च नारदेन मिंगणा। नीर्थयात्रा च तत्रेव पांडवानां महात्म-नाम् ॥ १६५ ॥ कर्णस्य परिमोक्तोऽत्र कुंडलाभ्यां पुरन्दरात् । तथा यहाविभतिश्च गयस्यात्र प्रकीर्तिता ॥ १६६ ॥ श्चागस्त्यमपि चाण्यानं यत्र चातापिभन्नणम् । लोपामहाभिगमनमपत्यार्थमपेस्तथा ॥ १६०॥ भ्राप्यग्रहस्य चरितं कीमारब्रहाचारिणः । जामव्यन्यस्य रामस्य चरितं भरिनेजसः॥ १६=॥ कार्त्तवीर्य्यवधो यत्र हैहयानाञ्च वर्ण्यते। प्रभा-सतीर्थे पांडवानां बुध्यिभिक्ष समागमः ॥ १६८ ॥ सीकन्यमपि चा-स्यातं चयवतो यत्र भागवः । शर्यातियहो नासत्यो जनवान स्रोम्पी-तिनी ॥ १७० ॥ ताभ्याञ्च यत्र स मुनिर्योधनं प्रतिपादितः । मान्धा-तुःआप्यपाख्यानं राक्षोऽत्रेव प्रकोक्तितम् ॥ १७१ ॥ जन्तृपाय्यानम-त्रैय यम पुत्रेण सोमकः । पुत्रार्थमयजद्वाजा लेभे पुत्रशतञ्च सः १७२ ततः श्येनकंपोतीयमपाण्यानमञ्ज्ञमम् । इन्द्राञ्ची यत्र धर्मश्चाप्यज्ञि-म्रिपिका खर्गमें श्रखविया सीयने के लिए थर्ज न के रहनेका सब समा चार फहना ॥१६३ ॥ श्रीर श्रर्जुनका संदेशा पानके श्रनन्तर पाँडवीका तीयों में फिरना, तीथों में यात्रा फरनेसे पुण्यफलकी प्राप्ति तथातीथों के पुरुवका माहातम्य कहा है ॥ १६४॥ तदनन्तर नारदजीने पुलस्त्य तीर्थकी यात्रा फरनेको कहा तब महात्मा पांडवाने उधर ही तीर्थयात्रा करी ॥१६५॥ तहाँ इन्द्रने राजाकर्णके कुंडल लिये यह, तथा गयराजाके यग्नकी बड़ीभारी विभृति वर्णन करी है ॥ १६६ ॥ तदनन्तर श्रगस्त्य की कथा है जिसमें वातापि नामवाले राजसको भज्जण करनेकी कथा है, तथा पुत्रवाप्तिके लिए ऋषिके लोपामुद्राके पास गमनकी कथाहै, तदनन्तर पालकपने से ही ब्रह्मचर्य्य ब्रतवाले ऋण्यशङ्का चरित्र है फिर जमदन्तिके पराक्रमी पुत्र परग्ररामजीका चरित्र है, जिलमें कार्त वीर्यका श्रीर हैहय राजाश्रोंका वध भी वर्णन कराहै।तदनन्तर प्रभास च्रेत्रमें यादवीके साथ पांडराजके पत्रों का मिलाप वर्णन कराहें १६७-१६८ तद्नन्तर सुकन्याकी कथा है, जिसमें भगके पत्र च्यवन, जिन्होंने शर्या तिराजाके यशमें श्रश्विनीकुमारोंको सोम पिलाया था श्रीर उससे प्रसन्त ोकर अधिवनीकमारीने ऋषिको यौवन दिया था उसकी कथा है। इसमें ही राजा मांधाता की कथा कही है॥ १७०॥ १७१ ॥ श्रीर इसमें ही सोमकराजाने पुत्रीके लिए एक पुत्रका वलिदान देकर एकके वदले सी पुत्र प्राप्तकिये थे ऐसी कथा कही है। १७२॥ तदन-

महाभारत आदिपर्व # [दूसरा (uo) हाल्डिकृति सृदः॥ १७३॥ घटावकीयमत्रैव विवादो यत्र वन्दिना प्रदावतास्य विवर्षेजनकस्याध्वरेऽभवत् ॥ १७४॥ नैयायिकानां सु-ख्येन वृद्युन्यात्मज्ञेन च । पराजितो यत्र घन्दी विवादेन महात्मना ॥ १९६ ॥ विजित्य सागरं प्राप्तं पितरं सच्धवानुपिः । यवश्रीतस्य मारुवातं रीध्यत्य स्व महातमनः । गन्धमादनयात्रा स्व वास्ती नाराय-गाजसे ॥ १७६ ॥ नियुक्तो भीमसेनश्च द्वीपद्या गन्धमादने । वजन पधि महादाहुई प्रवार पवनात्मजम् ॥ १०७ ॥ कव्लीपण्डमध्यस्थं हुनुमन्तं महावलम् । यह सौगन्धिकार्थेऽसौनितनी तामधर्पयत् १७६ यहार्य युद्धमञ्चत् नुमहद्राचलैः सह । यत्तेश्चेव महावीय्यैर्मणिमत प्रदुर्खस्तरा ॥ १७६ ॥ जटासुरस्य च वधो राक्तसस्य बुकोदरात्। व्यव्यंको राजर्वस्ततोऽभिनमनं समृतम् ॥ १=० ॥ श्रार्षिपेणाश्रमे चैपां गमनं दान एइ ए। प्रोत्साहनश्च पाञ्चाल्या भीमस्यात्र महात्मनः ॥ १=१॥ केतालारोहणं प्रोक्तं यत्र यक्तैर्वलोत्कटैः । युद्धमासीन्महा-योगं निकत्त्रमुक्तैः सह ॥ १=२ ॥ श्रवाप्य विक्यान्यस्त्रांशि गुर्वेधै जिलमें राजा दिविको इन्द्र, ब्रिह्म और धर्मने परीका कीथी वह कथा है ॥ १७३ ।। तदनन्तर छष्टादककी कथा स्नाती है जिसमें न्यांयशास्त्रि-यों में प्रधान दक्कृके पुत्र वंदीके साथ जनकराजाके यहमें विप्रिप घाटायकका कन्दाद तथा महात्मा छष्टावकका वंदीको जीतना तथा सन्दर्भे डातेतुर विवादी साथ प्रप्रावकका पुनः मिलाप इत्यादि कथाएं हैं, तदनन्तर पदर्कात और महात्मा रैभ्यको कथा कही है तदनन्तर पोराडवीका संधनावनकी यात्राको जाना और तदनन्तर नारायख नामके साध्यममें उनका रहना वर्णन करा है॥१७४-१७६॥तदनन्तर ही रही के कहने से अनल लेनेके लिए गंधमादन पर भीमसेनका जाना. मार्गमें जातेहर जहलीवनमें महावलवान पवनपत्र हनुमान्जीका महा भूज भीनसेन के लोध समागम होनेकी कथा है, फिर सुगंधयुक्त कमली के लिए भीमलेनका कमलों से भरेहुए सरीवरमें नहानेकी उतरना. जिससे उसमें इड्डन कमलौके नष्ट होनेके कारण जिनमें मणि-मान् खुदर पा ऐते यज्ञ और राज्ञसोंके साथ भीमसेनका महायद होनेकी कथा है॥१०७-१७६॥ तदनन्तर भीमसेनके हाथसे जटासुर नाम-हाले बड़ेमारी राजसका वध. और तदनन्तर राजर्षि वृषपर्वाका शानमन फहा है तदनन्तर श्रार्धिबेश नामक श्राश्रममें पार्डवोंका गमन तथा तहां रहना और द्रौपदीके महात्मा भीमसेनको उत्साहित करने को कथा है॥१८०॥१८१॥ तदनन्तर भीमसेनका कैलासपर्वतपर चढ़ना श्रीर तहां रलले उन्मल हुए मिलमान आदि यन्तोंके साथ भीमसेनको राख्या युद्ध करना पडा ॥१=२॥वडे माईके लिये दिव्य श्रस्त्रमिलनेके श्रन-

श्रध्याय] # भाषानुवाद सिहत # (५१)
सन्यसाचिता। निवातकवर्चेर्यु इं हिरण्यपुरवासिमिः ॥ १=३॥ निवातकवर्चेर्युर्देत्तनयेः सुरश्चुमिः । पौलामैः कालकेयेश्च यत्र गुद्धं
किरीटितः॥ १=४॥ वधश्चेर्यं समाख्यतो राग्नमेतेव श्रीमता। श्रकः
सन्यर्शेतारभ्भो धर्मराजस्य सिक्ष्ये॥ १=४॥ पार्थस्य प्रतिपेश्च ।
तास्त्रेत सर्परिवा । पत्रश्चेतावरोक्ष्यं पांडवां गन्यमादवात ॥ १=६॥

नारदेन सुरर्षिणा । पुनर्क्षेवावरोहणं पांडुनां गन्यमादनान् ॥ १=६ ॥ भीमस्य ग्रहणं चात्र पर्वताभोगवर्ष्मण । भुजनेन्द्रेण विक्रिता तस्मन् सुनाहते वने ॥ १=० ॥ श्रमोज्ञयण्य चेतं प्रश्तानुक्त्या युविहिरः । स्मान्यकाममाञ्जेष पुनर्द्रेष्टं । स्मान्यकाममाञ्जेष पुनर्द्रेष्टं । स्मान्यकाममाञ्जेष पुनर्द्रेष्टं । पांडवान् पुरुपर्दमान् । वासुदेवस्यागमनाष्ट्रेष परिकासितितम् ॥१=६॥ मार्कण्डेससमास्यायामुपाल्यानानि सर्वशः । पृथोवेन्यस्य यत्रोक्तमान् एयानं परमर्पिणा ॥ १६० ॥ स्वाद्यक्ष सरस्वत्यास्ताव्ययं स्वाद्यक्ष सरस्वत्यास्ताव्ययं स्वाद्यक्ष सरस्वत्यास्ताव्ययं । स्वाद्यक्ष सरस्वत्यास्ताव्ययं स्वाद्यक्ष स्वाद्यक्ष सरस्वत्यास्ताव्ययं प्रशिव्यास्त्रित । स्वाद्यक्ष सरस्वत्यास्त्राव्यानं योन्युमारन्त्रवीच च ॥ १९२ ॥ पतिप्रतायाधाल्यानं सर्वविद्यक्ष स्मृतम् ।

नतर श्रं जुनका हिरएयपुर्धी रहनेवाले निवानकव चोके साथ युद्धहोंने कि क्षा क्या है, महाघोर भिवातकव नामक दानवों तथा देवांक शहु पे लोकोम श्रीर कालिक में कि साथ श्रज्जंनका युद्ध करना नथा उसमें उनका मारा जाना, छुद्धिशाली श्रज्जंन राजा युधिष्ठिरसे निवेदन करा वह कथा श्रीर तदननर युधिष्ठिरको श्रपने दिव्य श्रखोंके दि- काने के श्रारंभकी कथा श्राती है ॥ १००० - २००० । ऐसा करते हुए व्यक्ति स्वारंजने श्रुपंभकी स्था श्राती है ॥ १००० - २००० । एवं को मंधमादन पर्वते सीटना॥ १००० । १०० । १०० । १००० । १०० । १००० । १००० । १००० । १००० । १००० । १००० । १००० । १००० । १०

श्वार यह भी उसमें ही विश्वित है॥१=१॥तदनन्तर मार्करेडेय मुनिक साथ समागमकी कथा श्वाती है, उसमें उन महर्षिकी कही हुई सम्पूर्ण कथा है हिंदि जिनमें चेन राजके पुक्रती कथा है ॥ १६० ॥ श्वीर महात्मा ताएं ये प्रिक्त सरस्वतीके साथ सम्बाद है, तदनन्तर मत्स्यका खुत्तान्त भी उसमें ही विश्वित है श्वीर भी बहुतसी मार्करडेयके साथ बेठतेमें हुई पुराणोंकी कथाश्वोंका वर्णन है, जिनमें इन्द्रयुम्ककी कथा भुंधुमारका हुतान्त ॥ १६१॥ १६२॥ पतिव्रताका हुत्तान्त तथा श्वांपरसका उपा-

(५२) * महाभारत ग्रादिपर्व * [दूसरा द्रीपद्याः क्रीक्तित्रबात्र संवादः सत्यभामया ॥ १६३ ॥ पुनर्हेतवनश्चे व

हापधाः कार्यातव्यात्र स्वयाः स्वत्यास्य ॥ १८६ ॥ पुनद्वतवनञ्च व
प्रायद्भाः समुपानताः । बोप्यात्रां च गन्धवैर्यत्र वद्धः सुयोधनः
॥ १८४ ॥ द्वियमाणस्य मन्दास्म मोक्तितोऽसौ क्षिरीटिना । धर्मराजस्य चार्त्रेय मृगस्यमित्वर्यनम् ॥ १८५ ॥ काम्यके कानवश्चेष्ठे पुनर्गमकमुच्यते । होहिद्दोषिकमास्यानमधेव वहुविस्तरम् ॥ १८६॥ दुर्वास्रक्षोऽप्युषाख्यानमदेव परिकीक्तिम् । जयद्वयेनापहारौ द्वीरप्रशास्य ।
अतान्तरात् ॥ १८७ ॥ यजैतमन्वयाद्गीमो वायुवेगसमो जवे । चक्रे
सौतं पद्धिण्यं यच भीमो महावतः ॥ १८६ ॥ रामायणस्रपाव्यानमकैद दह्विस्तरम् । एव रामेण् विकस्य निहतो रावणो युधि ॥ १८६ ॥

लाणिज्याखारखुपान्द्रयानमन्नैद परिकीर्त्तितम् । कर्णस्य परिमोद्योऽन कुंडलान्यां पुरन्दरात् ॥ २०० ॥ यनास्य सिकं तुष्टोऽसोवदादेकव-धाय च । क्षारण्यसुपालयानं यत्र धर्मोऽन्यसात् सुतम् ॥ २०१ ॥ कारत्त्रेव्यरा यत्र पायड्दाः पश्चिमां दिसम् । एतदारप्यकं पर्य तृतीयं परिकीर्त्तितम् ॥ २०२ ॥ अद्याध्यायसते हे तु संख्यया परिकी सिते ॥ २०२ ॥ एकादश सहकाणि स्होकानां पद्सतानि च । चतुः ख्यान है । तदनन्तर द्रीपदी और सत्यभामाका मिलाप तथा उनका सम्बद्धाद धारा है ॥ १६३ ॥ तदनन्तर पाएडवीके क्रीटकर हैतवनमें

प्रानेकी कथा, घोरपावा करते हुए दुर्थोधनको गंधवाँने एकड़कर बांध किया था उससे तका एाए उस मंद्रुद्धिको प्रजू नसे, छुड़ाया तथा तहां धर्मराकके नृगका क्वप्र दीखा, तहांसे चली सौर श्रेष्ट पायडवाँका प्राह्मधर्मराकके नृगका क्वप्र दीखा, तहांसे चली सौर श्रेष्ट पायडवाँका प्राप्त कर्मक कहा है तथा प्राह्मित क्या दुर्वा स्वाप्त पुर्वाका श्रीति क्या भी इसमें ही विश्व है। १६४—१६६ ॥ तथा पुर्वाकाकी कथा भी इसमें ही दार्थित है प्राथममें करदा है। दिश्व में प्राप्त करा वायु देशको भीमसेनने उसको प्राप्त कर्मको भीमसेनने उसको पांच सोट होरा करा (पांच स्थानोंसे वाल छोड़कर घोर सव श्रिर

पांच कोडीवाला करा (पांच स्थानीं से वाल छोड़ कर और सब शिर को खुड़ लिया) वह कथा भी इसमें ही है, तदनन्तर विस्तारसे रामचंद्र जीका इतिहास भी इसमें ही कहा है जिसमें रामचन्द्र ने पराक्षम करके रावणको माराधा वह कथा है ॥१६०-१६६॥तदनन्तर साविद्यीका उपा-दशनभी इसमें ही जहा है. किर इन्द्रने कर्णके कुएडलोंको ले! प्रसम्न होकर सेवल एककोएही मारे पेसी शक्ति उसको देकर छोड़नेकी रीति वताई तिसकी कथा जाती है ॥ तदनन्तर श्रार्णेय नामका उपाख्यान है जिसमें धर्मराजने अपने पुत्र सुधिष्ठिरको उपदेश दिया है २००-२०१

वितार स्वित्त अर्थात है। स्वत्यात अरिष्य नामकी उपार्थ्यान है है जिस्से धर्मराजने अपने पुत्र चुधिष्ठिरको उपदेश दिया है २००-२०१ सहनतर बरदान पाकर पारडवाँके पश्चिम दिशाको जानेकी कथा है इस प्रकार कथाओं परिपूर्ण तीसरा आरर्थकपर्व वेदव्यासजी के जहां है ॥ २०२ ॥ इस पर्वमें दौसो उनहत्तर अध्याय कहे हैं ॥ २०२ ॥

॥ २०५ ॥ दृष्टा सन्निद्धुस्तत्र पापडचा चायुधान्युत । यत्र प्रविश्य नगरं छक्षना न्यवसंस्त् ते ॥ २०६ ॥ पाञ्चाली प्रार्थयानस्य कामीपए-तचेतसः । द्रष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात्॥ २०७॥ पांड-वान्वेपणार्थञ्च राहो दुर्व्योधनस्य च । चराः प्रस्थापिताश्चात्र निपुणाः सर्वतोविशम् ॥ २०= ॥ न च प्रवृत्तिस्तैर्लब्धा पांडवानां महातमनाम् गोत्रहस्र विराटस्य त्रिगर्त्तः प्रथमं कृतः ॥ २०६ ॥ यत्रास्य युद्धं सुम-इत्तराखील्लोमहर्पणम् । हियमाण्धः यत्रासी भीमसेनैन मोन्तितः २१० गोधनञ्च विरादस्य मोद्धितं यत्र पांडयैः । श्रनन्तरञ्च कुरुभिस्तस्य गोन्नएण कृतम् ॥ २११ ॥ समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिताः कुरघो युधि। प्रत्याष्ट्रतं गोधनञ्च विक्रमेण किरीटिना ॥ २१२ ॥ विराटेनोत्तरा दत्ता स्तुषा यत्र फिरोटिनः। श्रभिमन्यं समहित्य सीभद्रमरिघातिनम् २१३ चतुर्थमेति द्विपुलं वैराटं पर्व वर्णितम् । अत्रापि परिस रायाता अध्या-श्रीर ग्यारत सहस्र छः सी चौंसठ रहोक इस पर्वमें कहे हैं। र्र०४॥ तदनन्तर विस्तारयुक्त वैराद् पर्व श्राता है उसको श्रवण करी पाएड-वोंने विराद् नगरको जाते संमय समशानमें एक बड़े शमीके मृत्तको देखकर उसके ऊपर अपने आयुध रखदिये तदनन्तर विराद् नगरमें पहुँचे श्रीर तहां कपट वेपसे छुपकर रहे । तहां दृष्टभायसे:पांचाली की प्रार्थना करनेवाले श्रीर कामवासनासे बुद्धिहीन हुए दुरात्मा फीचकको भीमसेनने मारडाला ॥ २०५--२०७ ॥ तदनन्तर दुर्योधनने परम चतुर गुतवर (जासूस) पाण्डवींको ढढनेके लिए सम्पूर्ण दिशाश्रीमं भेजे ॥ २०= ॥ परन्त उनको महात्मा पाएडवाँका फोई समाचार नहीं मिला, पहिले त्रिगतें।ने राजा विराटकी गीर्श्वोका हरण करा ॥ २०६ ॥ इसकारण उनके साथ रोमाञ्च खडे करनेवाला युद्ध हुआ जिलमें शत्रुओंने राजा विराद्को पकड़ लिया और षंदी करके लेजानेलगे तब उसको भीमसेनने छुडाया ॥ २१० ॥ इतना ही नहीं किंतु राजा विराट्का वह गोधनभी पांडवोंने छुडाया तदनन्तर किर कुरुओंने राजा विराद्की गौश्रोंका हरण किया २११ जिस युद्ध

मं बहुतसे कुरुश्चोंको श्राफेले श्राजुँनने हराया श्रीर श्राजुँन पराक्रम करके गौश्चोंको लेशाया॥ २१२ ॥ राजा विरादने उस कारेले प्रसन्न होकर श्रापनी पुत्री उत्तरा सुभद्राके पुत्र श्रामीनयुके निमित्त श्राजुँन को श्राप्य करदी॥ २१३॥ यह सब कथाएं विस्तारावाले इस चीथे पर्वमें वर्षान करी हैं, परम श्रुपि वेद्वेटर व्यासजीने इस विराद्यार्चमं याः परमर्पिणा ॥ २१४ ॥ सप्तपष्टिरथो पूर्णा स्त्रोकानामपि मे ग्रस्तु । रक्षेकानां हे सहस्रो तु स्त्रोकाः पश्चाग्रदेष तु ॥ २१५ ॥ टक्कानि वेद-

विद्वता पर्वाप्यस्मिनसहर्षिणा । उद्योगपर्व विद्वेय पश्चमं ग्रुग्वतः परस् ॥ २१६ ॥ उपन्तःये निविष्टेषु पापडवेषु जिन्नोपया । दुर्घ्योधनोऽर्जुः नाज्ञेय वास्तु देवसुपारिधनो ॥ २१७ ॥ साहाध्यमस्मिन् समरे अवाकी सर्तुं महीति । इस्युक्ते वचने कृष्णो यद्योषाच महामितः ॥ २१८ ॥ अयुष्यमानमातः ॥ २१८ ॥ उपन्ते प्रक्षोषिणी वा सैन्यस्य कस्य विद्या इपास्यहम् ॥ २१८ ॥ वम् वुर्घ्योधनः सैन्यं मन्दारमा यत्र दुर्मितः । इपुष्यमानं सचितं वम् च्या प्रकाषमातः ॥ २२० ॥ महराजञ्च सक्तानमात्रान्तं पाष्टवात् मात्रा । उपन्ते । उपन्ते । उपनिवास्त्र स्वाप्यम्तं स्वाप्यम्तं मात्रवात् । प्रकाष्यम् स्वाप्यमानं पाष्टवात् मात्रवात् । स्वाप्यमानं प्रकाष्ट्रवात् मात्रवात् । स्वाप्यमानं प्रकाष्ट्रवात् मात्रवात् । स्वाप्यमानं प्रवाप्यमानं प्रवाप्यम्यस्य प्रवाप्यमानं प्रवाप्यमानं प्रवाप्यमानं प्रवाप्यम् ।

॥ २२१ ॥ दण्हं तं वरं दझे लाहाय्यं कियतां सम। शत्यस्तरमें प्रतिशुख लगानोहित्य पांडपाट्॥ २२२ ॥ शानितपृषं चाकथयध्येनद्रविजयं तृद्धः । पुरोहितप्रेपण्य्य पांडचेः कौरवान् प्रति ॥ २२३ ॥ हैलिप्रकीर्यान्य दचः समाहायपुरोधसः । तथेन्द्रविजयञ्चापि दाहक्टेंच प्रोधसः ॥ २२४ ॥ सक्तयं प्रेपयामास शमाधी

लडक्ट प्रधाय रहे हैं और २०५० रहोक हैं ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ इसके प्रमुक्तर पोक्षक उद्योजपर्यका प्रारम्भ होताहै उसकी वधा सुनो,विजय चाहनेबोले पाँडद उप उपस्तव नामक स्थानमें जाकर रहे तब हुयों-धन और प्रजुन दोनों श्रीक्षस्प्रजीकं यहाँ नय ॥ २१६ ॥ २१० ॥ और उनसे नहा कि प्रारको इस सुक्षमें ह्यारी सहायता करनी चाहिये, उन

उनसे के व्यक्त सुनकर गहाडुदि श्रीकृष्णजीने उत्तर दियाकि है महा-दोनों है व्यक्त सुनकर गहाडुदि श्रीकृष्णजीने उत्तर दियाकि है महा-पुष्टे! है युद्ध तो नहीं करता परन्तु रकका मंत्री माग्र वनलाईंगा तथा दूकरेको एक शक्तीहिणी लेनाकी लहाप्ताईंगा। इन दोनों वातों है ले किलको दया हूं ? जो तुम्हारे ध्यानमें आहे उलको मौनलो २१ ह ॥ २१६॥ इक्पर संदान्ता सृद्दुद्धि दुर्योधनने एक अज्ञोहिणी लेना मांगी और अर्जुनने युद्ध न करनेवाले सगदास् श्रीकृष्णका मंत्रित्य

॥ २१६ ॥ रूपर संदात्मा सृब्दुखि दुर्योधनते एक अज्ञोहिणी खेला मांगी ग्रीर छातुँनते बुख न करनेवाले अगदान श्रीकृष्णका मंत्रित्य रहीकार करा ॥ २२० ॥ महदेशका राजा शहर पांडदोंके समीप श्राता धा उसको मांगरें मेंट देकर दुर्योधनने ठगिलया इससे उसने दुर्योधनसे दरदान मांगरेले कहा दुर्योधनने उससे सरदान मांगते हुए कहा कि तुन मेरी सहायता करो, राजा शहर उसमे कहायताके लिए रस्त देकर पांडवांके पास शाया ॥ २२१ ॥ २२२ ॥ उनको शानिको हस्तुकी हिजय कह सुनायी तदनन्तर पांजबांने श्रापने प्रोतिकारी

इन्द्रकी विजय कह छुनायी तदनन्तर पाएडवींने श्रापने पुरोहितको कीरवींके पास श्रेजा ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ मतापवान् राजाने पुरोहितको तुलक्षे इन्त्रविजयकी कथा सुनीश्रोर मेलकी इच्छा करनेवाले प्रतापी

क भाषानुबाद सहित । (44) ग्रध्याय] पारइवान् प्रति।यव दतं महाराजो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ॥ २२५ ॥ शुरवा च पाण्डवान्यव वास् देवपुरोगमान् । प्रजागरं संप्रजमे भृतराष्ट्र-स्य चिन्तया॥ २२६ ॥ विदुरी यत्र धापवानि विचित्राणि हितानि च। श्रावयामाल राजानं धृतराष्ट्रं मनीपिणम् ॥ २२० ॥ तथा सनत्स जा-तेन यत्राच्यात्ममनुत्तमम् । मनस्तापान्वितो राजा शावितः शोकला-लसः॥२२=॥प्रभाते राजसमिती सञ्जयो यत्र पा विभोः।पैकात्म्यं घा-सुदेवस्य प्रोक्तवानर्ज् नस्य च ॥२२६॥यत्र कृष्णोदयापन्नः सन्धिमिच्छ-न्महामतिः । स्वयमागाच्छमद्वर्त् प्रगरं नागसाह्यम् ॥ २३० ॥ प्रत्या-रुयानञ्च रूप्ण्ह्य राजा दुरुयोधर्नन वै।शमार्थे याचमानस्य पद्मयोग्भ-योर्हितम् ॥२३१॥ दस्मोद्भवस्य चाल्यानमत्रीव परिकीर्त्तितम् । वरान्वे-पणुमत्रीय मातलेश महात्मनः ॥ २३२ ॥ महर्पेश्वापि चरितं कथितं गोलवस्पवै । विद्वलायाथ्य प्रतस्य प्रोक्तं चाष्यत्रशासनम् ॥ २३३ ॥ कर्णं दुर्व्योधनादीनां दुष्टं विज्ञाय मन्त्रितम् । योगेश्वरत्वं रूप्णेन यत्र राजां प्रदर्शितम् ॥ २३४ ॥ रथमारोप्य कृप्णेन यत्र फर्णेऽन्तम-महाराज धृतराष्ट्रने धृतकी रीतिसे सञ्जयकी पांडचीके समीप भेजा ॥ २२५ ॥ सञ्जयसे पाएडवोंका और वास् देव हैं मुख्य जिनमें ऐसे दूसरे राजाश्रोका युद्धारंभ सुन राजा धृतराष्ट्रको चिन्तासे नीद भी नहीं आई ॥२२६॥ उस समय विदुरजीने वृद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको जिसमें हितभरा था ऐसे अनेकों प्रकारके बचन सुनाए जिनको विद्वान विदुरनीतिके नामसं कहतेहैं॥ २२७॥ श्रीर सनत्सुजातने खिद्यचित्त शोकमें लवलीन धृतराष्ट्रको उत्तम श्रध्यात्मद्वान कह सुनाया ॥ २२= ॥ हे व्यापकराजन् । उसके पीछे प्रातःकाल संजयने भरी सभाके मध्यमें ओक्रण्ण और अर्जुनकी एकता भी सुनाई॥ २२६॥ तदनन्तर दयाल महामति श्रीकृष्ण परमात्मा सम्मति करनेकी इच्छासे

तदनन्तर दयानु महामित अिंहिष्ण परमात्मा सम्मितिकरनेकी इञ्जासे समाधान करनेक लिए आपही हस्तिनापुरमें आए॥ २३०॥ जिलमें दोनी पर्लोका हित होय ऐसे निवदाव के लिए श्रीहण्यकीने प्रायंना करी परन्तु दुर्योधनने उसका स्पष्ट निपेश करिया चए कथा है। २३१॥ तदनन्तर दंभोद्धवका खाल्यान कहा है, पुत्रीके लिए योग्यवरको ढूंढ़ते हुए महात्मा मातलीका चरित्र भी इसमें ही श्राता है।। २३२॥ तदनन्तर महर्षि गालयका चरित्र कहा गया है तथा उसके पीक्ने विवुत्ताने श्रप्त पुत्रसे हितकी श्रिता कही है।।२३३॥ तदनन्तर कर्णु दुर्योधन तथा दूसरांके हुए विचारको जानकर श्रीहरण्यजीने वहां राजाश्रीके वीचमेही श्रपना योगेश्वरपना दिखाया२३४तद्वन्तर अर्णु हुर्योधन तथा क्ष्मित्र स्थाने वहां स्थाना स्थानिक स्थानिक विवार स्थानिक विवार स्थानिक विवार स्थानिक स्थानिक विवार स्थानिक स्थानिक विवार स्थानिक स्था

 सहामारन ज्ञादिपर्व ॥ (ųĘ) िवतः । उपायपूर्वं साँटीर्य्यात् प्रत्याख्यातश्च तेन सः ॥२३५ ॥ त्रागस्य हास्तिन्युराद्यपेत्वमरिन्दमः। पांडवानां यथावृत्तं सर्वमाख्यातवान् हरिः ॥ २३६ ॥ ते ठस्य बचनं श्रुत्वा मंत्रयित्वा च यद्धितम् । लांत्रामिकं ततः सर्व जन्जं चक्रः परन्तपाः ॥ २३७ ॥ ततो युद्धाय निर्याता नरा-इदर्भाद्दितनः। नगरातास्तिनपुराहलसं ख्यानमेव च॥२३=॥ यत्र राजा हातुसस्य प्रेयस् पांडवान् प्रति । श्वोभाविनि महायुद्धे दौत्येन छतवान् प्रसुः ॥ २३८ ॥ रटाहिरथसं ख्यानमस्योपाख्यानमेव च । एतंत् स् बहु-इक्तान्तं पञ्चमं पर्व भारते ॥ २४० ॥ उद्योगपर्व निर्दिण्टं सन्धिवित्रह सिशितम् । अध्यायानां रातं प्रोक्तं पडशीतिर्महर्पिणा॥ २४१॥ स्रोकानां पद्कतुन्ताणि कावनत्येय शकानि च । स्रोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथै-हार्द्यो सहात्मना ॥ २४२ ॥ व्यासे नोदारमतिना पर्वण्यार्देमस्तपोधनाः हातः परं विचित्रार्थं भीषमपर्व प्रचच्यते ॥ २४३ ॥ जम्बुखण्डविनि-क्रीलस रहीकं खब्जवेन ह । यत्र वीधिष्टिरं सैन्यं विपादमगमत्परम ॥ २४४॥ यह यहसभृद्धोरं दशाहनि सुदारुणम् । कश्मलं यत्र पार्धास्य कहीं तीभी कर्लने तर्वले तेला करनेका स्वष्ट निपेध किया ॥ २३५॥ तदनन्तर सम्बद्धक श्रीहरि हस्तिनापुरले उपन्तव नामक स्थानमें पारंडबोंके संबीप साथे और पाएडवोंके सब गाउँ जैसीको हैसी कहकर सुना ही । १२६६॥ उनके वचनको सुन उनके साथ हितकरिक विचार करके प्रवृद्धीको दुःख देनेवाले पारडवीने बहुतसी युद्धकी लामग्री तच्यार करना घारम्भ कर दी ॥ २३७॥ युद्धके लिए मेनुष्य होडे एए और हाथियोंकी वड़ीमारी सेना हस्तिनापुरसे निकलने लगीवह कथा है तद्वन्तर सेनाकी संख्याका विचार आता है॥२३=॥ तबनन्तर दुर्योधनने वड़ाभारी युद्धहोनेके पहिले दिन उल्काको पाएड-बोंकी शोर इत दनाकर भेजा, वह कथा आती है, तदनन्तर रथ द्यतिरथ इत्यदिकी गणनाकी कथा जाती है, और तदनन्तर अस्वो-ण्डवान घाताहै इन सर्वोक्षा बहुत विस्तारसे महाभारतके पांचले डचोनपर्दर्से दर्गन करा है॥ २३६ ॥ २४० ॥ हे तपोधनो ! इस उद्यो-गर्ग्यमें सहिंद उदारपुद्धि व्यासजीने संधि और वित्रहका मिलाहजा भाग दर्शन करा है तथा एकसौछियासी अध्याय रचे हैं तथा उन्ही महात्माने छःहजार छःसौ अठानवे श्लोक रचे हैं। अब मैं तुमसे वि-चित्र अर्धवाला भीष्मपर्वे कहताहूँ ॥ २४१—२४३ ॥ जिसमें संजयने जस्बद्वीपकी रचना कही है और उसके पीछे युधिष्टिरकी सेनाने दुःख पाया घह कथा है, और जिसमें दशदिनपर्य्यन्त महादाहण श्रीर

भवंकर युद्ध वर्णन किया है, जिसमें श्रर्जुनको परम क्लेश हुआ है,

ः भाषानुवादः सहितः शध्याय ी वास देवी महामतिः ॥ २४५ ॥ मोहजं नाशयामास हेन्भिमींकुःशिभिः समीवयाधोत्रजः तिप्रं यधिष्टिरहिते रतः ॥ २४६ ॥ रथादाष्त्रत्य वेगेन स्वयं कृष्ण उदारधीः । प्रतोदपाणिराधावद्वीपमं हुन्तं, व्यपेतर्भाः २४७ वाक्वप्रतोदाभिष्ठतो यत्र कृष्णेन पाएडवः । गाएडीवधन्वा समरं सर्वशस्त्रभतास्वरः ॥ २४= ॥ शिखिएडनं पुरस्कृत्य यत्र पार्थी महा-धनः । विनिव्यक्तिशितैर्वार्शेरथाङ्गीष्ममपातयत् ॥ २४६ ॥ शरतल्पग-तक्षेव भीष्मो यत्र वभूव हु । पष्टमे तत्समाख्यातं भारते पर्व विस्तु-तम् ॥ २५० ॥ द्यायानां शतं बोक्तं तथा सरदशापरे । पश्चरठोक-सहस्राणि संख्ययाष्ट्री शतानि च ॥ २५१ ॥ स्रोकाध्य चतुरशीतिर-हिमन पर्वणि कास्तिताः । व्यासेन घेट्विट्रपा संख्याता भीष्मपर्वणि ॥ २५२ ॥ द्रोलपर्व ततश्चित्रं बहुबृत्तान्तमुच्यते । सैनापत्येऽभिषिक्तो-ऽथ यत्राचार्थ्यः प्रतापवान् ॥ २५३ ॥ दुर्च्योधनस्य प्रीत्यर्थे प्रतिज्ञा महाखित्। ग्रहुण् धर्मराजस्य पाएडुपुत्रस्य धीमतः। यत्र संसप्तकाः पार्थमपनिन्य रणाजिरात् ॥ २५४॥ भगदत्तो महाराजो यत्र शकसमो श्रपने सोही और यांधवींको मारतेमें शोकजनित मोह होनेपर श्रस्तको फॅककर ट्र खडा होगया, तब महामति वासुदेव भगवान्ने मोचको दिखानेवाले सिद्धान्तींसे उसके मोहजनित खेदका नाशकरायह कथा है, इसके अनन्तर युधिष्ठिरके हितमें लगेडप उदारमति श्रीकृष्ण भट रथपरसे उतपडे श्रीर पाएडवींका सेनामें होनेवालीभागडको देखकर हाथमें चातुक लेकर निर्भयतासे भीष्मपितामहके मारनेको दौडे शौर उन्होने हृदयको बेधने वाली वाणीरूप छुरीसे श्रर्जुनका हृदय वेध डाला तव गागडीव धनुपको धारण करनेवाले और सव शखधरीमें श्रेष्ठ महाधनुर्धारी अर्जनने शिखएडीको श्रपने श्रामेकरके तीद्यवार्योकी वर्षाकर भीष्मिपतामहको रथसे नीचे निरादिया ॥ २४५--२४६ ॥ श्रीर उससमय भीष्मपितामर वार्णीकी शय्यापर सोगए इतनी कथाएं इस पर्वमें हैं यह विस्तारवालाभीष्मपर्वमहाभारतका छुटापर्व कहाता है॥ २५० ॥ वेदवेत्ता भगवान् ब्यासजीने इस भीष्मपर्व में १७० श्रध्याय तथा ५==४ श्लोक कहे हैं ॥२५१-२५२॥ तदनन्तर विचित्र श्लौर बहुतसे श्रास्यानीवाला द्रोणपर्वे श्राताहै इसमें प्रतापवान द्रोणाचार्यका सेनापति के पदपर श्रभिषेक कियागयाहै॥२५३ तदनन्तर श्रखशस्त्रों में निपुण द्रोणाचार्यने दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिए पाएडराजके पत्र बुद्धिमान राजा युधिष्टिरको पकडलानेके निमित्त करीहर्हे प्रतिहाकी कथा आती है इसमें ही संसप्तकनामवाले योदा, लड़ते २ अर्जनको

रणभूमि में से दूर लेगए तिसकी कथा आती है, तदनन्तर इन्द्रकी

(y=) # सहाभारत श्रादिपर्व # [दूसरा युधि । सुप्रतीकेन नागेन स हि शान्तः किरीटिना ॥ २५५ ॥ यत्राभि-सन्यं बहुवो जब्तुरेकं महारथाः । जयद्रथमुखा वालं शरमप्राप्तयौव-नम् ॥ २५६ ॥ हतेऽभिमन्यौ कुद्धेन यत्र पार्थेन संयुगे । अनौहिणीः लत हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ २५७ ॥ यत्र भीमो महावाहः सात्य-किर्च सहारथः।श्रन्वेषणार्थं पार्थस्य युधिष्टिरनृपाशया।प्रविष्टौ भारतीं सेनासप्रभुष्यां सरैरिप ॥ २५= ॥ संसप्तकावशेपश्च कृतं निःशेपमाहवे। ञ्चलन्दुपः श्रुतायुश्च जलसन्धश्च वीर्थ्यवान् ॥ २५६ ॥ सोसदत्तिर्विरा-दश्च इ.पद्रश्च सहारथः । घटोत्कचाद्यश्चान्ये निहता द्रोणपर्वेणि २६० अरवरधामापि चार्वेव होले युधि निपातिते । अस्त्रं प्रादुश्चकारोग्नं नारा-यण्नमर्पितः॥२६१॥ज्ञान्नेयं कीर्त्यते यत्र रुद्रमाहात्म्यमुत्तमम्। व्यासस्य चाप्यासम् माहात्म्यं कृष्ण्पार्थयोः ॥२६२॥ सप्तमं भारते पर्व महदेतद-हाहतम् । यत्र ते पृथिवीपालाः प्रायशो निधनं गताः॥२६३॥ द्रोगापर्वाण टे शरा निहिद्याः पुरुपर्पसाः। प्रजाध्यायशतं प्रोक्तं तथाध्यायाश्च सप्ततिः समान पराक्रमी महाराज भगदत्तको उसके सुप्रतीकनामके हाथी के सहित अर्जनने सारडाला, तदनन्तर जयद्वथँ जिनमें सुख्य है ऐसे सहारथियों ने, अभी युवावस्थाको नहीं प्राप्त हुए, वालक तथा अकेले शरवीर अभिमन्युको नारा, यह कथा आती है, अभिमन्युके मरणसे कूढ़ हुद छर्जुनरे संघाम में सात अज्ञौहिसीसेना को मार कर राजा जयहथ को नारडाला ॥ २५४-२५७॥ तद्नन्तर महाबाहु भीम-सेन और महार्थी सात्यकी, राजा युधिष्टिरकी प्राकासे प्रज्निको ढंढने के लिए, जिलमें देवता भी न युस सकें ऐसी कौरवोंकी सेना में बुलगए ॥ २५= ॥ तदनन्तर उन परम उदारचित्त सकल संसहक योद्याओंको अर्जुन ने अतिदारुण युद्ध करके यमलोक पहुँचा दिया और अलम्बुप, अतायु तथा वीर्यवान् जलसंघ ॥ २५६ ॥ स्रोमदत्तका पुत्र सूरिश्रवा, विराट, महारथी राजा द्रपद्, तथा घटोत्कचादि अन्य भी अनेकों वलवान योदा इस दोलपर्व में नाशको प्राप्तहृष्ट यह वर्णन करा है ॥ २६० ॥ इस संग्राम में जब द्रोलाचार्च निरमए तय अपार कोचको प्राप्तहुए उनके पुत्र अश्व-त्यामाने वहा भयंतर नारायण नामक अख्यको शतुर्कीके विनाश के लिए प्रकट करके छोड़ा ॥२६१॥ किर भगवान् रुद्की अग्निसम्बन्धी उत्तम कीर्त्तिका गान किया है, तद्वनन्तर व्यासजीका प्रधारना श्रीर श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका महातम्य वर्णित है ॥ २६२॥ इसप्रकार यह महाभारतका सातवां द्रोणपर्व कहा है, जिन श्रर और महापुरुष राजाओंका वर्णन कियाथा उन राजाओंने श्रधिकतर इस द्रोणपर्व

🕸 भाषानवाद सहित 🍪 (38) श्रध्याय न ॥२६४॥ अष्टी मुहोकसहस्राणि तथा नवशनानि च।महोका नव तथैवाव संख्यातास्तरवदर्शिना । पाराशय्यंग पुनिना सञ्चित्य द्रोग्पर्वणि ॥ २६५ ॥ श्रतः परं कर्णपर्व बोच्यने परमाञ्चनम् । सार्थ्ये विनियोगश्च मदराजस्य धीमतः॥२६६॥ग्राख्यानं यत्र पौराणं विपुरस्य निर्धातनम् । प्रयाणे परुपञ्चात्र संचादः कर्णशहययोः।हंसकाकीयमारुयानं तर्थवाले पसंहितम् ॥ २६७ ॥ वधः पाग्डवस्य च तथा श्रश्वत्थास्ना महात्मना। देवसेनस्य च तता दण्डस्य च वधस्तथा ॥ २६= ॥ हैरथे यत्र कर्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः । संशयं गमितो युद्धे निपतां सर्वधन्विनाम् २६६ अन्योन्यं प्रति च फोधो युधिष्टिरिकरीटिनोः। यर्ववाननयः प्रोक्तो माध्रवेनार्जनस्य हि ॥ २७० ॥ प्रतिग्रापूर्वपञ्चापियन्नो दुःशासनस्य च। भित्या बुकोंदरो रक्तं पीतवान्यत्र संयुगे ॥ २७१ ॥ हैरथे यत्र पार्थंन हतः कर्णो महारथः। श्रष्टमं पर्व निर्दिष्टमेतद्भारतचिन्तकः॥ २७२॥ एकोनसप्तिः प्रोक्ता श्रध्यायाः कर्णपर्वणि । चत्वार्य्यंव सहस्राणि नव रहोकशतानि च ॥ २७३ ॥ चतुःपष्टिस्तथा रहोकाः पर्धरयस्मिन् प्रकी-र्तिताः । श्रतः परं विचित्रार्थं श्रत्यपर्व प्रकीर्त्तितम् ॥ २७४ ॥ एतप्र-में ही मरण पायाहै, पराशरके पुत्र तत्वदर्शा भगवान् वेदव्यासर्जीने विचार करके इस द्वोणपर्वमें १७० श्रध्याय श्रीर ==६० स्होक गिनाप हैं।। २६३--२६५ ॥ तदनन्तर परमाद्भत कर्णपर्व करने में आता है जिलमें बुद्धिमान मद्रदेशके राजा कर्णको सारधी बनायागया वह कथा आती है।। २६६॥ तदनन्तर त्रिपुरास्रिनिपात सम्बंधी पौराणिक कथा आती है फिर यसमें चढाई करते समय कर्ण और राजा शल्यका कठोर सम्बाद श्राता है तदनन्तर श्राक्षेपके साथ कहनेमें यानेवाला हंस और कीएका ग्राख्यान ग्राता है ॥ २६७॥ तदनन्तर अध्वत्थामाके करे हप पाएटव राजाके चधकी कथा आती है तदनन्तर देवसेन तथा द्रुडका वध कहा गयाहै॥ २६=॥ तदनन्तर सब धरुपधारियोंके देखते हुए कर्ण और युधिष्टिरके इन्हयुद्धमें युधिष्टिरके प्रााणीपर भय श्राजानेकी कथा है ॥ २६८ ॥ तदनन्तर युधिष्ठिर श्रीर श्रर्जनके परस्पर संवादमें क्रोध श्राजानेकी कथा है तद्नन्तर श्रीहप्एजीने श्रर्जुनको समभाया ॥२७०॥ और पहिले की हुई प्रतिज्ञापूर्वक जिस संग्राम में भीमसेनने दुःशासनका हृदय फाड़कर रुधिर पिया ॥ २७१ ॥ तथा रुएमें महारुथी कर्एकी ग्रर्जनने मारा इत्यादि सम्पूर्ण कथापं इस महाभारत के श्राठवें कर्ण पर्वभें श्राती हैं ऐसा महाभारतकी कथा विचारनेवाले कहते हैं ॥२७२॥ इसकर्णपर्वमें ६६ अध्याय और ४६६४ रहोक हैं तदनन्तर विचित्र विपयों से भरा-हुआ शतयपर्व कहाहै॥२७३-२७४॥अब जिस समय सेनामें से बहुतसे

बीरे सैन्ये तु नेता मद्रेश्वरोऽभवत्। वृत्तानि रथयुद्धानि कीर्त्यन्तेयत्र भागशः ॥ २७५॥ विनाशः कुरुमुख्यानां शल्यपर्वशि कीर्त्यते । शल्यस्य निधनं चात्र धर्मराजान्महात्मनः ॥ २७६ ॥ शकुनेश्च बधोऽत्रैव सहदे-वेन कंयुने । सैन्ये च हतभृयिष्ठे किञ्चिच्छिष्टे सुयोधनः ॥ २७७ ॥ हुदं प्रविष्य यज्ञासी संस्तभ्यापी व्यवस्थितः। प्रवृत्तिस्तत्र चाख्याता यज्ञ सीतस्य लुब्बकैः ॥ २७= ॥ चोपयुक्तैर्वचोभिश्व धर्मराजस्य धीमतः । हरात् समुत्थितो यत्र धार्त्तराष्ट्रोऽत्यमर्पगः॥ २७६॥ भीमेन गदया युद्धं यशासी इतवान् सह । समवाये च युद्धस्य रामस्यागमनं रमृतम् ॥ २=० ॥ सरस्रत्याश्च तीर्थानां पुपयता परिकीर्त्तिता । गदायुद्धश्च तुसुलमजैव परिकीर्त्तितम्॥ २=१॥ दुर्च्योधनस्य राज्ञोऽथ यत्र भीमेन् चंद्रने। ऊरू भन्नौ प्रसद्याजी गद्या भीमवेगया ॥ २=२ ॥ नवमं पर्व निर्दिष्टमेतदञ्जतमर्थवत् । एकोनपष्टिरध्यायाः पर्वएयत्र प्रकीर्त्तेताः ॥ २=३ ॥ संख्याता बहुबृचान्ताः स्टोकसंख्यात्र कथ्यते । त्रीणि स्टोक-सहस्राणि हे शते विश्वतिस्तथा ॥ २=४॥ मुनिना सम्प्रणीतानि कौर-बीर पुरुष टारेगए तब नद्भदेश के राजा शहयको सेनापति नियत किया। ग्रीर इस पर्दमें ही रथियों के युद्धका विभाग से वर्णन किया. है।। २७५ ।। इस शल्यपर्वमें कौरवींके मुख्य २ पुरुपींका नाश और वहात्मा धर्मराज से शल्यका नाश, तथा रणमें सहदेव के हाथसे शक्तिका वध भी इसमें ही वर्णन किया है जब बड़ी भारी सेना मारी गई और किञ्चिनमात्र ही बची तब दुर्योधन एक खरोबर में द्युस पतिको स्थिर करके उसमें द्युपगया सुन्धकों (लोभी जास कों) से भीन नेन को इस वातकी खबर मिलते ही पापडच तहां गए और बुद्धिमान धर्मराज के तिरस्कार भरे कठोर वचनी को न सहने से बड़े कोध में भरकर ध्ताष्ट्रका पुत्र दुर्योधन पानीमें से वाहर निकल आया ओर उसने वाहर निकलकर श्रीमसेन के लाथ गदागुङ्का आरम्भ किया गदागुङ होरहा थो, उसी समय वलरामजी तहां आगए ॥ २०६-२=० ॥ उन्होंने सरस्वती तथा दूसरे तीथाँकी पवित्रताका वर्णन किया फिर राजा दुर्योधन और भीमसेन का वड़ा घोर गदायुद्ध कहा है, २=१ ॥जिसमें भीमसेन ने युद्ध में भयंकर देगवाली गदाके वलपूर्वक प्रहारसे दुर्योधन की जांचे तोड्दीं ॥ २=२ ॥ इसप्रकार श्रद्धत कथाश्रीसे परिपर्ण ।यह महा-भारतका नौवां पर्व कहा है कौरवों की कीर्त्तिको कहनेवाले मनि वेद्द्यासजीने इस शत्यपर्व में बहुतसे वृत्तान्तींसे भरेहुए ५६ श्रध्याय और ३२२० स्रोक रचे हैं इसके उपरान्त दारुण सीप्तिक पर्वकी

महाभारत आदिपर्व ॥

(60)

ोगमान्। पाञ्चालान् सपरीवारान्द्रौपदेयांश्च सर्वशः। कृतवर्मणा च लहितः हुऐस च विज्ञविवान् ॥ २६४ ॥ यत्रामच्यन्त ते पार्थाः पञ्च कुन्सवहाययात् । सात्यकिश्च महेन्वासः शेपाञ्च निधनं गताः ॥२६५॥ पाङ्गानां प्रसुप्तानां यत्र द्रोणस्ताद्धधः । धृष्टद्यस्य स्तेन पाएड-देल निवेदितः ॥ १८६ ॥ होपदी पुत्रशोकार्त्ता पितृमात्वधार्दिता । कृता नरानसङ्खरपा यत्र भर्ते नुपाविशत् ॥ २६७ ॥ द्रौपदीवचनाद्यत्र भीमो भीमएराकनः । प्रियं तैल्याश्चिकार्पन् वै गदामादाय वीर्य्यवान् । श्चन्व-धावत् बुलंकुद्दो भारहाजगुरोः सुतम् ॥ २६= ॥ भीमसेनभयाद्यत्र हैंबेनासिज्ञचाँदितः । घ्रपोर्डदायेति रुपा द्रौणिरस्त्रमवास्जत्॥२८८॥ र्वेद्यतित्वद्रदीत् कृष्णः शमयंस्तस्य तद्वचः । यत्रास्त्रमस्त्रेण च तच्छ-नवासास फार्स्सनः ॥ ३०० ॥ द्रौगेश्च द्रोहबुद्धित्वं वीस्य पापात्मन-न्तवा : होशिहेपायनादीनां शापाश्चान्योन्यकारिताः ॥ ३०१ ॥ मणि त्ति हैं हिश्चिन्त लोते हुए, षृष्ठचुस्न जिन में मुख्य है ऐसे परिवार लहित पांचालोंको तथा द्रौपदीके सप पुत्रों को अश्वत्थामा ने मार-डाला।(२१४)। श्रीकृष्ण सगदान् के वलवान् आश्रयसे पांची पांडव और-शरदीर लात्यिक साव ही दचा और सब उस बोर राति में अश्व-त्थामाठे हांधले मारेगण॥२८५॥तद्दनन्तर घृष्टचुम्नके सारथीने ज्ञाकर पांडवों से तहाकि-द्रोगके पुत्र अरवत्थामाने स्रोते हुए पांचालीको मारडाता है॥ २६६॥ इस बातको सनकर पुत्रशोकसे व्याक्तल हुई तथा पिता और भाईयों के मरने से घति दुःखित हुई दौपदी, अपने पुश्रीके सारनेवाले को सरवादंगी तवहीं भोजन कहांगी ऐसी प्रतिज्ञा कर घरने एदामियोंके पाल छावैठी ॥२६७॥द्रौपदीके इस वचनको सन कर शीमवराक्तमी वीर्यवान भीमलेनने द्रौपदीको प्रसन्न करनेके लिए अत्यन्त क्रीधकर शीवही गदालेकर, अपने अख शखकी विद्या के गुरु होलाचार्यके पुत्र अरवत्थामाका पीछा किया ॥ २६८ ॥ भीमसेनके भयसे तथा दैवके पेरला किये हुए और शत्यन्त कोधके आवेशमें हुए द्रोणाचार्यके पुत्र ऋश्वत्थामाने पाराडवींके नाशके लिए रोपमें श्रा "अवागडवाय" ऐला नंत्र पहकर महाभयंकर श्रस्त पागडवोंकी श्रोर को छोड़ा, परन्तु श्रीखणाजी ने "सैवं" ऐसानहीं होना चाहिये, यह कहकर उसके मन्त्रको शान्त करिदया तथा अर्जुनने उसके सामने छपना शल छोड़ कर उस के अलाको शान्त करदिया ॥ ३०० ॥ होसके पुत्र पापातमा अश्वतथामा की द्रोहबुद्धि को जानकर भगवान छुज्जहीयांचनने उसको शापदिया इसपर उसने भी उनको शाप दिया

्र सप्रकार परस्पर शाप दियागया ॥३०१॥ तदनन्तर महारथी द्रोणपत्र

 भाषानुवाद सहित । (83) अध्याय तथा समादाय होणपुत्रान्महारथात् । पाग्डवाः प्रदृद्धि होपधै जितकाशिनः ॥ ३०२ ॥ एतहै दशमं पर्व सौतिकं समदाहतम । छष्टा-दशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्यका महात्मना ॥ ३०३ ॥ ऋोकानां कथिता-न्यत्र शतान्यष्टौ प्रसंख्यया । श्लोकाश्च सप्ततिः प्रोक्ता मुनिना प्रहावा-दिना॥ ३०४ ॥ सौप्तिकैपीकसंबद्धे पर्वण्युत्तमतेजसा। यत अर्ध्वमिदं प्राप्तः स्त्रोपर्व करुणोद्यम् ॥ ३०५॥ पुत्रशौकाभित्तन्ततः प्रज्ञाचन्त्ररा-धिपः। जण्णोपनीतां यत्रासावायसीं प्रतिमां दढाम्। भीमसेनदो हव-द्धिर्धातराष्ट्रो वसक्त ह ॥ ३०६ ॥ तथा शोकाभितप्तस्य धृतराष्ट्रस्य धीमतः। संसारगहनं बद्धा हेत्भिमांचदर्शनैः ॥ २०७ ॥ विदरेश च यत्रास्य राह श्राश्वासनं कृतम् । धृतराष्ट्रस्य चात्रैव कीर-वायोधनं तथा । सान्तःपुरस्य गमनं शोकार्त्तस्य प्रकीत्तितम् ॥३०= ॥ विलापो चीरपत्नीनां यत्रातिकरुणः स्मतः। क्रोधावेशः प्रमोदध्यं गानधा-रीधतराष्ट्रयोः ॥ ३०६ ॥ यत्र तान् चित्रयाः शरान् संग्रामेष्वनिवक्तिनः पुत्रान् भातृन् पितुं श्चैव दृदशुर्निहतान् रखे ॥ ३१० ॥ पुत्रपीत्रवधार्त्ताः व्यश्यत्थामाके मस्तकमें से मणि निकालकर हर्षको प्राप्त हुए और अपनी विजयसे शोभित हुए पाएडवॉने प्रसन्न होकर वह मणि द्रौपदीके श्रापण करी ॥ ३०२ ॥ यह दशमांपर्व सीविकपर्व कहाता है, ब्रह्मवादी महातमा व्यासजीने इस पर्वमें १० अध्याय रचे हैं और इस पर्वमें =90 क्रोक रचे हैं तथा इसपर्वमें उन महर्षिने उत्तम तेजवाले सीप्तिक श्रोर पेपिक नामक दो पर्व जोड़ दिए हैं, श्रीर तदनन्तर करुणा रसको उत्पन्नकरनेवाला स्नीपर्वकहा है ॥३०३--३०५ ॥ पुत्रशोकसे द्रः खित, श्रीर भीमसेन के ऊपर क्रोधमें भरेहुए प्रशाचनु राजा ध्वराष्ट्रने श्रविदृढ श्रीर कृष्णने लाकर उनके सामने रक्खी हुई भीम सेनकी लोहेकी मूर्तिको भीम जानकर कौलियामें भरकर चर्ण २ कर डाला, ॥ ३०६ ॥ तदनन्तर विदुरजी ने अपनी वृद्धिमानी से मोत दिखानेवाले हेतुओं के द्वारा पुत्रशोकसे व्याकुल हुए बुद्धिमान राजा धतराष्ट्रको इन सांसारिक गहन विषयों की प्रीतिका विस्मरण कराकर श्राश्वासन दिया।३०अतदनन्तर शोकसे श्रातुर हुए राजा धृत-राष्ट्र अपने कुलकी सम्पूर्ण स्त्रियों के साथ कौरवों के रण्लेत्रकी और गए, यह कथा कही है॥ १० मीतहां वीरपुरुपोकी ख्रियोंको अत्यन्त करुणाज-नक विलाप तथा गांधारी श्रीर धृतराष्ट्रका क्रोधमें शाना एवं म-र्छित होना वर्णित है ॥३०६॥जहां चत्रियोंकी स्त्रियोंने उस रणभूमिमें पीछे को नहीं हटने वाले अपने वेटे भाई और पिताओं को रणनेज में मरे हुए देखा ॥ ३१० ॥ तदनन्तर पुत्रपौत्रीके मरनेसे दु:खिल हुई

महाभारत श्रादिपर्व # (88) यास्तथात्रैव प्रकार्त्तिता । गान्धार्य्याश्चापि कृष्णेन कोधोपशमनिकया ॥ ३११ ॥ यत्र राजा महाप्राज्ञः सर्वधर्मभताम्बरः । राज्ञां तानि शरी-राणि दाह्यामास ग्रास्त्रतः ॥ ३१२॥ तोर्यकमणि चारब्धे राज्ञामुदक-द्वानिके।गढोत्पन्नस्य चाख्यानं कर्णस्य प्रथयात्मनः ॥ ३१३ ॥ सत-स्येतदिह प्रोक्तं व्यासेन परमर्पिणा। पतदेकादशं पर्वशोकवैक्लव्यका रकम् ॥ ३१४ ॥ प्रणीतं सज्जनमनीवैक्लब्याश्रप्रवर्त्तकम् । सप्तविश-तिरध्यायाः पर्वग्यस्मिन् प्रकीर्त्तिताः ॥ ३१५ ॥ कोकसप्तराती चापि पञ्चसप्ततिसंयता । संख्ययाभारताख्यानमुक्तं व्यासेन धीमता ॥ ३१६॥ ग्रतः परं गान्तिपर्व द्वादशम्बद्धिवर्द्धनम् । यत्र निर्वेदमापन्नो धर्मराजो यथिष्टिरः । धातयित्वा पितृन् भ्रातृन् पुत्रान् सम्बन्धिमात्लान् ३१७ शान्तिपर्वणि धर्माश्च ब्याख्याताः शारतिलपकाः । राजभिर्वेदितव्या-स्ते लम्यग्रानवुभृतसुभिः ॥ ३१८ ॥ श्रापद्धर्माश्च तत्रैव कालहेतप्रद-र्शिनः । यान्युद्धवा पुरुषः सम्यक् सर्वज्ञत्वमवाग्र्यात् ॥३१८॥ मोत्तध-मध्य कथिता विचित्रा बहुविस्तराः । द्वादशं पर्व निर्दिष्टमेतत प्रावज-गांधारी के कोधको भगवान श्रीकृष्णजीने शान्त करा तिसकी कथा है। ३११।। तदनन्तर सकल धर्मज्ञों में श्रेष्ठ महाबुद्धिमान राजा धतराष्ट्रने तहां पड़ेहुए राजाओंके शरीरोंका विधिपूर्वक अग्निसं-क्कार कराया तिस की कथा कही है ॥ ३१२ ॥ तदनन्तर जब मरेहप राजाओंको दाहांजलि देनेके लिए तर्पणका आरम्भ हुआ. तब कन्ती ने बाल्यावस्थामें स्वयं गुप्तरीतिसे उत्पन्न करेहुए कर्णको भी श्रपना पत्र बताकर जलदान किया,इसन्यारहवें पर्वमें परमर्षि भगवान वेद-ब्यासजीने शोकित तथा विह्नल करनेवाला,श्रीर सत्प्रवांके चित्तको मोहमें डालकर रुलानेवाला,श्रनेकों विषयोंसे भरपूर ग्यारहवां पूर्व रचा

गांधारी के कोंधको मगवान् श्रीहुण्णुजीन ग्रान्त करा विसकी कथा गांधारी के कोंधको मगवान् श्रीहुण्णुजीन ग्रान्त करा विसकी कथा है। ३११॥ तदननतर सकल धनेशों में श्रीष्ठ महाबुद्धिमान् राजा है। ३११॥ तदननतर सकल धनेशों में श्रीष्ठ महाबुद्धिमान् राजा प्रताप्त्रेत तहां पड़ेहुए राजाशोंके ग्रारीसेंका विधिपूर्वक श्रान्तलं सकार कराया वित्त की कथा कही है। ३११॥ तदननतर जन मरेहुए राजाशोंको राहांजित देनेके लिए तर्पणका श्रारम्भ हुआ, तव कुन्ती ने नोवावानस्थान स्था ग्रामिति त्या राज्य करोंको भी श्राप्ता ने नोवावानस्थान स्था ग्रामिति संप्रान्त करेहुए कर्णको भी श्राप्ता पुत्र वताकर जलहान किया, इस ग्यार एवं पर्वेम परमित्र भगवान वेद्र व्यासक्रीने ग्रोकित तथा विहुत करनेवाला, श्रीर सतुवरीके निक्तको मोहिम डालकर रुलानेवाला, श्रीर सतुवरीके निक्तको मोहिम डालकर रुलानेवाला, श्रीर सतुवरीके वित्त भी रुण श्राप्ता कर प्रतिवर्ध के सुत्र स्था करो रुण स्था तथा है है इस प्रकार बुद्धिमान व्यासक्रीने महाभारतका श्राच्यान कहा है ३१६ इसके अनन्तर बुद्धिको बढ़ानेवाला वारहवी गानित पर्वे हैं, जिलमें वित्त, भाई, वुत्र, संवर्धी और मामग्रोको मरवाकर धर्मराज पुष्ति वित्त भाई, उत्त प्रवर्धी भी सामग्रोको मरवाकर धर्मराज पुष्ति त्यामहरू अन्त प्रवर्धी भी मामग्रोको मरवाकर प्रतिवर्धी जानने दोष्त्र राज्यमं कहे ॥ ३१०॥ तम प्रतिवर्धी मरवाकर प्रतिवर्धी जानने दोष्त्र राज्यमं कहे ॥ ३१०॥ तम प्रतिवर्धी मरवाकर प्रतिवर्धिक जानने दोष्ट्र वित्त कहे, जिन धर्मोंको मले प्रकार जानकर पुकर सर्विधनोको पाता है॥ ३१०॥ तम प्रतिवर्धी मरवाकर विवर्धका प्रवर्धी भी कहे, इसप्रकार विद्यानोंके प्यारे इस वारहवे पूर्वका वर्णन करा है। ३२०॥ है तपोधनो । महातपस्थी भगवान व्यासक्री

श्रध्याय] निर्मयम् ॥ ३२०॥ श्रत्र पर्चणि विद्ययमध्यायानां शतवयम् । विश्वश्चेय तथाध्याया नव चैव तपोधनाः ॥ ३२१ ॥ चतर्दशसहस्राणि नथा सप्त-शतानि च । सप्तरुशेकास्तर्थे यात्र पञ्चिधिशतिसंख्यया ॥ ३२२ ॥ श्रत ऊर्द् ञ विश्वेयमनुशासनम्त्रमम् । यत्र प्रकृतिमापनः श्रुत्वा धर्मवि-निध्ययम् । भीष्माद्वागीरथीपुत्रात् कुरुराजो सुधिष्टिरः ॥ ३२३॥ व्य-वहारोऽत्र कारस्त्येन धर्मार्थायः प्रकीत्तिनः । विविधानाञ्च वानानां फलयोगाः प्रकीत्तिताः ॥ ३२४ ॥ नथा पात्रविशेषाश्च दानानाञ्च परो विधिः । श्राचारविधियोगधः सत्यस्य च परा गतिः ॥ ३२५ ॥ महा-भाग्यं ग्वाञ्चेव ब्राह्मणानां तथे व च । रहस्यश्चे व धर्माणां देशकाली-पसंहितम् ॥ ३२६ ॥ एतत् सुबह्युत्तान्तम्त्तमं चानुशासनम्। शीप्म-स्यात्रैय सम्प्राप्तिः सर्गस्य परिकीत्तिता॥ ३२०॥ एतत्त्रयोदशं पर्य धर्मनिध्ययकारकम् । अध्यायानां शतन्त्वत्र पर्चत्वारिशदेव त ३२= न्हीकानान्तु सहस्राणि प्रोक्तान्यष्टी प्रसंख्यया । ततोऽश्यमेश्विकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम् ॥ ३२६ ॥ तत् सम्बर्त्तमकत्तीयं यशाल्यानमन्तरा मम् । सुवर्णकोपसम्प्राप्तिर्जन्म चोत्तं परीक्षितः । दग्धस्यास्त्राक्षिना पर्वे कृष्णात् सञ्जीवनं पुनः॥ ३३० ॥ चर्ग्यार्या एयमृत्सप्टं पाएडव-

ने इस शान्तिपर्व में तीनसी उनतालीस श्रध्याय रचे हैं ॥३२१॥ तथा चौद्र सहस्र, सातसौ वत्तीस श्लोक कहे हैं॥३२२॥ तदनन्तर उत्तम अनुशासन पूर्व कहाहै, जिसमें गङ्गाके पुत्र भीष्मिपतामहके कहेहए धर्मितिश्चयको सुन कुरुराज युधिष्ठिरका शोक दूर होकर वह स्थिर चित्त हुए ॥ ३२३ ॥ इसमें धमं खार खर्थके सम्बन्धका व्यवदार भी परे विस्तारसे कहाहै श्रीर नानाप्रकारके दानोंके पाल कहेहैं ॥ ३२४ ॥ तथा दान देने योग्य पात्र,दानकी मुख्य विधि, श्राचारका निर्णय श्रीर उसकी शास्त्रोक्त विधि तथा सत्यका स्वरूप कहाहै ॥ ३२५ ॥वादाणी का तथा गौश्रीका माहात्म्य, देशकालके श्रत्सार धर्माका रहस्य ३२६ इत्यादि विपयोका इस अनुशासन पूर्वमें विस्तारसे वर्णन है, इसमें ही भीष्मिपतामहका स्वर्गमें पहुँचना कहाई, इसकारण यह उत्तम है ३२७ यह तेरहवां पर्व धर्मका निध्वय करानेवाला है, इसमें एकसौ छिया-लीस अध्याय हैं ॥ ३२= ॥ श्रीर गणनामें श्राट सहस्र श्लोक कहें हैं, इसके अनन्तर चौदहवां आश्वमेधिक पर्व कहाहै॥ ३२८॥ इसमें संवर्त्त श्रीर मरुतकी श्रति उत्तम कथा कही है, पाएडवोंको सुवर्णभएडार प्राप्त होनेकी कथा तथा अश्वत्थामाके अखकी अग्निसे गर्भमें राजा परीजितका भस्म होना और फिर उसका श्रीकृष्णजीके द्वारा सञ्जी-वन ॥ ३३० ॥ यज्ञके घोड़ेको पृथिवी पर विचरनेके लिये छोड़ा. पाएडच

महाभारत श्रादिपर्व # द्रिसरा (६६) स्यानुगच्छ्तः । त्र तत्र च युद्धानि राजपुत्रैरमपैशैः ॥ ३३१ ॥ चित्रा-हुदायाः पुत्रेण पुत्रिकाया धनञ्जयः । लग्नामे वस्वाहेण संशयं चात्र इर्शितम् ॥ ३३२ ॥ अर्यमेधे महायज्ञे नकुलाख्यानमेव च । इत्याख-मेधिक पर्व प्रोक्तमेतनमहाद्भृतम् ॥ ३३३ ॥ अध्यायानां शतव्येव त्रयो-ध्याय अभित्तेताः। त्रीणि स्ठोकसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च। किं्तिश्च तथा स्रोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना ॥ ३३४ ॥ ततश्चाश्रम-द कार्यं पर्व पञ्चदशं समृतम् । यत्र राज्यं समृतस्त्रज्य गान्धार्या तिहितो सुपः । धृतराष्ट्रोऽश्रमगदं विदुरश्च जगाम ह ॥ ३३५ ॥ यंद्रप्ना प्रस्थितं लाज्बी पृथान्यसुययौ तदां । पुत्रराज्यं परित्यज्य म्युरुसुप्रो रता ॥ ३३६ ॥ यत्र राजा हतान् पुत्रान् पौत्रानन्यांश्च पार्थिदान् । लो-कान्टरगताच् वीरानपश्यत् पुनरागतान् ॥ १३३७ ॥ ऋषेः प्रसादात् कुर्णस्य द्याख्यं बहुकुमस्। त्यक्त्वा शोकं सदारश्च सिद्धि परिमको पतः ॥ ३२ = ॥ यत्र धर्मे समाश्चित्य विदुरः सुगति गतः । सम्जयश्च सहानात्यो विद्वान् गावलगणिर्वशी ॥ ३३६ ॥ ददर्श नारदं यत्र धर्म-रका करनेको उसके पीछे २ गए, स्थानो २ पर कोधी राजपुत्रोंके लाध युद्धोकी रूथा॥ ३३१॥ तदनन्तर (मणिपुरके राजाकी द्त्तक पुनी) चिकाहवाके उदरमें अर्जुनसे उत्पन्नहुए वसुवाहन पुत्रके साथ युद्ध करतेहुए संग्रामर्थे शजुनके प्राणीपर श्रायनना, तदनन्तर श्राव-में मासक महायह में नकुनाकी कथा कही है, इत्यादि बड़े अल्लत विषयी हे भराहुए। यह प्रार्थलेथिक पर्य समाप्त होता है ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥ तस्वदर्शी भगवान् वेद्दयासजीने इस आश्वसेधिक पर्वमें, एक सौ तीन प्रभाय और तीन हजार तीन को बीस श्लोक रचे हैं॥ ३३४॥ तद-वन्तर पन्द्रहदां आग्रमवासिक पर्व कहा है, इसमें राजा धृतराष्ट्र राज षाटको त्यांगकर गान्धारी और विदुरके साथ आश्रमको चलेहै ३३५ सर्वदा गुरुकनीकी सेवामें तत्पर रहनेवाली पतित्रता कुन्ती भी उन को इसप्रकार जातेहुए देखकर, अपने पुत्रोंके राज्यको त्यागकर उनके ही है । १३६॥ तदनन्तर छण्णहैपायन ऋषिके अनुब्रहसे राजा धतरापृते यह दड़े आअर्थकी वात देखी कि-मरणको प्राप्तहण उनके पुन, पीत्र, धन्य राजे तथा इस लोक्खे ,चलेजानेवाले वीरीने फिर झाकर दर्शन दिया,यह देखकर उन्होंने अपने शोकको त्यागदिया और की सहित परमगतिको प्राप्त होगए ॥ ३३७ ॥ ३३= ॥ तथा धर्मका आश्रय करनेवाले विदुरजी भी तहाँ ही सद्गति को प्राप्त इए, क्रितेन्द्रिय विद्वान् गावलगणिका पुत्र सञ्जय भी मंत्रियों सहित परमगतिको प्राप्त हुआ यह कथा कही है ॥ ३३६ ॥ तदनन्तर

अधाषाञ्चाद सहित श राजो युधिष्टिरः। नारदासैव शुश्राव वृष्णीनां फटनं .महत्॥ ३४०॥ पतदाश्रमवासारुयं पर्वोक्तं सुमहाङ्गतम् । द्विचत्वारिशद्थायाः पर्वे-तद्भिसंख्यय। ॥ ३४१ ॥ सहस्रमेकं ऋोकानां पञ्चऋोकरातानि च । पडेव च तथा श्लोकाः संख्यातास्तरवद्शिना॥ ३४२॥ धतः परं नि-घोधेदं मीपलं पर्व दारुगम् । यत्र ते परुपन्याद्याः शख्यस्पर्शसहा युधि। प्रहावग्रह्मिनिष्प्रपाः समीपे लवणाम्भसः ॥ ३४३ ॥ श्रापाने पानफ-लिता देवेनाभित्रचोदिताः । एरकान्पिभिर्वज्ञे निजय्नेरितरेतरम्३४४ यत्र सर्वेत्तरं कृत्वा तावभी राम्बेशवी । नातिचक्रमतः कालं प्राप्तं सर्वहरं सहत् ॥ ३४२ ॥ यत्रार्जुनो द्वारचतीमेत्य वृष्णिविनाकृताम् । टप्टा विषादमगमन् परां चार्त्ति नर्ष्यः ॥ ३४६ ॥ स संस्कृत्य गर-शेष्ट मातुलं शीरिमात्मनः । ददर्श यदुवीराणामापाने वेशलं महत् ॥ ३४७ ॥ शरीरं वासुदेवस्य रामस्य च महात्मनः । संस्कारं सम्भया धर्मराज युधिष्ठिरको नारदमुनिका दर्शन हुआ, और नारद मुनिने उनसे यादवकल के महा फदन (विनाश) की कथा कही है ॥३४०॥ इसवकार महाश्रद्धत श्राश्रमवासिक, नामक पन्द्रहवां पर्वे कहा है थ्रौर उसमें तरवदर्शा भगवान व्यासजीने चयालीस अध्याय श्रीर एक सहस्र पांच सी छः श्रीक कहे हु ॥ ३४१ ॥३४२ ॥ हे तपो-धनो ! इसके अनन्तर दावण मौसल पव है, उसको तुम सुनो, जिस में ब्राह्मण के शापसे खोर दैवकी ही बेरणा से, मदापान के स्थान में जा, मदिरा पीकर, हित श्रहित के विचारसेंफिरे हुए, पुरुषोंमें ब्याझ समान वृष्णिवंश के शर, कि-जो बाह्मण केशापसे नष्ट होचुकेथे, वह खारी समुद्र के तटपर (प्रभास पट्टन से खागे) उसे हुए पतेल नामक घास रूपो वज़के प्रहार से एक इसरेको काटकर श्रापस में हीकटमरे, यह कथा वर्णन करी है ॥ ३४३॥ ३४४॥ इस प्रकारवलराम श्रीर ऋष्ण दानों श्रपने वंशका नाश करकी, सबका नाश करने वाला, हमारा भी प्रयाणकाल श्रापहुँचा है,इपेसाजानकर श्रापभी, सबको हरनेवा ले कालका उल्लंबन न करके उसके अधीन होगए ॥ ३४५ ॥ तदनन्तर पुरुपों में श्रेष्ठ अर्जुन द्वारका में गया, श्रीर उसकी यादवों से सनी देखकर वडा शोक किया एवं परम दुःखी हुन्ना ॥ ३४६ ॥ तदनन्तर यादवां में श्रेष्ठ श्रपने मामा वस्त्रेव का श्रश्निसंस्कार किया, जहां मदिरा पान किया था, उस स्थान में यादव वीरों का जो श्रापस में महालंहार हुआ था, उसको अपनी दृष्टि से देखा और तदनन्तर श्रजुनने महात्मा कृष्ण श्रीर चलराम के श्रीरका तथा योदचकुल के अन्य प्रधान प्रधान पुरुषों के शरीरों का भी अन्तिसंस्कार

ः महाभारत श्रादिपर्व # (==) [दूसरा सास बण्हीनां च प्रधानतः ॥ ३४= ॥ स वृद्धवालमादाय द्वारवत्या-रततो जनम् । ददर्शापदि कष्टायां गाण्डीवस्य पराभवम् ॥ ३४६ ॥ सर्वेषञ्जेष दिव्यानासस्याणासमसम्बतास् । नाग्नं वृष्णिकलत्राणां प्रभा-वासामितित्वताम् ॥ ३५० ॥ हष्ट्रा निर्वेदमापन्नो व्यालवाश्यप्रचोदितः धर्मराजं समासाच सन्न्यासं समरोचयत् ॥ ३५१ ॥ इत्येतन्मीपलं पर्व दोड्यं परिकीत्तितम् । अध्यायाष्ट्रौ समाख्याताः स्ठोकनाञ्च शत-एकत् ॥ ३५२॥ स्होकानां विश्वतिश्चैव संख्यातास्तत्त्वदर्शिना । महाप्रा-एयानिकं तरमादृर्झं सप्तद्रां समृतम् ३५३ यत्र राज्यं परित्यंज्य पाएडवाः पुनवर्षभाः । इं.पद्या सहिता देव्या महाप्रस्थानमास्थिताः ॥ ३५४ ॥ यह तेऽहि इहिरारं कौहित्यं प्राप्य सागरम् ॥ यत्राग्निनाः चो-दितञ्ज पार्थस्तसमें महातमने । ददौ सम्पूज्य तद्दिव्यं गाग्डीवं धनुर-क्तमम् । ३५५ ॥ यत्र ख्रातृन्तिपतितान्द्रौपदीं च युधिष्ठिरः। द्याहित्वा जगामीय सर्वाननवलोक्यम्॥ ३५६॥ पतत् सप्तदशं पर्व महाप्रास्था निष्ठं स्मृतम् । यबाध्यायाद्धयः प्रोक्ताः स्रोकानाञ्च शतत्रयम् । विश-तिक तथा ऋोकाः संख्यातास्तत्वदर्शिना ॥ ३५७ ॥ स्वर्गपर्व ततो किया ॥ २८० ॥ २८= ॥ इसके पाँछे अर्जुन, द्वारका में से यदंवंश के वृद्ध पुरुषों को, छियोंको तथा बालकों को लेकर हस्तिनापुर की जातेहुँ प्रार्ग में बड़ी विपत्तिमें आपड़ा उससमय गांडीव धन्य से काम लेनेपर भी उसका निरस्कार हुआ, सकल दिव्य श्रस्ती की करसम्मता, याद्यकुलकी खियोंकी स्रष्टता और महाप्रयत्न प्र-भावोंकी इतिस्यताको देखकर वह यहारहु:खी।हुन्ना, और व्यासजीके वक्तोंका उपवस पाकर अर्जन ने धर्मराज के पास जा संन्यास धारण करनेकी इच्छा प्रकट की, ऐसा सोलहवें मौसलपर्व में वर्णन किया है, इसमें तत्वदर्शी व्यासजाने ज्ञाठ अध्याय और तीनसी बीस रहोज कहे हैं. रचके पीछै कबहवां महाप्रस्थानिकपर्व आता है॥३४६-॥ ३५३ ॥ जिसमें पुरुष श्रेष्ठ पारडव श्रपना राजपाद छोड़कर देवी द्रौपदीको साथ लिये हुए हिमालयकी श्रोर महाप्रस्थान को चलदिये ॥३५७॥ लाल सहुद्रके तदपर आनेपर उनको अन्निकादर्शन हुआ, जहां अन्तिके प्रार्थना करने से अर्जुनने उसकी पूजा करके अपना दिव्य गाएडीव नामक उत्तन धनुष महात्मा श्रमिदेवको अर्पण करदिया, एक के रीहें एक ववड़ाकर गिरतेहुए अपने भाइयों को तथा द्रीपदी को भी गिरीहुई छोड़कर, उनकी क्या दशो हुई, यह जानने को भी पीछे की कोर कोन देखकर राजा युधिष्ठिर आगैको चलेगए, इस प्रकार स्ववहर्षे यहायस्थान पर्व समाप्त होताहै तत्वदर्शी भगवान् वेद्व्यासने इस पर्वमें तीन शस्याय और तीनसी वीस स्ठोक कहे हैं ॥॥३५५-३६॥

ह्यारोहं सुमहाप्राप्त श्रानृशंस्याय्ह्यना विना ॥ ३५= ॥ तामस्याविच-लां हात्वा स्थिति धर्मेमहात्मनः । श्वद्धपं यत्र तत्त्वकृता धर्मेणासौ समन्वितः ॥ ३५६ ॥ स्वर्गे प्राप्तः स च तथा यातनां विवृत्तां भराम् । देवदृतेन नरकं यत्र व्याजेन दर्शितम् ॥ ३६० ॥ शुश्रावः यत्रः धर्मात्मा भ्रातुणां फरुणा गिरः। निदेशे वर्त्तमानानां देशे तत्रैव वर्त्तताम्॥३६१॥ श्चर्द्दर्शितक्ष धर्मेण देवरामा च पाएडवः । श्राप्तुत्याकाशगङ्गायां देहं त्यक्तवा स मानुषम् ॥ ३६२ ॥ स्वयमंनिर्जितं स्थानं स्वगं प्राप्य स धर्मराद्र । सुमुद्दे पुजितः सयः सेन्द्रेः सुरुगर्षैः सह ॥ ३६३ ॥ एतदः ष्टादशं पर्व द्रोक्तं व्यालेन धीमता । ऋध्यायाः पश्च संख्याताः पर्वत्य-हिमन्महात्मना ॥ २६४ ॥ श्होकानां हे शुने चैव प्रसंख्याते तपोधनाः । नव क्योकोस्त्रथैवान्ये संख्याताः परमर्पिणा ॥ ३६५ ॥ अष्टादशैवम्-क्तानि पर्वारयेतान्यशेषनः । सिलेपु इरिवंशस्य भविष्यश्च प्रकीर्त्तितम् ॥ ३६६ ॥ दशस्त्रोकसहस्राणि विशत् स्टोकशतानि च । सिलेपु हरि-वंशे च संख्यातानि महर्षिणा ॥ ३६७ ॥ एतत्सवै समाख्यातं भारते तदनन्तर श्रलीकिक श्रीर शाध्यर्य बृत्तान्तीयाला स्वर्गनामक श्रहारहचाँ पर्व द्याताहै, उसको खुना, सुभौ भी स्वर्गमें लेजायँ, इस इच्छासे छपने पीछे लगे श्रातेहर कुन्तेके विना द्याईचित्त महाबुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरने देवरथ नामक विमानमें बैठनेकी इच्छा नहीं करी ॥ ३५⊏ ॥ इसप्रकार उन महात्माकी धर्म पर श्रविचलश्रद्धाको देखकर यमराज ने क्रक्तेके क्षपको त्यागकर तहाँ ही सावात् दर्शन दिया॥३५८॥ और यधिष्टिरको अपने साथ सर्गर्मे लेगप, तदनंतर देवदृतने छल करके युधिष्टिर को बढ़े २ कप्ट दिखाये, ॥ ३६० ॥ जहां श्रागे जाकर धर्मात्मा यधिष्ठिरने श्रपने वशमें रहनेवाले भाइयोंकी दयाको उद्वीपन करने वाली चिल्लाहर ख़नी, ॥ ३६१ ॥ तदनन्तर यमराज ने श्रीर इन्द्रने श्रपनी श्राज्ञामें रहनेवाले पापियों के स्थान दिखाई फिर धर्मराज श्राकाश गंगामें स्नानफरके श्रपने मनुष्यदेहको त्याग,देव-गर्णी तथा इन्द्रसे पजित हो श्रपार श्रानंद पाकर श्रपने धर्म कर्मसे प्राप्तहुए स्वर्गरूपी उत्तम स्थानमें चलेगए, ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ इसप्रकार बुद्धिमान् व्यासजीने श्रटारहवां पर्व कहाहै। हे तपोधनो! परमऋषि महात्मा व्यासजीने इस पर्वमें पाँच अध्याय और दो सी नी श्लोक की रचना करी है, इसप्रकार श्रठारह पर्व श्रनुक्रमणिका सहित कहे हैं और खिल नामक प्रकरणमें हरिवंश पर्व और भविष्य पर्व कहे हैं.

महर्षि व्यासजीने खिलपर्वमें आयेहुपः हरिवंश पर्वमें वारह सहस्र श्लोक कहें हैं, ॥३६४॥ ३६७॥ इसप्रकार महाभारतमें सव पर्वेका

भाषानुवाद सहित

होयं दिव्यं यत्तदमानुषम् । प्राप्तं वैदरथं स्वर्गान्नेष्टवान् यत्र धर्मराट् ।

श्रध्याय ी

(33)

रस्येव धारणम् ॥ ३७५ ॥ इदं कविवरैः सर्वराख्यानसुपजीव्यते । उद-यप्रेप्सभिर्भः त्यैरभिजात इवेश्वरः ॥ १७६ ॥ श्रस्य काव्यस्य कवयो न संप्रह कहा है श्रठारह अज्ञौहिली लेना कुरुक्षेत्रमें युद्ध करनेको इकट्टी हुईथी, उसका महाघोर यद बरावर श्रठारह दिनतक होतारहा था ॥ ३६= ॥ श्रंगों श्रोर उपनिषदों सहित चारों वेदोंका जाननेवाला भी यदि इस इतिहासको न जानता हाय तो उसको चतुर नहीं कहा जासकता ॥ ३६८ ॥ ज्योंकि-परम बुद्धिमान् भगवान् वेद्व्यासजीने इस महाभारतकी रचनामें महान्, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और कामशास्त्र कहा है अर्थात् इसमें सब ही विषय कहे हैं ॥ ३०० ॥ जिसने नर कोकिल के मधुर स्वरीको छुनाहै उसको जैसे कौएकी रूखी वाणी श्रव्ही नहीं लगती, तैसे ही जिसने इस महाभारतको सुनिलया है. उसको श्रीर किसी भी कथाको सुननेकी रुचि नहीं होती॥३७१॥ जैसे तीनो लोकॉकी उत्पत्ति पञ्चमहाभूतमेंसे होती है तैसे ही सकल कवियोंकी वृद्धि, इस उत्तम इतिहासको सुननेसे प्रकृतित होतीहै ३७२ श्रीर हे ब्राह्मणो । जैसे चार प्रकारकी सृष्टि श्रन्तरिचमें रहतीहै. तैसे हीं सब पराणोंकी कथाएँ इस महाभारतके ब्रन्तर्गत हैं ॥३७३॥ जैसे सव इन्द्रियोंकी विचित्र कियाएं मनके श्रधीन रहतीहैं, तैसे ही लौकिक तथा वैदिक सब कियाओं के फर्लों के उत्तम साधन इस महाभारतके श्राश्रयमें रहतेहैं ॥ ३७४ ॥ श्रीर जैसे भोजनके विना शरीर नहीं टिक सकता तैसे ही इसके श्राश्रयके विना एक भीकथा इस भूतल पर नहीं टिकसकती ॥ ३०५ ॥ उन्नति चाहनेवाले सेवक असे कुलीन स्वामी पर थदा रलतेहें, तैसे ही सकल महा कविभी इस बड़ीभारी कथाके ऊपर श्रवना श्राञीवन रखते हैं ॥ ३७६ ॥ श्रीर जैसे उत्तम गृहस्थ श्राथम

(७०) * महाभारत ग्रादिपर्व * [दूसरा पर्वसंग्रह: । श्रप्टादश समाजग्धरत्तीहिएयो युग्रुत्स्या । तन्महांदाख्णं युग्रसहान्यप्टादशाभवत् ॥ ३६ ॥ यो विष्याचतुरो वेदान् साङ्गापनि-पदो द्विज्ञ: । न वाल्यानिमदं विद्याज्ञेत स स्याद्विच्चल्यः ॥ ३६ ॥ अर्थशास्त्रिमदं मोक्तं धर्मग्राख्निमदं मोक्तं धर्मग्राख्निमदं मोक्तं धर्मास्त्रामितवुद्धिना ॥ ३०० ॥ श्रुत्या त्विद्युपाल्यानं श्रव्यमन्यक्ष रोजते। पुंस्कोक्तिलिपरं श्रुत्या स्त्वा ध्वाल्वस्य नागिव ॥ ३०१ ॥ इतिहासो-क्याद्मराज्ञायन्ते कविवुद्धयः । पञ्चर्य दव मुतेस्यो लोक्तसम्त्रयः यद्यायः ॥ ३०२ ॥ श्रव्याद्याः ॥ ३०२ ॥ श्रव्याद्याः । इ०२ विक्रयागुण्तानं स्वयाप्तान्त्य विपये प्रताल्व विपये प्रताल्वानि स्वयाप्तान्त्य विपये प्रताल्वानां स्वयाप्तिः स्वयाप्तान्त्य । इन्द्रस्त्रान्त्यान्ति । ह्वात्रस्त्राम् स्वयान्त्रस्य श्रप्तान्त्यान्त्याम् अथि स्वाध्यान्तमाश्रयः । इन्द्रियाणां तमस्तानां विच्च । श्राहार्सनपाश्रित्य शर्पः

पापं कर्मणो सनता गिरा । महाभारतमाच्याय पूर्वे स्टब्स्यं प्रमुख्यते ई ॥३६१।यो नोरानं दानदामुह्मयं द्वानि विमानं येदविद्धपे च बहुश्रताय। पुन्याञ्च भारतक्यां ग्रलुयाधा नित्यं गुत्यं फलं भविद्य च तस्य वैचे ॥ ३६२॥ ज्ञाच्यानं तदिदममुत्तमं महायं विदेश्यं महिद्दा पर्यसं-चेद्रोत्। श्रुत्यादी भवित मृणां मुलावगादं विस्तीर्णं स्वयंग्रज्ञां यथा

अच्छा काव्य कोई भी किंच नहीं यनासकता ॥ ३०० ॥ हे तपस्वियों ।
तुम संसारभावनाष्ट्रांको त्यांनी कीर सावधान राहकर प्राप्त सिक्सको |
धर्मके उत्तर निश्चल करो, खाँकि-परलोक्षमं जाने समय प्रेयल एक धर्म |
धीनहायक है, चतुर पुरुष धन शीर निर्धाका नहीं करते हैते हो |
भी बह श्रपने मनमें उनके श्रेष्ठ होनेका विश्वाल नहीं करते हतना ही |
नहां किन्छु वह इन दोनोके स्थिरपनेको भी नहीं पांते३०४ हुम्पुईपायन |
के प्रथतेष्ठमेंसे निकलाहुया यह भारन स्वयने श्रेष्ठ तानका साधन, प्राप्त करते हुम हो |
एक प्राप्त को सुन्त है |
है, उसकी पुष्य तीर्थमें स्नान करनेकी प्रधायन्यकता है ? श्रथित |
है, उसकी पुष्य तीर्थमें स्नान करनेकी प्रधायन्यकता है ? श्रथित |
हो सुननेसे मिलताहै ॥ ३०६ ॥ ब्राह्मण्ड हिन्द्रसेंसे दिनमें जो पाप करता |
हे, उस पापसे वार्यकालको महामारत पहुकर हुस्ताता है।। ३०० ।
हो सुननेसे मिलताहै ॥ ३०६ ॥ ब्राह्मण्ड हिन्द्रसेंसे दिनमें जो पाप करता |
हे, उस पापसे वार्यकालको महामारत पहुकर हुस्त तार्वी। हो-आशीर |
हो सुन वसन तथा कमेंसे पाप करता है, उस पापसे प्रातःकाल

के सामने दूसरे आश्रम उत्तम नहीं मानेजाने, तेसे ही इस फाव्यसे

प्लवन ॥ इति ॥ इति आमहाभारत आदिपवाज प्रविज्ञात राजार र स्त्रितिच्वाच । जनमेजयः पारिचितः सह आतृिमः छुरुकाँचे दीर्घ-स्ववुपास्ते । तस्य आतरस्वयः अतसेन उन्नसेनो मीमसेन इति । तेषु तत्सवानुपालीनेप्यागच्छत् सारसेयः॥ १ ॥ सः जनमेजयस्य आ-तृभिर्राहितः रोक्रयमाण्यो मात्तुः समीपसुपागच्छत् ॥ २ ॥ तं माता रोक्तयमायुमुबाच कि रोदिषि सेनास्यमिहत इति ॥ ३ ॥ सः पयमुक्तो सातरं प्रत्युवाच जनमेजयस्य आतृभिर्रामहतोऽस्मीति ॥ ४ ॥ तं माता

साहर प्रत्युवाच जनमेजस्य झानुभिराभहताऽस्मात ॥ ४ ॥ त मता प्रत्युवाच स्थकः स्था तमायराइ वेनास्यभिहत इति ॥ ५ ॥ स तां प्रवच्याच नापरायामि किञ्चित्रनावेचे ह्वीपि नावित्वह इति ॥ ६ ॥ तस्युवाच नापरायामि किञ्चित्रनावेचे ह्वीपि नावित्वह इति ॥ ६ ॥ तस्युवा तस्य याता जरमा पुत्रदुःकार्ता तत् जमपुपागच्छ्यम ज कननेजयः सह भानुभिर्दाव सम्पापते ॥ ७ ॥ स्व तया मुख्या तमोकाऽयं हे पुत्रा न किञ्चित्रप्रास्थिति नावेचते ह्वीपि नावेचिति किम-

त्रसीर दिण्योंने भरेहुए इस महीभारतको सहजमें ही समभासकता है ॥ ३=३ ॥ इति द्वितीय श्राच्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ ॥

-0.45 NOVOKE

के साथ कुरहेवमें बहुत सत्यमें होसकोहा है यहका अनुष्ठान कर रहा था. उसके मृतसेन, रत्रसेन और भी जेन नामवाले तीन भाई थे, वह भी उस बामें देटे थे, उस समय उनसे समीप सरमाका पुत्र (इस नामवालो देवनाओं को कुसीका पुत्र सारमेय) आया॥ १ ॥ राजा अक्रोत्तयसे भारपीते उस कुसेनों प्रमुमिमें आयाह आ देखकर मारा तय वह रोता २ अपनो माताके पास गया॥ २ ॥ माताने उसको अक्र समास रोतेहुत देखकर नहां, कि-बेटा ! क्यों रोता है ? तुस्ने किसने मारा है ? ॥ ३ ॥ माताके वृक्षतेसे उसने उसर दिया. कि-राजा जनमे-जयके आइसीने सुक्ते मारा है ॥ १॥ । उसकीमाताने कहा, कि-सुने प्रकट

डप्रश्रद्यांते कहा कि-राजा परीक्तिका पुत्र जनमेजय अपने भाइयों

में उनका कोई प्रावराध किया होगा, इसकारण ही उन्होंने तुमें मारा होता ॥ ५ ॥ उसरे उसर दिया. कि-मेंने उनका कुछ भी घपराध नहीं किया था, केंने उनके उसके हिका भी नहीं देवा था और उसको चाटा भी नहीं था ॥ ६ ॥ यह सुनकर पुत्रके दुःखसे वड़ी दुःखित हुई उसकी माता उरमा, अधिक समय तक होनेवाले उस यहमें भाइयों के लाथ अनुष्ठानमें वेठेहुए राजा जनमेजयके पास गई श्रीर क्रोधमें अरकर उनसे कहने दावी, कि-हस मेरे पुत्रने तुम्हारा हुछ भी श्रापराध

सरकर उनस कहत लगा, गान्यसम्बद्धन पुरुद्दा शुश्रुमा अस्पत्त नहीं कियाथा, इसने हिंदिको नहीं चाटा, उधरको हिंप् पर्यन्त नहीं डाही, फिर नुसने इसको को मारा ?॥ ७॥ =॥ यह चात सुनकर

(⊊ల मिस्तोऽनपकारी हस्माददृष्ट्रत्वां भयमागमिष्यतीति ॥ १ ॥ जन-मेजन प्रमुक्तो देवशुन्या सरमया भृशं संभ्रान्तो विषयण्छासीत्॥१०॥ स तस्मिन् सप्रे समाप्ते हास्तिनपुरं प्रत्येत्य पुरोहितमनुरूपमन्य-ष्टमानः परं यत्नमकरोत यो मे पापकृत्यां शमयेदिति ॥ ११॥ स कदाचिन्मगयां गतः पारीक्षितो जनमेजयः फर्स्मिखत् स्वधिपये छा-असमपर्यत् ॥ १२ ॥ तत्र फक्षिडपिरासाञ्चक्रे श्रुतथवा नाम तस्य तप-रवभिरतः पुत्र ह्यास्ते स्रोमश्रवा नाम ॥ १३ ॥ तस्य तं पुत्रमभिगभ्य जनमेजदः पारीचितः पौरोहित्याय घवे ॥ १४ ॥ स नमस्कृत्य नम्दि-गुवाच भगवन्तयं तव पुत्रो मम पुरोहितोऽस्त्विति ॥ १५ ॥ स एव-मत्ताः प्रत्यदाच जनमेजयं भो जनमेजय पुत्रोऽयं मम सर्पाञ्जातो म-हातपर्वा स्वाध्यायसम्बन्नो मत्तपोबीर्यसम्भूतो मन्द्रकपीतवत्या-रतस्याः द्वांती जातः ॥ १६ ॥ समधींऽयं भवतः सर्वाः पापर्वत्याः शम-वितुसन्तरेणु सहादेवकृत्याम्॥ १७ ॥ श्रस्यत्वेकम्पाशुवनं यदेनं कश्चि-वह कुछ भी नहीं बोले, तब तो सरमा फहने लगी, फि-मेरे निरप-राध पुत्रको जुमने मारा है तो जान्नो तुम्हारे ऊपर कोई धनर्कित विपत्ति ब्रावैगी ॥ ६ ॥ इसप्रकार दिव्य कृती सरमाके शाप देने पर राजा जनमेजय चिन्तामें पड़कर बढ़ा दुःखी एथा॥१०॥ उस यस के समाप्त होनेपर घार हस्तिनापुर में श्राया श्रीर उस शापका प्राय-क्षित्त कराकर वल, श्रायु तथा प्राणीका नाश करनेवाली कृत्याको शान्त करके मुक्ते कोई आपत्तिसे सुक्तकरदेय, ऐसं योग्य पुरोहितको पानेकी इच्छासं यत्न करनेलगा ॥ ११ ॥ उस परीचितके पत्र राजा जनमे-जयने एक दिन शिकार में जाकर किसी अपनेही प्रदेशमें एक आध्रम देखा ॥ १२ ॥ उस बाधम में एक श्रुनश्रवा नाम वाले ऋषि रहते थे, उनका एक सोमधवानामक पुत्र था, जो निरन्तर तपस्या में ही लगा रहताथा॥१३॥ उस ऋषिकमारको श्रवना परोहित बनाने की इच्छाबाले परीचित के पुत्र राजा जनमेजय ने ऋषिके पास जाकर प्रणाम किया श्रीर इसप्रकार कहने लगे. कि-हे भगवन् ! घापके यह पुत्र मेरे पुरोहित बनजायँ, पेसी कृपा करिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ राजा जन-में जयके इसप्रकार कहने पर ऋषिने जनमेजयको उत्तर दिया, कि— यह मेरा पुत्र वड़ा तपस्वी है, निरन्तर चेदका स्वाध्याय किया करता है और तपके बीर्य से पुष्ट हुआ है। एक समय एक सर्पिणीने मेरे वीर्यको पीलिया था, उसके ही पेटसे यह उत्पन्न हम्रा है ॥ १६ ॥ यह एक महादेव के अपराधने प्राप्त हुए शापको छोड़कर अन्य सकल (७४) # महाभारत श्रादिपर्व # [तींसरा दृशाक्षणः कञ्चित्रधेमभियाचेचं तस्मै द्यादयं यचेतदुत्सहसे ततो नयस्वैनमिति ॥ १८ ॥ तेनेवमुक्को जनमेजयस्तं मर्ग्युवाचं भगवंस्त- चया भविष्यतिशि ॥ १८ ॥ स त पुरोहितप्रपादायोपाचुनो आतृष्ठः वाच मर्यायं वृत उपाच्यायो यवयं स्र्याचत् कार्य्यमिविचारपद्गिर्भवः द्विरिति तेनेवमुक्का आतरस्तस्य तथा चक्तुः । स तथा आतृत् सिन्दश्य तज्ञशिलाम् प्रत्यभित्रतस्य तथा चक्तुः । स तथा आतृत् सिन्दश्य तज्ञशिलाम् प्रत्यभित्रतस्य तथा चक्तुः । स तथा आतृत् सिन्दश्य तज्ञशिलाम् प्रत्यभित्रतस्य तथा चक्तुः । स तथा आतृत् सिन्दश्य तज्ञशिलाम् प्रत्यभित्रतस्य तथा चक्तुः । स तथा आतृत् सिन्दश्य तज्ञशिवेद्यशिति ॥ २१ ॥ मार्योदस्तस्य शिष्याख्यायं वस्तुः प्रयापामास्य पाञ्चात्यं भन्दाः चर्मात्यात्वात्यं भन्दाः वस्तुः प्रत्यमार्वी पाञ्चात्यं भन्दाः स्तिष्ट प्रत्यमार्वी पाञ्चात्यस्य प्रत्यमार्वी स्तिष्ट प्रत्यमार्वी । १३ ॥ स तथा स्तिष्ट स्तिष्ट प्रत्यम्भिति ॥ १३ ॥ स तथा स्तिष्ट स्तिष्ट प्रत्यमार्वी । १३ ॥ स तथा स्तिष्ट स्तिष्ट प्रत्यमार्वी । १३ ॥ स तथा स्तिष्ट स्तिष्ट प्रत्यमार्वी । १३ ॥ स तथा स्तिष्ट स्तिष्य स्तिष्ट स्तिष्य स्तिष्ट स्तिष्य स्तिष्ट स्तिष्य स्तिष्ट स्तिष्ट स्तिष्ट स्तिष्ट स्तिष्ट स्तिष्ट स्तिष्ट स्तिष्य

ब्राहिणिः पाञ्चालयस्तव गत्वा तत् केदारखण्डं वर्द्धं नाशकत् स क्लिश्यमानोऽपश्यदुपायं भवत्वेवं करिष्यामीति ॥ २३ ॥ स तत्र एक गृद् नियम है, कि-कोई भी बाह्मण इसके पास आकर किसी वस्तुकी याचना करें तो यह उसको वही देता है, यदि तुम इसके इस बतको परा करने का साहस रखते होत्रो तो तुम भलेही इसको लिवाजाश्रो ॥ १= ॥ श्रतश्रवाकी इस वातको सनकर जनमेजयने उत्तर दिया कि-महाराज । आपने जो ब्राह्म दी है, मैं ऐसाही करने की उद्यत हूँ, ॥ १८ ॥ तदनन्तर जनमेजयने उस मुनिक्रमारको अपना पुरोहित बनालिया और उनको साथ लेकर अपनी राजधानीमें आये. श्रीर श्रपने भाइयों से कहा कि-इन मुनिक्कमारको मैंने श्रपना परोहित बनायाहै, इसकारण आजसे यह जो कुछ भी कहें, तम विना विचारे तैसाही करना, ऐसा कहनेपर जनमेजयके भाई अपने माई की आज्ञा के अनुसार वर्त्ताव करनेलगे, राजा जनमेजय अपने भाइयोंको इस प्रकार सुचना देकर तत्त्रशिला नगरी पर चढ़ाई करने को गए और उस देश को अपने वशमें करितया॥ २०॥ उस समय एक स्थान पर आयोदधौस्य नामक एक ऋषि रहते थे, उन ऋषिके यहाँ आहिता. उपमन्य और वेद नामवाले तीन शिष्य पढ़ने को रहते थे॥ २१॥ एक समय ऋषिने अपने शिष्यों में से पांचाल देशमें रहनेवाले आरुणि

नामक शिष्य को श्रपने पास बुलाकर श्राह्या दी,कि—चेटा! तुम खेत पे जाकर क्यारियों की मेंड वाँधदो ॥ २२ ॥ पांचालदेशवासी श्राहित्य गुरुकी श्राह्यानुसार खेतपर गया तहीं वहुतक्षा क्लेश उठाकर भी क्यारियों की मेंड न बनासका श्रोर मनमें वड़ा दुःखी हुआ, परन्तु श्रानमें उसको पक उपाय सुक्का श्रोर मनमें कहने लगा कि जीक है, लाश्रो ऐसाही कहें ॥ २३ ॥ ऐसा मनही मनमें कहकर जहाँ पानी बहकर निकला जाता था तहाँ गया श्रीर जल निकलने के स्थान पर

श्रध्याय र भाषानुवाद सहित # (54) संविवेश केदारखरुडे शयाने च तथा तस्मिस्तदुदकं तस्थौ ॥ २४ ॥ ततः कदाचिद्रपाध्याय श्रायोदो घौम्यः शिष्यानपृच्छत् क श्रारुणिः पाञ्चाल्यो गत इति ॥ २५ ॥ ते तं प्रत्यृ चुर्गगवंस्त्वयैव प्रेपितो गच्छ केदारखर्डं षधानेति । स प्यमुक्तस्तान् शिष्यान् प्रन्युवाच तस्मा-त्तव सर्वे गच्छामो यव स गन इति ॥ २६ ॥ स तव गन्वा नस्यादः-नाय शब्दञ्चकार भी श्रारुले पाञ्चालय कासि चर्त्सहीति ॥ २७॥ स तच्छु:बारुणिरुपाध्यायबाययं तस्मात् फेदारव्यव्डात् सहसोत्थाय तसुपाध्यायसुपतस्थे ॥ २= ॥ प्रोचाच चैनमयमस्म्यत्र केदारखगडे निःसरमाणुमुदकमबारणीयं संरोद्धं संविष्टो भगवच्छव्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्थ्य केंद्रारम्बएडं भवन्तप्रुपस्थितः ॥ २६ ॥ तद्भिवारये भगवन्तमाहापयत भवान् कमर्थं करवाणीति ॥ ३० ॥ स एवमुक्त डपाध्यायः प्रत्युवाच यस्माञ्चवान् केदारखराडं विदार्ग्यंत्थितस्तस्मा द्वहालक एव नाम्ना भवान् भविष्यतीत्युपाध्यायेनानुगृहीतः ॥ ३१ ॥ यस्माच्च त्वया महत्त्वनमन्धितं तस्माच्छेयोऽवाप्स्यसि। सर्वे एव ते श्रापही लंबा २ लेटरहा, ऐसा करने पर प्यारी में से जो पानी निक-लाजाता था वह रुक्तगया॥ २४॥ तदनन्तर कुछ समय वीतने पर उपाध्याय आयोदधौम्यने अपने इसरे दोनो शिष्योंसे वृक्ता, कि-पांचालदेश का आविष कहाँगया है ॥ २५ ॥ शिष्यीने उत्तर दिया कि-महाराज ! आपने ही तो उसको खेतमें पानीकी प्यारियें वाथने को भेजा है, यह वात याद ब्रातेही धीम्य ऋषिने शिष्यींसे कहा, कि-जहाँ श्राकिए गया है, चलो तहाँ ही हम भी चलैं ॥ २६ ॥ तदनन्तर धीम्यऋषिने खेतपर जाकर उसको पुकारकर बुलाया कि–क्रो पांचाल देशवासी श्राविष ! तू कहाँ है, यहाँ श्रा, श्राविष गुरुके बुलानेका शब्द सनते ही, जिस प्यारीकी मेंडपर लेटा ग्रुगा था तहाँसे चड़ाहो गुरु के सामने श्राकर उपस्थित होगया ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीर उनको प्रणाम करके कहने लगा, कि-महाराज !यह हूँ, पवारी में से पानी बहाजाता था, किसी प्रकार रुक नहींसका तय मैं छाप ही उस बहुतेहुए पानीको रोकनेके लिये, प्यारीमें श्रांडा २ लेटगया था, इतनेहीमें श्रापका शब्द सुननेके साथ ही क्यारीको तोड पानीको चहताहुआ छोडकर यहां श्रापके पास श्रायाहूँ श्रीर श्रापको प्रणाम करता हूँ, कहिये श्रव श्राप की किस श्राद्माका पालन कहाँ ॥ २६ ॥ ३० ॥ शाविश के वचनको सु-नकर गुरुने उससे कहा, कि-त ज्यारीको तोडकर यहां श्राया है इसकारण श्राजसे तू उदालक कहावेगा तथा ऋषिने उसके ऊपर

कृपा करके यह भी कहा कि—हे वेटा श्राक्ति ! तूने सेरी श्राज्ञाका

महाभारत श्रादिपर्व # वेदाः प्रतिसास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति ॥ ३२ ॥ स एवसुक्त रुपाध्वायेनेष्टं देशं जगाम । अथापरः शिष्यस्तस्यैवायोदधौम्यस्योपम-न्युर्नाम ॥ ३३ ॥ तं चोपाध्यायः प्रेषयामास वत्सोपमन्यो गा रह्नस्वेति ॥ ३४ ॥ स उपाध्याययचनादरसद्भाः सचाहनि गा रिहारवा दिवसस्ये गुरुगृहमागम्योपाष्यायस्याप्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे॥३५॥ तम्पाध्यायः पीवानमपश्यदुवाच चैनं वत्सोपमन्यो केन वृत्ति करुपयसि पीवानसि हदमिति ॥ ३६ ॥ स उपाध्यायं प्रत्युवाच भो भैद्येण वृत्ति करूपयामीति तमुपाध्यायः प्रत्युवाच ॥ ३७ ॥ मञ्यनिवेद्य भैद्यं नोपयोक्तव्यमिति । ल तथेत्युक्तो भैद्यं चरित्वोपाध्यायाय न्यवेद्यत्॥३=॥स तस्माद्पा-ध्यायः सर्वमेव भैक्थमगृहात्। सतथेत्युक्तः पुनररक्षद्राः शहनि रक्तित्वा निशामखे गुरुकुत्तमागम्य गुरोरव्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे॥ ३६॥ तमपा-ध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्टोवाच वत्सोपमन्यो सर्वमशेषतस्ते अन्यं युद्धामि क्षेनेदानी वृत्ति कल्पयसीति ॥४० ॥ स पद्ममुक्त उपाध्यायं प्रत्यु-पुरा २ पालन किया है, इससे तेरा कल्यांग होगा, इतना ही नहीं, किंतु जा सब वेद तथा धर्मशास्त्रके ग्रन्थ तुसै विना पढे ही श्राजा-येंगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इसप्रकार गुरुसे घरदान पाकर पांचालदेशवासी श्रारुणि अपने देशको चलागया, श्रायोद धौम्य श्रुविके दसरे शिष्य का नाम खपमन्य था ॥ ३३ ॥ उसशिष्यको बुलाकर एक समय गुरु ने कहा, कि-हे बेटा उपमन्य ! तु गौपं चरानेको जा ॥ ३४ ॥ तहन-न्तर वह गुरुकी श्राज्ञानुसार गौएं बरामेलगा, दिनभुर गीएं चरायी और सायंकालके समय गौद्योंको आश्रममें लाकर गुरुके पास पहुँचा श्रीर उनको प्रणाम करकै खड़ा होगया ॥ ३५ ॥ उपाध्यायने उसको ष्ट्रष्ट पुष्ट देखकर बुक्ता कि—्रा उपमन्यु ! तु क्या ज्ञाता है १ कि— जिससे तू पेसा अत्यन्त हुए पुष्ट होरहा है ॥ ३६ ॥ उसने उपाध्याय को उत्तर दिया कि-महाराज ! मैं केवल भिन्ना मांगकर (लाता है) उसले ही अपना निर्वाह करता हूँ, उपाध्यायने उस से कहा कि-॥ ३७ ॥ आजसे मांगकर लाईहुई भिन्ना मुभे दिखाए विना मत साना ऐसा कहदेने पर वह शिष्य मांगकर लाई हुई भिन्ना प्रतिदिन उपा ध्यायको निवेदन करनेलगा, ॥ ३= ॥ और उपाध्याय उसकी लाई, हुई सब भिन्नाको आप लेनेलगे। एक समय किसी दिन गौएं चरा-कर आया और सायंकालके समय गुरुके आश्रममें उनके पास जा नमस्कारे करके खड़ा रहा, उसको हुए पुष्ट देखकर बन्होंने फिर कहा, कि-घेटा उपमन्यू ! मैं तेरी सब भिन्ना लेलेता हूँ, इस दशामें त् श्रपना निर्वाह किस श्राधार पर करता है ? ॥ ३६` ॥ ४० ॥ ऐसा

वास भगवते निवेद्य पूर्वभणरं स्वरामि तेन पूर्ति करूपयामीति तमुगा थ्यायः प्रत्युवासा। ११॥ नेपान्याच्या गुरुबुत्तिरुस्येपामिष भैदयोप अधिनां इत्युपरोधं करोपि इत्येपं वर्तामाने जुञ्चेषा अधिनां हत्युपरोधं करोपि इत्येपं वर्तामाने जुञ्चेषा अधिनां स्वर्त्युक्ता ना प्रत्युक्त रिक्तिसा स्वर्त्युक्ता ना प्रत्युक्त रिक्तिसा स्वर्त्युक्ता ना प्रत्युक्त । १४॥ तम्युपर्याय स्वर्त्या प्रत्या स्वर्त्य । १४॥ ॥ इत्येपं प्रत्यामान्य्याया जिल्लेष भूष्यं केन पूर्वि कर्व्यव्यानि ॥ १४॥ स्वर्त्यक्तमुगाच्यायं प्रयुवास मो प्रत्या । यद्या स्वर्त्य । प्रत्या । यद्या प्रत्या स्वर्था । प्रदेश । स्वर्त्य । व्यव्यक्तिस्व । १४॥ ॥ तस्वर्त्य विवर्ष्य प्रत्या । प्रदेश । स्वर्त्य । व्यव्यक्ति । विवर्ष्य । प्रत्या च्या स्वर्ष्य । प्रत्या स्वर्ष्य । प्रत्या च्या स्वर्ष्य । प्रत्या स्वर्ष्य । प्रत्या च्या स्वर्ष्य । प्रत्या स्वर्ष्य । प्रत्या स्वर्ष्य । प्रत्या च्या स्वर्ष्य । प्रत्या स्वर्ष्य । प्रत्या च्या स्वर्ष्य । प्रत्या स्वर्ष । प्रत्या स्वर्ण । प्रत्या । प्रत्य । प्रत्या । प्रत्य । प्रत्या । प्रत्या । प्रत्या । प्रत्य । प्रत्य । प्रत्या । प्रत्या । प्रत्या । प्रत्य ।

तमुपाण्यायः पोवानमेव दृष्ट्रोवाच वस्सोपमन्यो भेषयं नाश्नास्ति नवाः

क्रुक्षने पर धपमन्युने उपाध्यायको उत्तर दिया कि—महाराज ! मैं

पिहले मांगकर लाई हुई भिद्या ध्यापको निवेदन फरदेता हुँ छोर दूसरी

यार किर भिद्या मांगकर लाता हुँ. इससे ध्यपना निर्वाह फरताहुँ, यहः

वात सुनकर उपाध्यायने उससे फहा. कि— ॥ धरे ॥ ऐसा चर्चाव

करना डीक नहीं है, प्रवेकि—दो समय भिद्या मांगकरत् दूसरे भिद्या

मांगनेवाले विधार्थियों के निर्वाहमें याधा डालता है, इससे प्रतीत है

होता है, कि—तृलोभी है, अब आगे से ऐसा मत करना॥ ४२॥ उप
मन्युने उपाध्यायकी इस आहाको मस्तक पर चढ़ाकर फहा, कि—

यत्र श्वामें से ऐसा नहीं कर्तना, ऐसा कहकर वह किर गीए चराने

क काममें लगगया श्रीर गीप चराकर सायंकालके समय उपाध्यायके शास्त्रममें श्रा उनके सामने खड़ा होगया और मख़ाम किया॥ ४३॥ तक भी हृष्ट युक्त कर उपाध्यायने उससे किर कहा, कि—ऐ बेटा उपाय-यु ! मैं तैरी सब मिला लेलेता हैं श्रीर अब त दूसरी बार भी मिला नहीं मांगता है, तो भी त् शरीरसे वड़ा हुए पुष्ट रहता है, श्रतः यता कि—तू किस श्राधार पर निवाह रखता है, इसप्रकार दूका तब उपाम्युने उपाध्यायको उसर दिया कि—हे महाराज! मैं इन गी श्रांक दूध पीकर निवाह करलेता है, उपाध्यायने कहा, कि—छरे मेरी श्राहाके विना तु गी श्रांका हुध पीलेता है, वह अन्यायकरता है,

ितीसरा (७=) न्यचरिस पयो न पिवसि पीवानिस भृशं केनेदानी वृत्ति करपयसीति ॥ ४७ ॥ स प्वमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाचं भोः फ्रेनं पिवामियभिमे वत्सा मातुणां स्तनाज् पिचन्त उद्गिरन्ति ॥ ४८ ॥ तमुपाध्यायः प्रत्युवाच पते त्वदंचुकरुपया गुणवन्तो चत्साः प्रभृततरं फेनम्द्रिरन्ति तदेपामपिच-त्सानां चृत्युपरोधं करोष्येचं वर्त्तमानः फेनमपि भवान पातुर्महतीति स तथेति प्रतिशुत्य पुनररज्ञद्वाः ॥ ४६ ॥ तथा प्रतिपिद्धो भैदयं नाश्नाति न चान्यखरति पर्यो न पिवति फेनं नोषयुङ्केस कदाचिदरएये जुधा-न्तींऽर्कपत्राएयभक्तयत्॥ ५०॥ स तैरर्कपत्रैभीक्ततेः चारतिककटक्ती-स्तीइण्विपाकैश्चक्षप्रपहतोऽन्धो वभृव ततः सोऽन्धोऽपि चंकम्यमाणः कपे पपात॥५१॥ श्रथं तस्मिन्ननागच्छति सुर्ये चास्ताचलायलभ्यिन उपाध्यायः शिष्यानवोचत् नायात्युपमन्युः त ऊचुरेनं गतो गा रिचत् मिति तानाह उपाध्यायः ॥ ५२ ॥ मयोपमन्युः सर्वतः प्रतिषिद्धः स नि-वेटा उपमन्यु ! तु भिन्ना मांगकर लाता है उसको खाता नहीं, दूसरी वार भिन्ना मांगकर लाता नहीं, और गौओंका दूध भी पीता नहीं है, तो भी तु वड़ा हुए पुष्ट होरहा है, सो वता कि-अव तु किस आधार पराश्रपना निर्वाह करता है, यह सुनकर उपमन्यने उत्तर दिया कि— महाराज ! गौर्ए वछुड़ोंको दूध पिलाती हैं, उस समय जो भाग गिर-पंडते हैं उनको खाकर ही मैं अपना निर्वाह कर लेता हूँ॥ ४०॥ ४८॥ उपाध्यायने कहा,कि-स्रोः ! यह शान्त स्वभाव वसुड़े तेरे ऊपर दया करकै श्रधिक भाग गिरादेते हैं, श्रतः इसप्रकार श्राजीविका करनेसे तु उनकी आजीविका में वाधा डालता है, इसकारण तू उन भागों को खाकर भी निर्वाह मत किया कर, श्रच्छा श्रय ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा कहकर उपमन्य फिर गौएं चरानेलगा॥४६॥इस प्रकार गुरुके निपेध करदेने पर उसने भिज्ञासे निर्वाह करना छोड़दिया था, दूसरीवार । भज्ञा मांगना भी छोड़दी थी, दूध पीना वंद कर दिया था और अब भागोंसे निवांत

करना भी छोड़ दिया, केवल उपवास करने लगा, एक दिन उसने दनहें भूखसे घपड़ाकर आकरे पणे आलिये ॥ ५० ॥ खारे , तीखे, अर्डुप, रुखे पपड़े में जलन डालनेवाले आकरे पणे खानेसे उस ही ऑड के फूटगई छोर वह विचारा छंगा होगया, तथापि जंगल में गुरुकी गीओंको चराता हुआ फिरने लगा, एक दिन चनमें गीओंको चराते हुआ फिरने लगा, एक दिन चनमें गीओंको चराते में फिरते २ एक छुप में जापड़ा ॥ ५१ ॥ खुर्यास्त होजाने पर भी उपमन्यु लीटकर घर नहीं छावा, तव आयोदचीम्य उपाध्यायने यूसरे प्रिच्यसे बुमा, कि — अरे आज उपमन्यु क्यों नहीं श्रांवााशिष्यते उसरे दिवस कि — महाराज ! आपकी आडासे वह गीए चराने वनमें गयो है, उपाध्यायने उस शिष्यसे कहा, कि—॥ ५२ ॥ मैंने उपमन्य गयो है, उपाध्यायने उस शिष्यसे कहा, कि—॥ ५२॥ मैंने उपमन्य

श्रध्याय:]

का भोजन सब प्रकार से यंद्र करविया है, इसकारण उसको व्यवण्य ही क्रोध श्राया होगा, इसी कारण धाज वह इतना समय होजाने पर भी नहां श्राया है, इसकारण चलो हम उसको ढुंडलायें, इसप्रकार शिष्य सहित धौम्यऋषि वनमें जाकर उपमन्य को एकारने लगे कि-श्ररे छपमन्य ! ह्यो उपमन्य ! त कहाँ है ? वेटा यहाँ ह्या ॥ ५३ ॥ उपाध्यायके पुकारने को सनकर कुए में से ही उपमन्यु ऊँचे स्वर से वोला. कि-हे गुरु महाराज ! में इस छएमें गिरगया है. उपाध्यायने उससे वृक्ता, कि-बेटा ! तू फ़ुपमें कैसे गिरगया ? उसने उत्तर दिया

कि—महाराज श्राकके पत्ते खाने ले में श्रंथा होगया है, इसकारण किरते २ क़पमें जापडा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यह ख़नकर ग्रुवने कहा, कि-वेटा ! तो तु देवलोक के वैद्य श्रश्विनीक मारोंकी स्तृति कर वह सभी नेत्रदॅगे, इसवकार गुरुके कहने से उपमन्य, ऋग्वेदकी ऋचाणों से देवता अध्वनीक्रमारों की स्तिति करनेलगा ॥ ५६॥ हे अधिवनीक्रमारों! तुम चुष्टिसे पहिले विद्यमान थे, तुमही सवाल भूतों में प्रधान-हिरएय गर्भरूप से उत्पन्न हुए हो, तमही विचित्र प्रपंचरूप से प्रकट होतेहो, देश काल श्रीर श्रवस्थाके द्वारी तुम्हारा परिमाण नहीं किया जासकता, में वाणी श्रीर तपस्याके द्वारा तुम्है श्रात्मस्वरूपसे पानेकी रच्छा रखता। हूँ, तुमही माया श्रीर मायारुढ़ चैतन्यरूप से प्रकाशित होते हो,

तुम शरीररूपीं यूक्तपर पन्नीरूपसे रहते हो, तुम प्रकृतिमें रहनेवाली विद्येपशक्ति के द्वारा सकल जगत्को रचते हो, सत्त्व-रज और तमी-गुणसे रहित हो, मन तथा वाणीके श्रमोचर हो ॥ ५७ ॥ तुम ज्योति-मंय, सहरहित, परब्रह्मक्रप, जगत्के लय और अधिष्ठानक्रप हो, अम श्रीर जयसे रहित हो, तम ख़न्दर नासिकावाले श्रर्थात शारीरिक धर्मवाले हो तो भी फालको जीतते हो, श्रीर तुम सूर्यकी सृष्टि करके दिन और रात्रिक्रपी स्वेत काले तन्तुर्ओं से संवत्सरक्रपी वहाको नुनते

(50) # महाभारत आदिपर्व # तीसरा नासत्यदस्रो सनसौ वैजयन्तौ । शुक्लं वयन्तौ तरसा सर्वेमावधिन्यः यन्तावसितं विवस्वतः ॥ ५८ ॥ यस्तो सुपर्णस्य चलेन वर्त्तिकामसञ्च तामश्विनौ सौमगाय । तावत् सुवृत्तावनमन्तमाययावसत्तमा गा श्ररुणा उदाऽवहन् ॥ ५६ ॥ पष्टिश्च गावित्रशताश्च धेनव पकं वत्सं स्वते तं दहन्ति । नाना गोष्ठा विहिता एकदोहनास्तावश्विनौ दहतो धर्ममुक्यम् ॥ ६० ॥एकां नाभि सप्तशता अराः श्रिता प्रधिप्वन्या विश-तिरर्पिता श्रराः श्रनेमिचकं परिवर्त्ततेऽजरं मायाश्विनी समनक्ति चर्पणी ॥६१॥एकं चकं वर्त्तते द्वादशारं पर्गामिमेकात्तम्तस्य धारगम् । यस्मि-न्देवा अधिविश्वे विषकास्तागश्विनौ मञ्चतो मा विषीद्तम् ॥ ६२ ॥ अश्वनाविन्द्रममतं वृत्तभूयौ तिरोधत्तामश्चिनौ दासपत्नी । हित्वा हो. और तम कर्मफल भोगनेके लिये लोकोंको मार्ग दिखाते हो ॥५०॥ जीवरूपी पत्तिगीको परमात्माकी कालशक्ति ने प्रसरक्ला है, इसका-रण उसके मोज्ञरूपी महासौभाग्य के लिये तुम श्रश्चिमीकुमारकप से प्रकट होतेहो. राग आदि विषयोंके वशमें हुए अत्यन्त मृढ पुरुष जव तक इन्द्रियों के अधान होकर वँधे रहते हैं तवतक वह सकत दोपों से रहित श्रोपको देहधारी मानते हैं श्रीर तवतक ही वह जन्म मरणको पाया करते हैं, इसकारण मुक्ति पानेका उपाय उत्पत्ति श्रादिका विजय है ॥ ५६ ॥ दिन-रातरूपी तीनसौ साठ गौएं सबको उत्पन्न करनेवाले तथा सबका संहार करनेवाले एक संवत्सरकर्पी वछड़े को उत्पन्न करती हैं, तस्वके जिल्लासु पुरुष जिस वछड़ेके द्वारा तस्वलानरूपी दधको दुहते हैं, हे अश्विनीकुमारों ! तुम उसही धछडेको उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ६० ॥ कालरूप चक्रकी संवत्सररूप नाभि है. तिस नाभिके आधारसे रात और दिन मिलकर सात सौ वीस आरे लगे-हुए हैं तथा उस कालचक्रमें वारह महीनेरूप वारह प्रधि शिरोंको थामनेवाले काठ] लगेहुए हैं, यह नेम रहित कालचक निरन्तर घमा करता है, यह अविनाशी श्रीर मायामय है, इसके प्रवर्त्तक तम ही हो, यह चक्र इस लोक और स्वर्गलोक दोनोका संहार करता है अर्थात दोनो लोकों के भोग नाशवान हैं. इस कारण उनकी चाहना कदापि नहीं करनी चाहिये॥ ६१॥ मेप आदि राशिकप बारह आरे, ऋतुक्षपी छःनाभि, संवत्सरक्षपी एक आँख तथा कर्मका फलरूपी एक आधार वाला एक कालचक है, इस में कालकी अधिष्ठांत्री देवीभी रहती है, उस कालचकर्मे से तुम मुक्ते ब्रुटकारा दो, हम जन्म श्रादि के दुःखसे परम दुःखी हैं ॥ ६२ ॥ तुम ही विषय श्रादि प्रपञ्चरूप हो, तुमही कर्मके फलरूप हो, तुम ही.

श भाषानुवाद सहित * श्रध्याय े (=१) गिरिमिश्वनी गामुदा चरन्तौ तहिएमहा प्रस्थिती वलस्य ॥६३॥ युवां दिशो जनयथो दशात्रे समानं मुध्नि रथयातं वियन्ति । तासां यातम षयोऽनुप्रयान्ति देवा मनुष्याः द्वितिमाचरन्ति ॥ ६४ ॥ युवां वर्णान्वि-कुरुथो विश्वरूपांस्तेऽधिद्मिपन्ते भुवनानि विश्वा।तेभानवोऽप्यनुस्-ताध्वरन्ति देवा मनुष्याः ज्ञितिमाचरन्ति ॥ ६५ ॥ तौ नासत्यावरिवनौ वां महेऽहं स्त्रजं च यां विभयः पुष्करस्य । तो नासत्यावमृतावृतावृधा चुते देवास्तत् प्रपदे न सुते ॥ ६६ ॥ सुखेन गर्भ लभेता युवानी गतासु-रेतत् प्रपदे न सृते । सद्यो जातो मातरमत्ति गर्भस्तायश्विनौ मुञ्जथा जीवसे गाः॥ ६७ ॥ इत्येवं तेनाभिष्टुतायश्विनायाजग्मतुराहतुर्चेनं प्रीतौ स्व एप तेऽपुपोऽशानैनमिति ॥६=॥ स एयमुक्तः प्रत्युयाच नानृ-श्राकाश श्रादिकी लयके कारणभूत हो, तुमही श्रनादिकाल की श्रवि-चाके होपसे भोगने योग्य दिपयों में इन्द्रियोंका संयोग होनेसे परम हर्षके साथ संसारमें भ्रमण करते हो और परवहा भी तुम ही हो ॥६३ ॥ हे श्रश्विनीकुमारों ! तुमने श्रारंभ में दश दिशा, सूर्य तथा अन्तरिक्तको रचा है, तथा सूर्यकी दिखाई हुई दिशाएं और काल के श्रनुसार भ्रापिगण वेदोक्त कर्म करते हैं तथा देवता श्रीर मनुष्य श्रपने श्रपने श्रधिकार के श्रजुसार पेरवर्योको भोगते हैं ॥६४॥ तमने पञ्चतन्मात्राकी रुष्टिको उत्पन्न करकै उनमें से एकको दूसरेके साथ इफटा करदिया है और उनमें से अनेकों पदार्थ उत्पन्न करे हैं, चौदह भुवन भी उनमें से ही हप हैं, जीव देह, इन्ट्रियें श्रीर बुद्धि नामक विकारोंको प्राप्त होनेके अनन्तर विषयोंको भोगते हैं तथा देवता, मनुष्य श्रीर पश्च श्रादि सब प्राणी इस पृथ्वीका श्राश्रय करके रहते हैं ॥ ६५ ॥ है प्रसिद्ध श्रश्विनीकुमारों ! मैं तुम्हारी पूजी करता हूँ तथा तुम्हारे रचेहुए आनन्दमय आकाशके सब कार्याकी भी मैं पूजा करता हूँ, कर्मोंके फलके विना देवता भी किसी प्रकारका फल नहीं पासकते श्रीर उन कर्मफलोंको उत्पन्न करनेवाले तथा नित्यमुक्त तुम ही हो ॥६६॥ तुम अन्नके द्वारा पिता तथा मातीके मुखसे गर्भ धार कराते हो श्रीर उस श्रन्नका वीर्य विषयेन्द्रियके द्वारा देहमें जाते ही वह फिर जड शरीरका रूप धारण करता है और तत्काल उत्पन्न हम्रा गर्भ [वालक] श्रपनी माताका स्तन पीने लगता है, है श्रश्वि-नीक्समारी । जीवनकी इच्छा करनेवाले मुक्ते मेरे नेत्र देकर श्रंधेपनसे छुटाइये ॥ ६७ ॥ इसप्रकार उसके स्तुति करनेसे अश्विनीकुमार तहां

आये और उपमन्युसे कहा, कि-हम तेरी स्तुति से प्रसन्न हुए हैं

तपूर्वमृचतुर्भगवन्तौ । न त्वहमेतमपूपमुपयोक्तुमुरसहे गुरवेऽनिवेद्येति ॥ ६६॥ ततस्तमश्चितावृचत्ः स्रावाभ्यां पुरस्ताद्भवत उपाध्यायेनैवमेवा भिष्टताभ्यामपूरो दत्त उपयुक्तः स तेनानिवेद गुरवे त्वमपि अधैवं क्ररुष्ट यथाकृतमुपाध्यायेनेति॥ ७०॥ स एवम्कः प्रत्युवाच एतत् प्रत्यनुत्रयं भवन्ताविश्वनौ नोत्सहेऽहमनिवेद्य गुरचेऽपूपमेनमुपयोक्तु मिति ॥ ७१ ॥ तमश्विनाबाहतः प्रीतौ स्वस्तवानया गुरुभक्यत उपा-ध्यायस्य ते कार्णायसा दन्ता भवतोऽपि हिरएमया भविष्यन्ति चच-ष्मांख मदिष्यसि श्रेयथावाण्स्यसीति ॥७२॥ स प्यमुक्तोऽश्विभ्यां लब्ध चनुरुपाध्यायसकारामानम्योपाध्यायमभ्य**वादयत्॥७३॥ऋाचस**से स ल कास्य प्रीतिमान्यभृव प्राह चैनं यथाश्विनावाहत्स्तथा खं श्रेयोऽवा पर्यक्तित ॥ ७४ ॥ लेवें च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्रा-्रीति पदा तस्यावि परीच्चोपमन्योः॥ ७५॥ त्रथापरः शिष्यस्तस्यैवा छहिलनी इसारों के ऐसा कहने पर उपमन्युने उत्तर दिया. कि-स्वित्नोकुनारों | झाप झसत्य नहीं बोलते हैं, परन्तु यह पुर में अपने गुरुको निर्देदन किये विना नहीं खाना चाहतो ॥ ६६ ॥ उपमन्युकी यह बात सुनकर छहिदनीकुमारोंने कहा, कि-पहिले तेरे गुरुने इसीप-कार हमारी स्तृति करी थी और उस समय हमने उनको भी यही पुर हिये थे, जिनको कि-उन्होंने अपने गुरुको अर्पण किये विना लालियाधा. रसकारण जैसा तेरे गुरुने किया था तैसा ही तुकर ॥७०॥ शरिवनी सुमारोंके ऐसे कहनेको खुनकर उपमन्युने उनसे कहा, कि-हे ए विक्तीकुमारों ! में छापसे वितय करताहूँ, कि-श्रपने गुरुको निवे-वृत किये विता इत पुत्रोंको नहां जाना चाहता॥ अर ॥ इस पर छहिनती छुमारीने कहा, कि-तेरी पेसी गुरुभकिसे हम तेरे अपर परम प्रसन्त हैं, तेरे गुरुके दात कोहेकी समान काले हैं परन्तु तेरे दांत ख़दर्गंदा सतान चमकदार होंगे, हे देटा ! जा तेरी श्रांखें अच्छी हो-जायँगी और तेरा कल्याण होगा॥ ७२॥ अश्विनी कुमारोंके इसप्रकार कहते (बरदात देवें) से उपमन्यु तत्काल समासा होकर देखनेलगा ग्रीर शंपने गुक्के पाल जाकर उनको प्रणाम किया ॥ ७३ ॥ श्रीर उन से सब हुसान्त कहा, कि-किसको सुनकर गुरु वडे प्रसन्त हुए हीर उससे कहा कि-कि अधिवनीकुमारोंने तुमे जैसा वरदान दिया

है उत्तरो अनुसार तेरा कल्याण होगा ॥ ७४ ॥ श्रीर सकल वेद तथा लंदूर्ल धर्मशास्त्र भुभे सर्वदा उपस्थित रहकर प्रकाशित रहेंगे, इस प्रतार उपसन्धुकी पराका पूरी हुई ॥ ७५ ॥ श्रायोद धोम्यके तीसरे शिरप्रका नाम वेद्धा, गुरुने एक दिन उसको श्राका दी कि—वेटा

महाभारत आदिपर्व

तीसरा

अध्याय] # भाषानुवाद सहित # (= 3) चोदधीम्यस्य वेदो नाम तम्पाध्यायः समादिदेश वत्स वेद इहास्यतां तायनमम् गृहे फब्चित्कालं ग्रथ्नपणा च भवितव्यं श्रेयस्ते भविष्यतीति ॥ ७६॥ स तथेत्यक्तवा गुरुकले दीर्घकालं गुरुगश्रपणपरो ऽचसत गीरिय नित्यं गुरुणा धूर्षं नियोज्यमानः शीतोष्णचुत्तुप्णाद्वः खसहः सर्वत्राप्रति-फलस्तस्य महता कालेन गुरुः परितोषं जगाम ॥ ७७॥ तत्परितोषाच श्रेयः सर्वव्रतां चावाप एपा तस्यापि परीक्षा वेदस्य ॥७=॥ रा उपाध्या-येनानुकातः समावृत्तस्नस्माहरुकुक्वासादुगुहाश्रमं प्रत्यपद्यत ॥ ७६॥ तस्यापि स्वगृहे वस्ततस्त्रयः शिष्या वभृषुः संशिष्यात्र किञ्चद्ववाच कमै वा कियतां गुरुष्ठश्रया विति ॥ =० ॥ दुःखाभिशो हि गुरुक्कवासस्य शिष्यान् परिक्लेशेन योजयितुं नेयेष ॥ =१ ॥ श्रथ कर्स्मिश्चित्काले वेदं ब्राह्मणे जनमेजयः पौष्यस्य स्वियावपेत्यवरियत्वोपाच्यायं चक्रतः 🕰 स कदाचिद्याज्यकार्य्येणाभिष्रस्थित उत्तर्नामानं शिप्यं नियोजयामास ॥=३॥ भो यरिकञ्चिदसमदगृहे परिहीयते तदिच्छास्यहमपरिहीयमानं वेद ! तू मेरे घरमें रहकर मुक्त श्रपने गुरुकी सेवा कर इसमें ही तैरा कल्याम होगा ॥ ७६ ॥ इसप्रकार गुरुके कहने पर "बहुत श्रच्छा" फद्दकर वेद, उनकी श्राणानुसार गुरुकुल में रहकर चिरकाल

कहुकर वद, उनकी श्रातानुसार गुरुकुल में रहकर विरक्ताल पर्यन्त गुरुसेया करता रहा, गुरु नित्य थेलकी समान उसको काम धंवेके कुएमें जीतते रहे श्रीर वह उस योभोको श्रपने कन्धे पर लियेहुए, सरदी, गरमी. भूख, प्यास श्रादि दुःखोंको सहता हुआ, सब कामोंको गुरुकी इच्छानुसार करनेलगा, पेसा फरतेर बहुत समय यीत गया, तब गुरु उसके ऊपर प्रसप्त हुए ॥०६॥००॥ गुरुके प्रसन्त होनेसे बेद करवाण श्रीर सर्वक्रतनेको प्रस हुआ, इसमकार चेदची परीक्ता भी पूरीहुई ॥०५॥ तब चेदने गुरुकी श्रातास विद्याभ्यासको समात किया श्रीर गुरुके घरका वास छोड़कर अपने घरको चलागया तथा गृहस्थाश्रममें पड़गया, श्रपने घर रहतेहुए उसके पास भी तीन विद्यार्थी पढ़नेको आये गुरुके घर रहनेके दुःसको जाननेवाले चेदने, उनको किसी समय भी श्रपने घरका काम श्रथवा ग्रस्तेया करनेको

= १ ॥ कुछ समय वीतजाने पर एक दिन जनमेजय श्रीर पीष्य यह दो चित्रय उस वेद नामक ब्राह्मणुके घर श्राये श्रीर उन्हाने वेदको उपाच्याय वनालिया ॥ = २ ॥ एक समय किसी यहाविषयक कामके निमित्त इन वेदको वाँहर जानेका श्रयसर पड़ा उस समय इन्होने श्रपने तीन शिष्पॉमेंसे उत्तक नामक शिष्यको श्रपन सास बुलाकर कहा, कि—॥ = ३ ॥ हे वेटा उत्तक्क ! मेरे घरमें यदि कुछ काम होय

नहीं कहा, क्योंकि-यह शिष्योंको दुःख देना नहीं चाहता था॥ ०६-

[तीसरा # महाभारत आदिपर्व # भवता कियमाणुमिति स एवं प्रतिसन्दिश्योसङ्कं वेदः प्रवासं जगाम =४ म्रथोत्तद्भः शुश्रृपुर्गुरुनियोगमनुतिष्ठमानो गुरुकुले वसतिस्म । स तत्र

वसमान उपाध्यायस्त्रीभिः सहिताभिराहथोक्तः ॥ =५ ॥ उपाध्यायानी ते ऋतुमती उपाध्यायश्च प्रोवितोऽस्या यथायमृतुर्वन्थ्यो न भवति तथा क्रियतामेषा विपीदतीति ॥ =६॥ पवमुक्तस्ताः श्लियः प्रत्युवाच न मया स्त्रींणां वचनादिदमकार्यं करणीयं न हाहमुपाध्यायेन सन्दिष्टोऽकार्य्य मपि त्वया कार्व्यमिति ॥ = ७ ॥ तस्य पुनरुपाध्यायः कालान्तरेण गृह-माजगाम तस्मात् प्रवासात् स तु तद्वृत्तं तस्याशेपमुपत्तभ्य प्रीति-मानभूत् ॥ == ॥ उवांच चैनं वत्सोत्तङ्क किन्ते प्रियं करवाणीति धर्मतो

हि शुश्रुपितोऽस्मि भवता तेन प्रीतिः परस्परेण नौ सम्बद्धा तद्वजाने भवन्तं सर्वानेव कामानवाष्स्यसि गम्यतामिति ॥ = ६ ॥ स प्यमुक्तः प्रत्युवाच किन्ते प्रियं करवाणीति एवमोहः॥६० ॥यश्चाधर्मेण् वै ब्रुया-

(28)

श्रथवा कोई वस्तु न रहै तो वह लादेना, उसको कम न होने देना, यह मेरी इच्छा है, इसप्रकार उत्तङ्कको श्राज्ञादेकर वेद परदेशको चलागया ॥=४॥ श्रौर गुरुसेवाकी इच्छा करनेवाला उत्तङ गुरुके घर रहकर उन की आज्ञाका पालन करनेलगा, गुरुके घर रहते समय एकदिन गुरुकी सव स्त्रियोंने इक ट्री होकर उत्तंकको बुलाया श्रीर कहा कि-॥ इ५॥ हे उत्तङ्क ! तेरे उपाध्यायकी स्त्री ऋतुमती है, उपाध्याय परदेश गर्प

हैं, इसकोरण तू पेसा कर कि—जिसमें उनका ऋतु व्यर्थ न जाय, वर्षोकि-गुरुपत्नीको ऋतुके व्यर्थ जानेकी चिन्ता है॥ इस ॥ इस प्रकार स्त्रियोंने कहा, तब उत्तङ्कने उनको उत्तर दिया कि मैं स्त्रियोंके कहनेसे यह काम नहीं करसकता श्रीर उपाध्यायने मुक्ते यह श्राज्ञा भी नहीं दी है, कि तु श्रयोग्य काम भी करदेना॥ ८०॥ क्रब दिनो पीछे गुरु परदेशसे लौटकर घर आये तब शिष्यके उस सव बृत्तान्तको जानकर वहुत ही प्रसन्न हुए॥ ==॥ श्रीर उन्होने उत्तङ्क

को बुलाकर कहा, कि—हे येटा उत्तङ्क ! यता, मैं तेरा क्या ग्रुभ कहूँ ? तूने धर्मानुसार मेरी सेवा करी है, इसकारण हमारी तेरी भीति में पर-स्पर वृद्धि हुई है, अब मैं तुभी घर जानेकी आज्ञा देताहूँ और आ-शीर्वाद देताहूँ कि तेरी सब मनोकामनाएं पूरी होंगी, अब तू घरको जा ॥६१॥ गुरुके ऐसा कहने पर उत्तक्षने कहा कि-मैं श्रापका कीनसा

त्रिय काम करूँ ? आप अपनी इच्छानुसार कोई अपना त्रिय काम करनेको दीजिये, क्योंकि—विद्वानोने ऐसा कहा है, कि— जो शिष्य विद्या पढ़कर गुरुद्विणा नहीं देता है और जो गुरु पढ़ाकर द्विणा नहीं लेता है, इन दोनोमेंसे एकको अधर्म होताहै और उसरा

श्रध्याय ी शापानुवाद सहित (=y_) चञ्चाधमें ए प्रच्छति तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ६१ ॥ सोऽहमनुदातो भवता इच्छामीएं गुर्वर्थपुराहर्त्तमिति तेनैवमुक्त उपा-ध्यायः प्रत्युवाच यत्सोत्तंक उप्यतां ताबदिति ॥ ६२ ॥ स कदाचिद्धपा-ध्यायमाहोत्तद्धः श्रादापयतु भवान् किंते विषमुपहरामि गुर्वर्थमिति ६३ तसुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तद्भ वहुशोमाञ्चोदयसि गुर्वर्थसुपहरामीति तहच्छैनां प्रविश्योपाध्यायानीं प्रच्छ फिस्पररुपमीति एपा यह बबीति तद्रपहरस्वेति ६४स प्रवस्को उपाध्यायेनोपाध्यायानी मण्डहन् भगवत्यु पाध्यायेनास्म्यनुहातो गृहं गन्तुमिच्छामोष्टं ते गुर्वर्धम्पहत्यानृणो गन्त मिति ॥ ६५ ॥ तद्यापयतु भवती किम्पहरामि ग्वर्थमिति सँवमको पाध्यायानी तमक्तंकं प्रत्यवाच गच्छ पीष्यं प्रति राजानं कुरुइले भिद्धितं तस्य ज्ञानियया पिनद्धे ते श्रानयस्य ॥ ६६ ॥ चतुर्थेऽहनि प्रयद्धं भविता ताभ्यामावद्धाभ्यां शोभमाना ब्राह्मणान परिवेष्टमिच्छांमि तत्सम्पाद-यस एवं हि कुर्वतः श्रेयो भवितान्यथा कृतः श्रेय इति ॥६७ ॥ स एव हैपभावको प्राप्त होताहै अर्थात् दिन्छ। न लेनेसे आप अधर्मके भागी होंने और मुक्ते आपके अपर हेप आवेगा कि-गुरने मुक्ते कतार्थ नहीं किया॥१०॥११॥इसकारण श्रापकी श्राहा होने पर में श्रापको वियसे विय गुरुद्द िए। देना चाहना हैं, शिष्यके ऐसे प्रथनको छुन-कर उपाध्याय वेदने उत्तर दिया कि—वेटा उत्तह!तव तो तृ थोडे 🖁 दिनो यहां ही रहजा ॥ ६२ ॥ छुछ दिनो रहनेके ध्रनन्तर एक दिन उत्तक्षने ग्रुयसे बुगा, कि-में शापको प्रिय लगनेवोली क्या गुरदिलाला ट्टं ? उसकी मुक्ते आधा दीजिये ॥ ६३ ॥ गुरुने उससे कहा. कि—हे वैटा उत्तद्ध ! तूने पढ़ा है, उसके घदलेमें गुरुद्दिणा देनेके लिये त् मुभ से बार २ कहा करता है तो शब्द्या पेटा तु भीतर जा श्रीर श्रपनी गुरुमाता से वृक्त, कि-स्वा गुरु दक्षिणा दूं ?, वह जो कुछ कहै सोही हो छाना, गुरुके ऐसा कहनेपर उत्तंक घरके भीतर के खंड में गुरुमाता के पास गया और उनसे इसप्रकार दुसा कि-हे भगवति!मेरे गुरुने मुसे घरजानेकी श्राहादी है,सो में इच्छित दक्षिणा देकर गुरुके ऋणले मुक्त होनेपर घरजाना चाहता हुँ,इसका-रण तुम श्राष्ठा करो, कि-गुरुजी के लिये प्या दिक्तणा लाकर हूँ ? इसप्रकार वृक्षने पर गुरुपत्नी ने उत्तंक को उत्तर दिया कि-हे उत्तंती! तु पौष्य राजाके यहाँ जा श्रीर उसकी रानी जो कुरखल पहररही है, उनको मांग ला ॥ ६४--६५ ॥ ज्ञाजसे चौथे दिन पुरुषक नामका ब्रत होगा उस दिन उन दोनो कुण्डलों को पहर, शुद्धार करके में ब्राह्मणी को परोसना चाहती हूँ, इसकारण तृ इस कामको प्राकर, इस काम को करदेनेसे तेरा कल्याण होगा,नहींतो श्रेय कैसे होसकता है? ॥१७॥

गुर्वथें कुएडलयोरथेंनाभ्यागतोऽस्मीति ये वै ते चत्रियया पिनन्ते कुएडले ते भवान्दातमहतीति ॥ १०४॥ तं प्रत्युवाच पौष्यः प्रविश्यान्तःपुरं च्चिया याच्यतामिति स तेनैवमुक्तः प्रविश्यान्तःपूरं चत्रियां नापश्यत ॥ १०५ ॥ स पौष्यं पुनरुवाच न युक्तं अवताहमन्तेनोपचरितं न हि ते इसप्रकार गुरुमाता के श्राहा देते ही उत्तंक, राजा पौष्यकी राजधानी की श्रोरको चलदिया, मार्ग में जातेहुए उसने एक बहुतही बड़ा वैल श्रीर उसके ऊपर एक प्रचएड शरीर वालेपुरुपको चैठा हुश्रा देखाः उस परुपने उत्तंकसे कहा,कि-ग्रह=ग्रहे उत्तंक ! त इस वैलके गोवरको खा. परन्त उत्तङ्क उसके खानेको राजी नहीं हुआ, तब उस पुरुष ने फिर कहा, कि—हेउत्तंक !तू मनमें किसी प्रकारका विचार न करके इस बैलके गोवरको भक्तण कर, पहिले तेरे गुरुने भी इसका गोवर खाया था॥ ६६—१००॥ ऐसा कहने पर बहुत अच्छा कह-कर. उत्तंकने उस समय तिस वैलका गोवर खोया और मुत्र पिया तथा पीछेले जलका श्राचमन करके घवड़ाया दुश्रा उठा और श्रपने मार्गसे चलदिया॥ १०१॥ श्रीर जहाँ राजा पौष्य रहता था. तहाँ उस के नगरमें श्राया, राजभवनमें जाते ही उसने राजा पौष्यको सिंहासन पर चैठा हुआ देखा और समीप में जा आशीर्वाद दे इस प्रकार कहा कि—॥ १०२॥ हे राजन् ! में कुछ चाहता हूँ और आपके पास याचना करनेको श्राया हूँ, राजा पौष्यने उसको प्रणाम करकै कहा, कि—हे भगवन् ! मेरा नाम राजा पौष्य है, कहिये हैं आपका क्या प्रिय कार्य करूँ ? त्राह्म दीजिये, उत्तंकने कहा, कि—में यहां गुरुद्विणाके लिये छुण्डल माँगुने आया हूँ, इसकारण आपकी रानी जिन दो छुण्ड-लोंको पहर रही है, वहा दोनो कुराडल श्राप मुक्के देदें यह उचित है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ राजां पौष्यने उससे कहा, कि तन तो ब्राप रखनास में जाकर रानीसे याचना करिये, पौज्यके इसप्रकार कहने पर उत्तक श्रन्तःपुरप्ते गया, परन्तु तहाँ रानीको नही देखा ॥ १०५ ॥ उसने फिर

महाभारत श्रादिपर्व *

मुक्तस्त्रया प्रातिष्ठतोत्तंकः स पथि गच्छुन्तपश्यद्भवभमितग्रमाणं तसिष्ठ कृद्ध्य पुरुषमित प्रमाणनेव स पुरुष उत्तंकमभ्यमाणत ॥६=॥ भो उत्तं-कित पुरोपमस्य चृषभस्य भाष्यस्वित स प्रमुक्तो नैच्छुत् ॥ ६६ ॥ तमाह पुरुषो भूयो भावपस्थोत्तंक प्राविचारयोगाध्ययेनापि ते भिक्तं पूर्वमिति ॥ १००॥ स पत्रमुक्ते वाद्यमित्युक्त्वा तद्दोत्तद्वस्वस्य मृत्रं पुरोप्त प्रमुक्ते वाद्यमित्युक्तं स्वावप्रस्य मृत्रं पुरोप्त प्रमुक्ते वाद्यमित्युक्तं स्वावप्त्यम्य प्रतस्य ॥१०१॥ यत्र स स्वित्यः पौष्यस्तमुष्त्यासी निर्मानं स्वावप्त्यासी स्वावप्ति ॥ १००॥ अर्थो भवन्तमुपारातोऽस्मीति स पत्मभिनवायोवाच ॥ १०२॥ अर्थो भवन्तमुपारातोऽस्मीति स पत्मभिनवायोवाच भगवन् पौष्यः खत्वदं क्षिक्रत्वाणीति ॥ १०२॥ स तमृवाच

ितीसरा

उन्तःपुरे स्त्रिया सन्निहिता नेनां पश्यामि॥ १०६ ॥स प्वमुक्तः पौष्यः चलमात्रं विमश्योत्तंकं प्रत्ययाच नियतं भवान् च्छिपः समर तावन्न हि सा चत्रिया उच्छिप्रेनाशुचिना शक्या द्रष्टुं पतिव्रतात्वात् संपानाशुचे हर्शनम्पैतीति ॥ १००॥ श्रयवम्क उत्तंकः स्मृत्वोवाचास्ति खलु गयो-त्थितेनोपस्पृष्टं शीव्रं गच्छता चेति १०=तं पीप्यः प्रत्युवाच एप ते व्यति क्रमो नोत्थितेनापरपुष्टं भवताति शांत्रं गच्छता चेति॥१०६॥श्रथोत्तंकस्तं तथेत्युक्तवा प्राञ्मूल उपविश्य सुप्रकालितपाणिपादवदनो निःशब्दा-भिएकेलाभिरन् लाभिर्द्ध हताभिरद्भिलिः पीत्वा द्विः परिमृत्य खान्यद्भि-चपस्पृर्य चान्तःपुरं प्रविवेश ॥ १६० ॥ ततस्तां स्वियामपर्यत् सा च द्यु बोत्तंतं प्रन्यस्थायाभिवाद्योदाच स्वागतं ते भगवषाद्यापय किंपर-घाँणीति ॥१११॥ स तामुवाचेते कुण्डले गुर्वर्थं में भिक्ति दातुमईसीति लीटकर राजा पौष्यसे कहा, कि-महाराज ! मुभी भुडे इंसी इट्टेमें उडाना आपको शोभा नहीं देता, आपकी रानी रणवासमें नहीं है, श्वीकि-मैंने रानीजीको तहां नहीं देखा॥ १०६ ॥ उत्तंककी इस प्रकार कहते पर राजाने चलभर विचार कर उत्तर दिया, कि-हे भगवन् । श्राप ध्यान दे लीजिये, कि-शाप पहिले किसी श्रपविध बस्तके संगसे अपवित्र तो नहीं होगए हैं ? पर्याकि-मेरी रानी पति-बता है और उसको उच्छिए तथा अपवित्र पुरुष नहीं देखसफता. इतना ही नहीं, किंतु वह स्वयं भी, जो अपवित्र हो उसकी दर्शन नहीं देती ॥ १०७ ॥ इसपर विचार करके उत्तंक वोला कि-हाँ ठीक, है ऐसा हुआ है, क्वोंकि-में शीव्रतामें था, इसकारण मार्ग में मेंने खड़े र ही ब्राचमन किया था ॥१०=॥ राजा पौष्यने कहा कि-शापले यही व्यति क्रम हुआ है, पुरुष खड़ा २ वा शीव्रता में जाता२ ठीक आचमन नहीं करसकता, तदनन्तर उत्तंककी वात राजाके कथनसे मिलजाने पर उत्तंक पूर्वकी श्रोरको मुखकरके नीचे येडगया श्रीर हाथ,पैर तथा मुख को ठीक २ धोकर, हदय पर्यन्त पहुँचन योग्य, विना कानोंके शीतल श्रीर स्वच्छ जलसे तीनवार श्राचमन किया, तदनन्तर जलसे इन्द्रियों का स्पर्श करके शुद्ध हुआ और फिर अन्तःपुरमें जापहुँच॥१०६॥१२०॥ तहाँ रानी भीतर ही वैठी हुई दीखी, वह उत्तंकको देखते ही खड़ी होगई, और प्रलाम करके विनयके साथ कहनेलगी, कि-आप शानन्द से तो शाये, हे भगवन्! शाहा करिये शापकी किस शाहाका पालन करूँ १॥ १११॥ यह सुनकर उत्तंकने रानीसे कहा, कि-हेमनवति!गुरु हक्षिणामें देनेके लिये में आपके छुएडल माँगनेको आया हूँ, वह मुक्षे मिलजाने चाहियें, रानी उसकी गुक्मिकको देखकर मसल हुई और यह

भाषानुवाद सहित

(= 9)

अध्याय]

सवती सुनिवृंता भवन मां ग्रकस्तवको नागराजो धर्पयितुमिति ११३ स प्वमुक्त्वा तां वित्रयासामन्त्र पौष्यसकाशमागच्छत् साइ चैनं मो: पौष्य प्रीतोऽस्मीति तमुक्तं पौष्यः प्रत्युवाच ॥ ११४ ॥ भगवंश्चि रेण पात्रयासाखाद्ये भवांश्च ग्रुणवानतिथिस्तिदिच्छे श्राखं कत्तुं क्रियतां त्तृण इति ॥ ११५ ॥ तमुत्तंकः प्रत्युवाच कृतकण प्वास्मि ग्रीव्यभिच्छामि यथोपपन्नमुपस्कृतं भवतित स तथेत्युक्त्वा यथोपपन्नेनावोनेनं मोजः यामास ॥११६॥ ज्ञयोत्तंकः सकेग्रंशीतमज्ञं स्ट्वा श्रुष्टच्येतिदिति मत्वा तं पौष्यमुवाच यस्मान्मे श्रुष्टच्यं दद्वासि तस्मादन्त्री भविष्यसीदिरे १० ८

तं पोष्यः प्रत्युवाच प्रस्तास्त्रमण्यद्वष्टमन्तं दूपयस्ति तस्मास्त्रमनपत्यो

खुपात्र ब्राह्मण् निराश नहीं जानां चाहिये, ऐसा निचारकर अपने दोनो

कुएडल उतार उसको देश्ये और कहा, कि-सर्पोका राजा तज्ञक इनः

कुएडलोंको पानेके लिये अनेको बार प्रार्थना करजुका है, इसकारण्

आप इन कुपडलोंको बहुत सावधानीके साथ लेजायँ। ११२। रानी

के इसमकार कहने पर उत्तंकने कहा, कि-हे भगवति ! आप इसके

लिये निश्चिन्त रहें, नागोंका राजा तज्ञक मेरा पराज्य नहीं करसकता

॥ ११३॥ इतप्रकार कह रानीकी आशा लेकर उन्तंक राजा पोष्यके पांस आया और उससे कहा, कि—ह राजन, ! में बड़ा सन्तृष्ट हुआ हूँ, तब पोष्यने उन्तंकसे कहा, कि—१ १४७ ॥ हे मगवन, ! चिरकालमें कोई पाव पुरुप मिलजाता है, आप गुएवान, अतिथि हैं, रसकारण में आइ करना वाहता हूँ आप चएभर यहीं आराम करिये॥ ११६॥ उन्तंक्षने राजाको उन्तर दिया, कि-अच्छा में चएभर ककाहुआ हूँ और आशा करता हूँ, कि-आप मेरे लिये समयानुसार उपस्थितपाव और अहा कहकर उसीसमय गुरु मोजन गुरीम मँगायेंगे, राजाने वहुत अच्छा कहकर उसीसमय

उत्तं कहे लिये तयार भोजन मँगाया॥ ११६॥ उत्तं कने ठंडा और बाल पड़ाहुआ देखकर उस अन्नको अपविज सभक्ता और राजा पौच्यको राजा पिया कि—तू अपविज अन्न देताहै, इसकारण अन्याद डिजायगा ॥ ११०॥ राजा पौच्ये उसको चदलेंमें शाप दिया, कि—तू पविज अन्नको अपविज यताता है, इसकारण तेरा वंशलोप होजायगा, इस पर उत्तं क कहउठा, कि—देख तुने अपविज अन्न अपंण करकें भी अपके वरलेंमें शाप दिया है, यह तेरा काम उचित नहीं हुआ, तु इस अन्न के दोष को अपने नेजों से अत्यन्न देखलें, तब

श्रध्याय] (32) # भाषानुवाद सहित # भविष्यसीति तसुत्ततः प्रत्यवाच ॥११८॥न युक्तंभवताव्यमयुचि दत्व। प्रतिशापं दातुं तस्मादश्वमेव प्रत्यद्योद्धरः ततः पीष्यस्तदश्वमशुचि एप्टा तस्याग्रचिभावमपरोत्तयामास ॥ ११६॥ श्रथ तद्वां मुक्तकेश्या जियो-पहृतमनुष्णं सकेशं चाणुच्यतदिति मत्या तम्पिमुक्तंकं प्रसादयामास ॥ १२० ॥ भगवन्तेतद्शानाद्शं सकेशमुपाहतं शीतं तत् ज्ञामचे भवन्तं न भवेयमंघ इति तमुत्तद्वः प्रत्युवाच॥१२१॥ न मृपा ब्रवीमि भृत्वा त्व-मन्धो न चिरादनन्धो भविष्यक्षीति ममापिशापो भवता दत्तो न भवे-दिति ॥ १२२ ॥ तं पीष्यः प्रत्युवाच न चाहं शकः शापं प्रत्यादातं न हि मे मन्युरद्याष्युपशमङ्गब्बति किञ्चेतद्भवता नशायतेयथा ॥१२३ ॥ नव-नीतं हुद्रयं ब्राह्मण्स्य वाचि चुरो निश्चितस्तीदणधारः । तद्वभयमेतहि-परीतं ज्ञियस्य बाङ्नबनीतं हद्यं तीरणधारमिति ॥ १२४॥ तदेवं गते न शकोहं तीदण्हद्यत्वात्तं शापमन्यथाकत्तुं गम्यतामिति तमुत्तहः प्रत्युवाच भवताहमन्नस्यागुचिभावमालस्य प्रत्यनुनीतः प्राक्तेऽभिद्धि-राजा पौष्यने उस अन्नको अपवित्र देखकर उसकी अपवित्रताको रूपए मानलिया ५ ११४ ॥ ११८ ॥ श्रार उस श्रन्नको खले केशोवाली स्त्रीने वनाया था एवं वालपड़ा हुन्ना तथा ठएढा ग्रन्न ग्रपवित्र मानाजाता है, देसा समक्षकर राजा पीप्य उत्तंक ऋषिको प्रसन्न फरता हुशा कहने लगा, कि—॥ १२० ॥ हे भगवन् ! यह ठंडा श्रीर वाल पडाएश्रा श्चन्त श्चापको श्चनज्ञान में परोसागया है, इसकारण में शापसे याचना करता हूँ, कि-में श्रन्धा न होऊँ, उत्तंकने राजाको उत्तर दियो, कि-॥१२१॥ में जो छुछ कहता हूँ वह मिथ्या नहीं होता, इसकारण तुम श्रन्थे होकर थोड़े ही दिनोमें समाखे होजाशोगे, परन्तु तुमने भी सुकी जो शाप दिया है उसको निवारण करो ॥ १२२ ॥ राजा पौष्यने कहा कि—में श्रपने शापको नहीं लौटासकता. वर्षेकि-श्रभीतक मेरा कोध नहीं उतरा है और त्या आप यह नहीं जानते हैं.कि-बातालका हटर सक्खनकी समान श्रत्यन्त कोमल होता है श्रीर वाली पेनी धारवाले छुरेको समान बड़ी तीदण होती है, परन्तु चत्रिय में यह दोनी बात उलटी होती है अर्थात् चत्रियों की वाणी मक्खनकी समान कोमल और हृदय छुरेकी धारकी समान बड़ा तीखा होता है, सो में स्वामा-विक तीदणभावके कारण अपने दियेहुए शापको पलट नहीं सकता, हें महाराज । अब आप पथारें, राजांके ऐसे बचनोंको सुनकर उत्तहने राजासे कहा, कि-मुभै भोजन के निमित्त दियेहुए अन्नको अपवित्र समसकर तूने मेरी पार्थना करी, तिससे पहिले तूने मुक्ससे कहा था, कि-तू गुद्ध अनको दोप लगाता है इसकारणपुत्र रहित होगा,परंत

(६०) * महाभारत श्रादिपर्व * [तीसरा तम्॥ ६२५ ॥ वस्माद्दुष्टमसं दूपयित तस्माद्तपत्यो भविष्यसीति दुष्टे चास्रेनेप मम शापो भविष्यतीति ॥ १२६ ॥ साध्यामस्तावित्यु- स्त्वा प्रातिष्टतोत्तक्षः ते कुण्डले गृहीत्वा सोऽपश्यद् पथि नम्मं स्तप-

ण्कमानञ्जन्तं मुहुर्मुहुर्ण्यमानमहय्यमानश्च ॥ १२० ॥ श्रथोत्तक्कस्ते छुर्छतं लन्त्यस्य स्मानुदकार्थं प्रचक्रमे एतस्मिन्नतरे स स्वपण्कस्त्य-रमाण उपस्त्य ते छुर्छले गृहीत्वा पाद्रवत् ॥१२८॥ तमुत्तक्कोऽभिस्त्रत्य छतोदककार्य्यः श्रुचिः प्रयतोनमो देवेभ्यो गुरुभ्यश्च छत्वा महता जवेन तमन्वयात् ॥ १२८॥ तस्य तस्तको हृदमासन्नः सतं जन्नाह गृहीतमात्रः स तद्र पं विहाय तस्तकस्यस्यं छत्वा सहसा धर्ण्यां विवृतं महाविलं

प्रदिवेश ॥ १३० ॥ प्रविश्य च नागलोकं स्वभवनमगच्छ्न् अथोस्तक्ष्म स्वस्थान क्ष्म क्ष्म विश्व ॥ १३१ ॥ स तिक्ष्म स्वस्थान क्ष्म क्ष्म स्वस्थान स्यस्य स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्य स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्य स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्वस्थान स्यस्य स्वस्य स्वस्थान स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्यस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्वस्य स्य

हे राजन् ! यह अन्ततो अपविज्ञ था (सो मैंने पविज्ञ अन्न दोप नहीं लगाया है इसकारण्) तेरा शाप सुभी दुःख नहीं देसकार, इसवात का सुभी तिश्वय है ॥ १२३-१२६ ॥ अब मैं अपना काम साधन कहँगाँ, ऐसा कहकर रानीके दोनो कुएडल लियेहुए उत्तंक तहाँ से चलिया, मार्गर्म जाते २ उत्तङ्गने एक नंगे चएणककी अपनी औरकी आताहुआ देखा, वह करगुक किसी चण्डों ही खताथा और किसी चण्डों अन्त- धर्म हरगुक किसी चण्डों होखताथा और किसी चण्डों अन्त- धर्म हरगुक किसी अध्याप किसी किसी चण्डों अन्त- धर्म हरगुक किसी अध्याप अपि किसी चण्डों को के अप किसी के प्रवासन आपि के प्रवासन आपि के प्रवासन का मार्गिक किसी के स्वासन का स्वासन का साम और कुणडलों को लेकर अध्यय तहाँ से साम जाया ॥ १२२ ॥ नहां थो पवित्र होकर, देवता तथा वितर्णकों नमस्कार करके उत्तह वहें वेगसे उस चण्यक से पीछे भागने लगा ॥ १२६ ॥ देखते हेसते चर्मका यहत समीप आलगा और उसका प्रवासन करगा प्रकास का स्वासन का साम का का साम का साम की प्रकास का साम की प्रकास का साम की साम का साम की साम का साम की साम की साम का साम की साम का साम की साम का साम की साम का साम की साम की साम की साम की साम का साम की साम की साम की साम का साम की साम की साम की साम की साम का साम की साम का साम की साम की साम का साम की साम की साम की साम की साम की साम की साम का साम की साम की साम का साम की स

उसका पकडालया, एरन्तु एकड़त चलाहा वह चपलकका रूप त्याग-कर तक्कक वनगया और तुरस्त ही पृथ्वी में एक वड़ी और विशास दरार खुर्लीहुई थी उन्हमें छुचगया ॥ १३० ॥ और उसमें को होकर वह नागलोक में प्रपने भवन में जापहुँचा, उस समय उत्तंकको रानी की कही हुई बात बाद आई और वह तक्कके पीक्षेर जानेको तयार हुआ ॥ १३१ ॥ और उस दरारको चौड़ी करनेके निमित्त अपनी लठियासे खोदने कता, परस्तु वह किसीप्रकार भी उसको खोदने में सफलमनो-

रथ नहीं हुआ तद उसके न खुदनेसे उदास होगया, इन्द्रने उत्तकको दुःखित होतेटुए देख अपने अस्त्र चल्रको बुलाकर कहा,कि—हे चल्र !

श्रधाय] श्रमापानुवाद सहित श्र (33) बज्जं दराडकाष्ट्रमनुप्रविश्य तद्विलमदारयत् ॥ १३३ ॥ तमुत्तंकोऽनुवि-वेश तेनैव विलेन प्रविश्य च तं नागलोंकमपर्य्यंतमरेकविधवासादाहुः र्म्यवलभीनिर्य्ह्शतसंकुलमुद्यायचक्रीडाध्यर्यस्थानावकीर्णमपश्यत॥ १३४॥ स तत्र नागांस्तानस्तुवदेभिः ऋोक्षे:-ये ऐरावतराजानः सर्पा समितिशोभनाः। सरन्त इव जीमनाः सविचन्पवनेरिनाः॥ १३५॥ स रूपो बहुरूपाख तथा कल्मापकुएडलाः । श्रादित्यवद्योद्धपुरु रेजरेरा-वतोद्भवाः ॥ १३६ ॥ वहनि नागवेश्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे । तबस्था-नपि संस्तौमि महतः पंजगानहम्॥ १३७॥ इच्छेत्कोऽर्कांशुसेनायां चर्त-भैरावतं विना । शतान्यशीतिरष्टौ च सहस्राणि च विशतिः । सर्पाणौ प्रव्रहा यान्ति धृतराष्ट्रोऽयमेजति ॥ १३= ॥ ये चैनमुपसर्पति ये च दूर पथङ्कताः । श्रद्धमैरावतज्येष्ठभ्रातुभ्योऽकरयं नमः॥१३६॥यस्य वास्तः कुरुक्षेत्रे खार्डवे चाभवत् पुरा।तं नागराजमस्तौपं कुर्डलार्थाय तत्त-कम ॥ १४० ॥ तज्ञकथाश्यसेनथा नित्यं सहचरावभी । फ़रुकंडे च त जाकर उस ब्राह्मण की सहायता कर, तब वज्रने अपने स्वामीकी त्राह्मानुसार उस दण्डेमें प्रवेश फरकें तिस विलक्षे हारको चौडा कर दिया तब उत्तंकने उस दरारमें को होकर रसातल में प्रवेश किया और उसी मार्गसे चलते २ नागलोक में जापहुँचा, तहाँ नाना प्रकार के श्रनेको देवमन्दिर, राजमहल, एवेलियें, दोनो श्रोर भुकेहुए छुलीवाले घर महल तथा खेल तमारों के स्थानोसे खचाखच भरेहप नागलोक को देखा ॥ १३२—१३४ ॥ तहाँ पहुँचने पर उत्तद्व इसबकार नागीकी स्तृति करनेलगा, कि-जैसे पवनके प्रेरणा करेहर विजलीवाले मेघ जलकी धाराश्रोंको वरसाते हैं तैसेही पेरावतकी प्रजारूप तथा युद्ध में शोभा पानेवाले सर्पभी तीखी धारों के श्रस्त्रोंकी वर्षा किया करते हैं ॥ ९३५ ॥ सुन्दररूप वाले, वहरूपी, चित्रविचित्र क़रहलधारी ऐरा वतके वंशमें उत्पन्न हुए है सपी जैसे श्राकाशमें सूर्य शोभा पाताहै तैसे हा स्वर्ग में तुम शोभाषाते हो॥१३६॥ गङ्गाके उत्तरतटपर नार्गीके बहुतसे मन्दिर हैं उन सब बड़े २नागोंकी भी में स्तुति करताहुँ॥१३७॥ पेरावतके सिवाय सर्यकी जाज्वल्यमाम किरलो में विचरनेकी कौन इच्छा करेगा ?,जब पेरावत नागका चड़ा भाई धृतराष्ट्र वाहर जाता है. तव श्रद्वाईस सहस्र श्रोड सर्प श्रनुचर वनकर उसके पीछै चलते हैं औरजो दूरमार्गमें जापहुँचते हैं एवं पेरावत के छोट्रे भाई हैं उनको में नमस्कार करता हूँ, जिनका निवास पहिले कुरुल्वेत्र के खाराडव वनमें था ऐसे नागराज तत्तककी मैं कुएडलों के लिये स्तुति करता हूँ, तत्तक श्रीर श्रश्वसेन दोनो नित्य साथ रहतेहैं श्रीर क़रुद्वेत्रमें श्राई हई इन्नमती (52)

वस्तां नदीमिनुमतीमन्त्र ॥ १४१ ॥ जवन्यजस्तन्नकश्च श्रुतसेनेति यः स्ट्रतः । श्रवस्त्रवो महस्यूक्ति प्रार्थयकागमुख्यताम् । करमाणि सदाचाहं समस्तरुषे महास्मते ॥ १४२ ॥ एवं स्कुत्या स विप्रर्पिकसङ्घो भुजगोस-मान्त्र । नैद ते द्वरुक्ते लेमेतर्ताश्चतामुपागमत्॥ १४३ ॥ एवं स्तुवन्नपि

वाजा । तर त हुएउस समायाव्यास्त्रामान्य (१८४ १०००) छुटेमे नागान् वदा ते हुपडले नालभक्ताप्यत् हिमी तन्त्रे प्रधिरोण्य सुदेमे पर्ट हव्ल्या तरिमस्तंत्रे कृष्णाः स्तितास्र तत्त्रस्थकं चापप्यत् द्वादशारं एकुन्निः हुमारो परिवर्त्यमानपुरुपं चापप्यवस्त्रश्च दर्शनीयम् । सताम्

सर्वी स्तुष्टाच प्रसिर्धे बसंदर्शिकः ॥१४४ ॥ शीरयर्षितान्यत्र शतानि मध्ये पहिला नित्यं सरित शुदेऽस्मिन् चक्रे सतुर्विशतिपर्वयोगे पड् वे कुसाराः

नदीने तदपर रहते हैं, श्रुतलेन नामसे प्रसिद्ध तहरूको छोटे साईकी सध्य महायुक्त नामक तीर्थमें नागराजकी पद्यीपानेने लिये स्प्यंकी सध्य महायुक्त नामक तीर्थमें नागराजकी पद्यीपानेने लिये स्प्यंकी श्रुतलेन्द्रों भी में सदा प्रणाम करता हूँ ॥१३=—१४२॥ जय महारूपाकी रस्त्रकार प्रार्थना करने पर भी वह छाउड़ नहीं मिते तय दिप्रति उसंबक्ती बड़ी चिन्ता हुई॥१४३॥जय नागों स्ति तृति करने पर भी छुएडल नहीं मिले तय रघर उधरको देखतेहुए उसंकर्त ग्रुति करने पर भी छुएडल नहीं मिले तय रघर उधरको देखतेहुए उसंकर्त ग्रुतने सुंदर दर्गडेंसे ग्रुज यंत्र पर उत्तम देमाओं से व्याद्वनती हुई दो छिदोंको देखा,उक्त साम्यव्य प्रस्ति मिले किली छोर वहेंदर से, दूसरी पोर वारह घरोंका पर चक्र देखा पि—जिसको छुः वालक किए. रहें पे दौर तीर्थरी घोर पक्ष उत्तम बोज़ दींखा कि—छितको छुः वालक किए एक दोनीय पुष्प स्वार था, तव तो उसंक देवली ज्युवार्डोंकी स्मान नीचे लिखे स्टोकों डेंच स्पर्ध भी स्तुति करनेला ॥ १९४४॥ इस सामस्य पूर्विमा ग्रादि

की बीज रहे हैं, तीर की खाट दिनरात स्वी बारे हैं और छु: ब्रह्मुक्पी बालक इसकी रातदिन जुनागा, करते हैं (श्रुतिमें लिखा है, कि "सम्ब-स्सर: प्रजापति: श्र स्वक्त्यरको प्रजापित जानो, इसकार एउसके यहाँ स्वक्रम्यका कुप देवर विक्वारमा प्रजापितकी स्तृति करता है—मूल

त्वरा प्रजापात । १९०४ विश्वास्ता प्रजापति कोता है व्यक्त प्रक्ष करता है प्रमुख प्रकृति, महत्तरह, प्रहंकार, पांच तत्मात्रा, त्यारह हिन्द्र्ये और पांच महासून हर चौबीच तत्वोंके समूहकृष और मोचपर्यन्त रहनेवाले

स्यूक ल्क्स शरीरक्षी चक्रमें तीन सी साठ वासनाक्षी तन्तु रहते हैं, हृदयके शीतरकी सव नाड़ियें वहत्तर हजार हैं, वह जुदे २ लोक देती हैं और हरफक लोकमें शन्दादि पांच विषय हैं, इस कारण उन हरफ नाड़ियोंके भी पांच २ विभाग करनेसे अनेकों सहस्र नाड़ियें

होती है, वहाँ संलेपमें गीनसी साठ नाडियें कही हैं, श्रोकामें भी हतना ही वासनाएं नहीं हैं, यहां जो छः यालक कहे हैं वह श्रविण,

53) अन्याय ौ # भाषानुवाद सहित # परिवर्त्तवितः ॥ १४५ ॥ तंत्रयञ्चेदं विश्वक्तपे,युवत्यौ वयतस्तंतन् सततं वर्त्तयन्त्यौ । कृष्णान् सितांक्षेव विवर्त्तयन्त्यौ भृतान्यजस्य भृतनानि चैव ॥ १४६ ॥ वजस्य भक्ता भवनस्य गोप्ता वृतस्य एनता नमुचेर्नि-इन्ता। कृष्णे वसानो पसने महात्मा सत्यानुर्ते यो विधिनिक लोके ॥ ॥ १४७ ॥ यो वाजिनं गर्शमपां पुराणं वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति ।नमो-उस्त तस्मै जगदीश्वरोय लोकनयेशाय पुरन्दराय ॥ १४=॥ ततः स पनं पुरुपः प्राद्य प्रीतोऽस्मि तेऽस्मनेन स्तोष्ठेण किन्ते प्रियं करवाणीति ॥ १४६ ॥ स तमुबाच नागा म वशमीयुरिति स चैनं प्रवः प्नयपाच प्तमश्वमपाने धमस्वेति॥ १५०॥ ततोऽश्वस्यापानमधमत्ततोश्वाद्ध-शस्तिता, राग, होप, शभिनिषेश यह पाँच प्रकारकी श्रविया श्रीर छटी ईर्यरकी माया है, इन छुः को विवेक वैराग्यके बलसे जीताजासकता है, तथापि यह नित्य ही घटीयंत्रकी समान अन्म मरगुका प्रवन्ध करती हैं) ॥ १४५॥ वालकपन तथा गुढ़ापेकी की हुई कमी से रिद्रत दो विश्व-रूप तरिण्यें वासनाजालरूपी यन्त्रमें शुक्ल तथारूष्ण पच रूपी स्त्रको डालकर नित्य वस बना करतीई और सकल भृत तथा चौवह भुवनी को ग्रमाया करती हैं (माया तथा चेतन्य शक्तिक पिणी तक्षणियें जो वालक-पम तथा बढापे से होनेवाले अपकर्षसे रहित हैं वह विश्वरूप देवियें, चोसनारूप तन्तुर्यों को जिथर विधर को चलायमान करके जगत को रचती हैं अर्थात यह दोनो शक्तियें बुद्धि श्रीर चिदाभासकपसे घटादि विषयोको प्रहण करके उनके संबंधकी वासनार्थोको एडकरती हैं)॥१४६॥ (अपरके महोकमें चन्धका स्वक्षप कहा,वह अहानका कार्य है इसकारण ज्ञानसे दुरहोसकता है,इसग्रभिप्रायको लेकर फहते छ,कि-)जो महात्मा कालेरंगके वलोंको पहर रहाहै,जिसने वज्धारण करके नमुचिका तथा बुत्रासुरका नाश कियाहै,जो त्रिलोकी की रत्ताकरता है,जो लोगींके सत्य श्रीर मिथ्या वचनका विभाग करदेता है श्रीर जिसने वैश्वानरसे तेजस्वी श्रीर समुद्रमें से उत्पन्न द्वप घोड़ेको वाहन कपसे पाया है. उस जिलोकीके नाथ और जगतके ईश्वर पुरंदर भगवानको मेरा प्रणाम हो ॥ १४७ ॥ १४= ॥ उतहुने इस प्रकार स्तुति करी तव उस पुरुपने उतद्वसे कहा, कि-मैं तेरे इस स्तोषसे प्रसन्न प्रशाह, इस कारण बता में तेरा क्या ब्रिय करूँ ? ॥ १४६ ॥ जतहुर्ने उत्तर दिया, कि-महाराज | यह वरदान दीजिये, कि-नाग मेरे वशमें होजायँ, उस पुरुपने उससे कहा, कि-तो तू इस श्रश्वकी गुदामें फूँकमार ॥ १५० ॥ उत्तङ्क घोडेकी गुदामें फूँक मारने लगा और फूँक मारतेश

घोड़ेके शरीरके छिदों में से घुएंके साथ अग्निकी ज्वालाएं निकलने

नांत्रकोक उपभूषितेऽथ संभ्रान्तस्त्रकोऽग्नेस्तेजोभयोह्निपश्चः कुगडले गृहीत्वा सहस्रा अवनाविष्कम्योत्तक्क्षयुवाच ॥ १५२ ॥ इमे कुगडले गृहीत्वा सहस्रा अवनाविष्कम्योत्तक्क्षयुवाच ॥ १५२ ॥ इमे कुगडले चिन्तयत् हातु भव्यत्तिति स ते प्रतिज्ञप्राहोत्तंकः प्रतिगृह्य च कुगडलेऽचिन्तयत् ॥ १५३ ॥ इन्द्र तत् पुरयक्षयुपाध्यायान्यादूरं चाहमभ्यागतः स कथं सन्माहययितित तत् पूर्नं चिन्तयानमेव संपुद्य उवाच ॥ १५४ ॥ उत्तक्ष प्रतिवेद्यक्षितोह त्यां चुलेनैवोपाध्यायकुलं प्रापयिष्यतीति ॥ १५५॥

्रह्में इत्याहित । १५५॥ इत्योह्युक्त्वा तमश्वमधिरुद्ध प्रत्याजगामोपाध्यायकुलं उपाध्यायानी इत्याहित केशानावापयन्त्युपविद्योक्तक्को नागच्छतीति शापायास्य मनो वृष्टे ॥ १५६ ॥ अर्थतिस्मजन्तरे स उक्तक्कः प्रविश्योपाध्यायगृहे उपाध्या शहीसभ्यवादयत् ने चास्ये कुराडले प्रायच्छत् सा चैनं प्रत्युवाच १५७ इन्हें होग्ने कालेऽभ्यागतः स्वागतं ते वत्स्व त्यमनागसि मया न शक्तः

हीले) जिल्ला हुआ तथा बदड़ायांहुआ तक्तक नाग तत्काल दोनो कु-एडल लेकर अपने भवतलेले वाहर निकला और उसक्के पास आकर उसले कहनेतमा, कि—॥ १५२ ॥ इन कुण्डलोंको आप लीजिये, उतक्केने वह लेलिये और वह फिर दिसार करनेतमा, कि—॥ १५३ ॥ ओहो | इन्दराताका पुरस्कत तो खाल ही है, और मैं तो बहुत दूर

बार्गुंचा हूँ, लो वें झाबही उनका सत्कार कैसे करसकूँ गा उसक्के ृत्यब्रहारियता करतेतुर देखकर उसही पुरुषने कहाकि-११४८।हेउसंक तू इसही बोड़े पर बैठका, यह क्षाभर में तुक्षे तेरे ग्रुष्ठ के पास लेजा-रना॥ १५५॥ उसक्र पहुत श्रम्छा कहकर उस बोड़ेके ऊपर सवार

रना ॥ १५५ ॥ उन्नह पहुत अच्छा कहकर उस घोड़ के ऊपर सवार होगरा और थोड़ी ही देरमें गुरुके घरके लामने ग्रागहुँचा, इधर गुरु जीकी की नहा घोकर केश सम्हाल रही थी और यदि उत्तंक टीक लमय पर न शागहुँचे तो उसको शाप देंदूंगी, ऐसा विचार कर रही थी ॥ १५६ ॥ परंतु उसी शवसरमें वह उसके गुरुके घरमें आपहुँचा होर गुरुमाताको प्रणाम करके वह कुण्डल दिये, उस समय गुरुकी

ह्यीने कहा, कि—॥ १५७ ॥ हे उत्तं क ! तू देशकालके अनुसार आप-हुँचा, है वेटा ! तू अच्छा आया, यहि तू एक ज्ञुणभर भी देर करके आता तो भैंने तुक्त निरंपराधको ही शांप देदिया होता, वेटा ! तेरा कह्याण हो और तुक्ते अणिमादि सिद्धिय प्राप्त हो ॥ १५८ ॥ उसी अस्य उत्तं का सकते प्राप्त और उनको प्रशास किया सकते हुन

्र कल्वाण हो झौर तुसै झिणमादि सिद्धियें प्राप्त हो ॥ १५⊭ ॥ उसी ्र समय उत्तंत गुरुते पास गया और उनको प्रणामकिया, गुरुने कही, वपमो दृष्टस्तञ्च पृष्ठपोऽधिरुद्धस्तेनास्मि सोपचारमकः उत्तंकास्य ऋपभस्य पुरीपं भद्मय उपाध्यायेनापि ते भित्ततिमिति ॥ १६३ ॥ ततस्तस्य वचनानमया तदपभस्य परीपमपयक्तं स चापि वाकः तदे तद्भवतोपदिष्टमिच्छेयं श्रोतं किं तदिति ॥ १६४ ॥ स तेनैयमक उपा-ध्यायः प्रत्ययाच्य ये ते स्त्रियो धाता विधाता चये चते कृष्णाः सिता-स्तंतवस्ते राज्यहनी यदिष तद्यक्षं द्वादशारं पड वे फमारा परिवर्त्तयंति तेऽपि पड्तवः सम्बत्सरधकम् ॥ १६५ ॥ यः पुरुषः स पर्जन्यः कि-वेटा ! त् वहुत अच्छा आया, तुभी वेर फहाँ लगी ? ॥ १५८ ॥ उत्तंकने उपाध्यायसे कहा, कि-हे महाराज ! नागीके राजा तज्ञकने मेरे इस काममें विध किया था, इसकारण मुक्ते नागलोक्तमें जाना-पड़ा ॥ १६० ॥ महाराज ! तहां मैंने काष्ट'के ऊपर सत रखकर दो खियोंको वस बनतेहुए देखा था, उसमें काले स्वेत डोरे थे, वह प्या था ? ॥ १६१ ॥ और तहाँ मैंने छः बालकाँसे घमाएहए बारह अरोंवाले एक चकको देखा था वह प्या था ? और एक सुंदर पुरुप को तथा वडेमारी घोडेको भी मैंने तहां देखा था वह कौन था ? ॥ १६२॥ श्रीर हे महाराज ! मार्गमें जातेहुए भेने एक यहुत वर्डे वैल को देखा था और उसके ऊपर एक पुरुष वैठा हुआ था उसने मुक्तसै श्राप्रदके साथ:कहा, कि-हे उत्तंक! इस वैलका गोवर खा, तेरे गुरुने भी पहिले खाया था॥ १६३॥ उसके फएनेसे मैंने उस धेलका नोवर भी खाया, यह बैल और पुरुष कीन था ? तथा यह सब प्या वात थी ? यह सब में श्रापसे सुनना चाहता हूँ, श्राप मुझै इसका उप-देश दीजिये ॥ १६४ ॥ इसवकार उत्तद्भके वृक्षने पर गुरुने कहा कि-वेटा ! तुने जिन स्त्रियोंको देखा वह धाता और विधाता हैं, काले धीर स्वेत जो डोरे देखे वह रात श्रीर दिन हैं, तूने जो छः वालकोंका चलाया हुआ वारह अरोंका चक्र देखा वह छु: ऋतु तथा संवत्सररूपी चक्र हैं, जिस पुरुषको देखा था वह पर्जन्य है, जिस घोड़ेको देखा वह अशि है श्रीर मार्गमें जातेहए जो वैल देखा था वह ऐरावत नागराज है उस के ऊपर जो पुरुष वैठा था वह भगवान् इंद्र हैं, तूने जो वैलका गोघर खाया वह और कुछ नहीं था, श्रमृत था, वास्तवमें उसको खानेसे ही 🖟

* भाषानुवाद सहित *

हतिमिति ॥ १५६ ॥ तमुचंक उपाध्यायं प्रत्युवाच भोस्तव्वकेण में नाग-राजेन विद्याः कृतोऽस्मिन् कर्मणि तेनास्मि नागलोकं गतः ॥ १६० ॥ तत्र च मया दृष्टे खियो तेत्रेऽधिरोप्य पटं वयन्त्यी तिस्मिश्च कृत्णाः सिताश्च तन्त्रवः कि तत् ॥ १६१ ॥ तत्र च मया चकं दृष्टं हार्यारां पट् चैनं कुमाराः परिवर्त्तयंति तद्धि कि पुरुषश्चापि मया दृष्टः स चापि कः इष्टब्रशांतिप्रमाणी दृष्टः स चापि कः ॥ १६२ ॥ पथि गच्छता च मया

(84)

अध्याय]

महाभारत श्रादिपर्व # (33) बोऽरवः लोग्निः य ऋपसस्त्रया पथि गच्छता रष्टः स पेरावतो ना-गराद्॥ १६६॥ यहचैनसधिक्छः पुरुषःस चैवःयदिष ते भित्ततं तस्य इत्यभस्य पुरीपं तद्वृतं तेन खल्वसि तस्मिन्नागभवने न व्यापन्न-एत्वातु ॥ १६७ ॥ स हि अगवार्तिदो ममसखात्वदनुक्रोशादिममनुष्रहं इतवान् तस्मात् कुरवले गृहीत्वा पुनरागतोऽसि ॥१६=॥ तत् सौम्य गरयतामनुजाने भवन्तं श्रेयोऽवाण्स्यसीति स उपाध्यायेनानुजातो अनवातु चंकः कुद्धस्तक्तं प्रतिचिकीर्षमाणो हास्तिनापुरं प्रतस्थे१६६ त हास्तिनपुरं प्राप्य न चिराहिप्रसत्तमः। समागच्छत राजानमृतंको जनमेजयस् ॥ १७० ॥ पुरा तचशिलासंस्थं निवृत्तमपरोजितस् । स-न्यविक्वियतं बहु। समंतान्मंत्रिभिर्द्धतम् ॥ १७१ ॥ तस्यै जयाशिषः एव वयात्यायं प्रमुख्य सः। उदाचैनं वचः काले शब्दसम्पन्नयागिरार्७२ रोचंक त्याक। फ्रान्यस्मिन् करणीये तु कार्ये पार्धिवसत्तम। वाल्यादि-बान्यरेव त्वं कुक्ये नुपलक्तम ॥ १७३ ॥ सौतिरुवाच । एवमुकस्त विदेश न राजा जनसेलयः। छार्चयित्वा यथान्यायं प्रत्युवाच हिजोत्तमम्॥ १७४॥ तननेक्य उवाच । जामां प्रजानां परिपालनेन स्वं चत्रधर्म परिणक्तयामि। यस हि में कि करणीयमच येनासि कार्येण समागतस्वम त् नावलोक्तें नए नहीं हुना ॥ १६५-१६७ ॥ वह भगवान् इंद् मेरे सिन ह. उन्होंने होरे जवर द्यालु होकर यह छडुप्रह किया था, त्रव ही तु इन कुएउलीकी सेकर नागलोक्स लाटकर यहाँ श्रासका है ॥१६=॥

है लीम्ब । जब म तुक्षे यावा देता हूँ कि-तू अपने घरको जा, तेरा तह्याज होना, एवने गुन्हे आधा देनेपर, कोधमें सराहुआ उत्तहतक्रक ते वहता हैनेपर, कोधमें सराहुआ उत्तहतक्रक ते वहता हैनेपर वहता हो साहुलां ते हैं के उत्तहता है वहता हुए कोधमें अप हिन्दा ॥ १६६ ॥ आहुलां से छेड़ वह उत्तक वहत ही सीध हिस्तनापुरमें आपहुँ जो और स्कृतिका (है, कारावा) के अपर विजय पानत और छेड़ विजय पानेवाले राजा जन्नेजयले किला।१००।१०९॥और पहिले नीतिक ग्रनुलार उत्त राजा जन्नेजयले किला।१००।१०९॥और पहिले नीतिक ग्रनुलार उत्त राजा जन्नेजयले किला।१००।१०९॥और पहिले नीतिक ग्रनुलार उत्त राजा जन्नेजयले किला।१००।१००।१०९॥और पहिले नीतिक ग्रनुलार उत्तर उत्तर जीविक प्रमुख्य के सामपर श्वास कारा।१००॥विक्ष के सामपर व्यास के सामपर व्यास के सामपर व्यास के हिले पाने सामपर व्यास के हिले हिले हिले के सामपर व्यास के सुक्ले प्रचन मुनकर राजा जनकेज्यने उत्तर श्री कारावाली माल्या के सुक्ले प्रचन सुक्ले उत्तर हिला।१००॥जनमें कहा किला किला हिला।१००॥जनमें कहा किला किला हिले अपने चित्रयथमें भी निसाता हूँ, किरे प्रमुख्य पुक्त करात एत्वन करके अपने चित्रयथमें भी निसाता हूँ, किरे प्रमुख्य प्रमुख ती साल प्रचन करके अपने चित्रयथमें ने निसाता हूँ, किरे प्रमुख प्रका करात एत्वन करके अपने चित्रयथमें ने निसाता हूँ, किरे प्रमुख प्रमुख ती साल करके अपने चित्रयथमें ने निसाता हूँ, किरे प्रमुख पुक्त ती साल करके अपने चित्रयथमें ने निसाता हूँ, किरे प्रमुख पुक्त ती सहस्त करना चाहिये, किला किला किये आप पूर्ण प्रमुख प्

शः भाषानुवाद सहित श (03) श्रध्याय र ॥ १७४॥ सौतिरुवाच । स प्वमुक्तस्तु नृषोत्तमेन द्विजोत्तमः पुण्यकृतां वरिष्ठः। उवाच राजानमदीनसस्यं स्वमेव कार्यं नृपते कुरुष्व।१७६। उत्तंक उवाच । तक्केण महीन्द्रेन्द्र येन ते हिसितः पिता। तस्म प्रतिकुरुप्य त्यं पन्नगाय दुरात्मने ॥१७७॥ कार्यकालं हि मन्येऽहं विधिदृष्ट्य कर्मणः। त हच्छापचिति राजन् पितुस्तस्य महात्मनः॥ १७=॥ तेन हानपराधी स द्यो द्रयान्तरात्मना । पञ्चन्वमनमहाजा वजाहत र्व इमः ॥१७६॥ बलदर्पसम्बन्धिकस्तज्ञकः पन्नगाश्रमः। श्रकार्य्यं कृतवान् पापो योऽद शत् वितरं तव ॥ १=० ॥ राजर्विवंशगोप्तारममरप्रतिमं सृपम् । थियास् काष्ट्रपपञ्चेव न्यवर्र्सयत् पापकृत् ॥ १=१ ॥ होनुमहस्ति तंपापं ज्वलितं हब्यवाहने । सर्पसन्ने महाराज त्वरितं तक्षिशीयताम् ॥ १८०॥ एवं पितु-श्चापचिति कृतवांस्त्वं भविष्यसि । मम प्रियञ्च सुमदत् कृतं राजन भविष्यति ॥ १=३ ॥ कर्मणः पृथिवीपाल मम येन दुरात्मना । विष्नः कृतो महाराज गुर्वर्थे चरनोऽनघ ॥ १८४ ॥ सीतिरवाच । पतच्छत्वा उप्रथवा कहते हैं, कि-उस श्रेष्ट राज।नेयह कहा,तथबाहागोमें उत्तम पुग्य कर्म करनेवालोमें श्रेष्ठ उत्तंकने राजासे कहा, कि-हे राजन! तुम उदार हो. इसकारण श्रपना फर्चव्य करो ॥ १७६ ॥ उत्तंकने फहा कि—हे राजेन्द्र ! तत्तकने तम्हारे पिताको मारडाला था,उन दुष्टात्मा सर्पेल तुम बदलालो ॥ १७० ॥ मेरे विचारके अनुसार विधाताने इस कामके लिये इस समयका ही श्रवसर रचा है, सो हे राजन ! महा-त्मा श्रपने विताका बदला लेनेको तुम तयार होजाश्रो, उस दुष्टात्मा तज्ञको तुम्हारे निरपराध पिताको काटा श्रीर जैसे वज्ञकी चोट खाकर बुक् नष्ट होजाता है तैसे द्वीतम्हारे पिता तरन्त गिरकर मरणको प्राप्त होनव ॥ १७= ॥ १७६ ॥ वल श्रीर घमएडसे मदोन्मत्त, सर्पाधम पापी तक्क नागने, राजर्षिवंशकी रक्ता करनेवाले देवता समान तुम्हारे पिता को उसकर कैसा दुष्कर्म किया है, एक बार स्थिर चित्तसे विचार कर तो देखो, और इतना ही नहीं किंतु कश्यप नामक एक ब्राह्मण विष उतारनेको ज्ञारहा था, उसको भी तिस पापी तत्तकने पहिचान कर पीछेको लौटादिया था ॥१=०॥१=१॥ इसकारण हे महाराज तुम शीब ही सर्पयक्षका श्रानुष्ठान करके उस पापात्माको धधकती हुई अग्निमें आहुति देदो, अब तुम शीबतासे यनके लिये तयारी करो १⊏२ हें राजन् ! पेसा करगेसे तुम्हारे पिताके वैरका वदला होजायमा छौर मेरें ऊपर भो मानों बड़ा भारी उपकार होगा, क्योंकि हे निदोंप राजन् ! मैं जव गुरुद्क्तिएको लिये कुएडल लेकर लीटा श्रारहा था उत्तसमय

(६=) * महाभारत ज्ञादिपर्व * [चौथा

तु स्वतिस्तत्काय चुकोप इ । उत्तंकवास्यह्विपा दीतोऽन्निहंविषा यया ॥ १=५ ॥ अष्टुच्छ्रत् स तदा राजा मंत्रिणस्तान् सुदुःखितः । उत्तं क्षस्यैव साक्षित्ये वितुः स्वर्गगितं प्रति ॥ १=६ ॥ तदैव हि स राजेंदो दुःवशोकाः सुतोऽभवत् । यदैव दृत्तं वितरमुत्तंकादशृणोत्तदा ॥१=०॥ इति शीमहाभारते आदिपर्येणि पौष्याच्यानं समाप्तं तृतीयोऽध्यायः ३ अस्य पौकोष्यपर्वे ।

लोमहर्पण्युत्र उत्रथवाः सौतिः पौराणिको नैमिपारण्ये श्रीनकस्य इत्रवर्तद्वादशवार्षिके जन्ने ऋगीनभ्यागतानुपतस्ये ॥१॥पौराणिकः पुराणेकतथमः च इताञ्जलिस्तानुवाच किम्भवन्तः श्रोतुमिच्छन्तिं किमहं त्रुवालीति ॥२॥तमृपय ऊचुः परमं तौमहर्पणे वच्यामस्त्वां तः प्रतिवद्वयत्ति वचः ग्रुथ्यतां कथायोगं नः कथायोगे॥३॥तत्र मनावान् कुलपतिरतु शोनकोऽनिकारणमध्यास्ते॥॥॥योऽसौ दिव्याः

क्या देद देवतालुर्स्वश्रिताः । मनुष्योरगगन्धवंकथा वेद च सर्वश्रः ॥ १ ॥ स चाप्यस्मिन्मकं सौते विद्यान् कुलपितिर्द्वितः । दक्तो धृतवतो धीमांत्रकुल्वे चारत्यके गुरः ॥६॥ सत्यवादी ग्रामपरस्तपस्वी नियतः कहते हैं, कि कैसे घोकी चाहुित देनेसे छित प्रस्वित होता है तैसे ही उस्तक है हे वस्तोंको सुनकर राजा जनसेजय तक्क नागके अपर कोवमें भरनाया छोट उस्तक सामने ही राजाने कोवमें भरकर अपने दिताके स्वर्गे हा (मृत्युकाल) के विषयमें अपने मंदियोंसे वार २

हुआ।। १८५।। १८६। श्रीरजन उसने उस्तेत्र मुखसे ही श्रपने पिता हो मरण्डो दिप्यमें सद्यो हुत्तान्त सुना तब तो राजेन्द्र उनमेजय उसी समय दुःच और शोक्षमें दूबनया।। १८०॥ पौच्य पर्योध्याय समाप्त लोमहर्यगुके पुत्र स्तरवंशी पुराण्यक्ता उत्रश्रदा, नैमिपार्ण्यमें कुल-पति शीनक म्हित्ते दारहवर्ष पर्यन्त होनेदाले यज्ञमें आयेहुए म्हिप्-योकी सेवा करनेल्ली।। १॥ पुराणोमें परिश्रम करनेवाले पौराणिक

योंकी सेवा करनेस्ते ॥ १ ॥ पुराणोंमें परिश्रम करनेवाले पौराणिक उन्नश्रकाने दोनो हाथ जोडकर उनसे कहा, कि—श्रव श्राप क्या खुमना सोहते हैं और में श्रापको कौनकी कथा सुनाज १ ॥ श्रापयोंने कहा, कि—हे सोनहर्पणके पुत्र ! हम श्रापसे परत्रक्षसंबंधी कथा क्यात्रे हैं, सुननेके लिये श्रापर हुए हमें श्रवक्षके श्रवसार उत्तम कथाएं सुकते हैं, सुननेके लिये श्रापर हुए हमें श्रवक्षके श्रवसार उत्तम कथाएं सुनाहये ॥ ३ ॥ परंतु हे खुत ! देवता और श्रसुरोंकी जिसमें कथायें हैं ऐसे दिव्यहर्सातोंके, सम्पूर्ण महास्य, सर्प और गंधवोंकी कथाओंके

हैं पेसे दिव्यहुत्तांतोंके, सम्पूर्ण महाया, सर्प और गंधवोंकी कथाओंके पूरे हाता, कुलपति, विद्वान, चतुर, व्रतधारी, बुद्धिमान, शास्त्र और आरायक वेदविययमें हमारे गुरु, सत्यवादी, शांतस्वभाव, तपस्वी, नियमसे व्रत धारण करनेवाले तथा हम सर्वोक्रमान्य कुलपति भग-

सित गुरावासनं परमधितम् । ततो पन्यसि यन्त्यां स प्रवसित हिज विस्तामः ॥ = ॥ सौतिरुवाच । प्यामस्तु गुरी तस्मिन्नुपविष्टे महात्मिति तेन पृष्टः कथाः पुग्या चद्यामि विविधाश्रयाः ॥ १ ॥ सोऽधविप्रपंभः सर्व कृत्वा कार्य्य यथाधिशि । देवान्याभिः पिनूनहिहस्तर्पत्रित्वाज्ञामा । १ ॥ एत ब्रह्मप्यः सिद्धाः प्रजासिनाः भृतवृत्ताः । यग्रयतनमा- । । १ ॥ प्रवस्तुप्रपुरः सराः ॥ १ १ ॥ भ्रमित्वस्त्र प्रवस्त्रप्रपुरः सराः ॥ १ १ ॥ भ्रमित्वस्य ॥ १ ॥ ॥ ।

षपविष्टेपूपविष्टः श्रीनकोऽधाववीदिदम् ॥ १२॥

इति शादिपर्वेणिकथावयेशो नाम चतुर्वोध्यायः ।
शौनक उदाच । पुरालुमलिल्ं तात पिता तेऽधीतवान् पुरा । किंचस्थमपि तत् सर्वमर्थोपे लोमहर्न् लो १ ॥ पुराले हि द्रधा दित्या शादिस्थाध भीमताम् । कथ्यते ये पुरास्माभिः श्रुतपूर्वाः पितृस्तव ॥ २॥
तत्र वंशास् पैते श्रोनमिस्कामि भागवम् । कथ्यस्य कथामेतां कल्याः

वान् योगस पूर्व आतुमच्छाम मानवम् । फयवस्य कथामता करवाः वान् योगक ऋषि अभी अन्निशालामं अन्निकी उपासना कर रहेतें, उन को बाद देखिये ॥ ४ — ७ ॥ प्राक्षणांमें अंष्ठ हमारे गुरु होनक ऋषि यहां आकर अपने उच्च मानव पर विराजमान होकर आपसे जो फथा वृक्तें आप उस हो कथाको कहें ॥ = ॥ उत्रअवाने कहा, कि — वृत्त अच्छा, पेसा ही होगा, वह महातमा गुरु यहां आकर अपने आसर पर वेटकर मुक्तसे प्रश्न करेंगे में तव हा नानाप्रकारकी पवित्र कथाओं कहें ॥ ॥ ॥ तद्मंतर वाह्यणोंमें अंष्ठ शोनक ऋषि शास्त्र कर करेंगे में तव हा नानाप्रकारकी पवित्र कथाओं को कहुँगा ॥ १ ॥ तद्मंतर वाह्यणोंमें अंष्ठ शोनक ऋषि शास्त्र कर की विधिक अनुसार अपने सव नित्यकारको करके अर्थात् देवको स्वार्यक्ष ऋषियों को यहाँसे देवताओं को और तर्पणांस पितरों को

वेद्श्यासजीसे सब पुराण पहेथे, है सोमहर्गण हुए ! प्रया तुम उन वेद्श्यासजीसे सब पुराण पहेथे, है सोमहर्गण हुए ! प्रया तुम उन सब शास्त्रोंको जानते हो? ॥१॥ प्राचीन इतिहासोंसे जो दिव्य कथाएं युद्धिमानोंसे शादिवंशों के इतिहास कहे हैं, यह सब हमने तुम्हारे पिता के मुखसे पहिले सुनेथे ॥२॥ उनमेंसे पहिले तो मुक्ते भुगुवंशका इति-हास सुननेकी इच्छा है, इसकारण आप उस कथाको हमसे कहिये,

[पांचवां # महाभारत श्रादिपर्व # (200) न्म अवले तव ॥ ३ ॥ स्रत उवाच । यद्धीतं पुरा सम्यक् द्विजश्रेष्टैर्महाः न्मभिः । देशस्यायनविषाश्रेयस्तैश्चापि कथितं यथा ॥ ४ ॥ यदधीतञ्च विज्ञा में सम्यक् चैव ततो मया। तावच्छ्युष्य यो देवैः सेन्द्रैः सर्षि-सक्द्र हो । ५ ॥ पिजतः प्रवरोवंशो भागवी भुगुनन्दन । इमं वंशमहं पूर्व सार्यवन्ते महासुने ॥ ६ ॥ निगदामि यथायुक्तं पुराणाश्रयसंयुतस् रेश्रमेहिर्दिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा ॥ ७ ॥ वरुणस्य कतौ जातः पानकादिति नः श्रुतम् । भगोः सुद्यितः पुत्रश्चयवनो नाम भार्गवः = चयवनस्य च दायोदः प्रमतिनाम धार्भिकः। प्रमतेरप्यभृत् पुत्रो घृता-च्यां रुरुरित्युत ॥ ६ ॥ रुरोरिप सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः । प्रमद्व-रायां धर्मात्मा तब पूर्वपितामहः ॥ १० ॥ तपस्वी च यशस्वी च श्रुत-बान् ब्रह्मविक्तमः । धार्मिकः सत्यवादी च नियतो नियताशनः॥ ११ ॥ शीनक उदाच । सृतपुत्र तथा तस्य भागवस्य महात्मनः । च्यवनत्वं परिच्यातं तन्ममाच्यय पृच्छतः ॥ १२ ॥ सौतिख्याच । भृगोः खदयिता हम ज्ञापकी कथा खननेको तत्पर हैं॥३॥ महर्षि शौनककी आहा पांकर सृतनन्द्रन उद्रश्रवाने कहा, कि-जिसमें ब्राह्मण वैशम्पायनजी मुख्य थे ऐसे उत्तम महात्मा ब्राह्मणोने, पहिले जो पुराण उत्तमताके लाथ पढ़े हो होर उन्होंने को कथाएं कही हैं उन लव कथाओंको में जानता हूँ ॥ ४ ॥ और मेरे पिता भी जिन पुराणोंकी कथाओंको पढ़े थे, उन सह क्याजांको भी मैंने उनसे भलेपकार पढ़ा है, हे महामुने भगुनन्दन | देवता, इन्द्र, ऋषि और महत्नगोंसे पजित भृगुका पंश इन्तम माना जाता है, इसकारए पहिले में तुमसे भूमिका सहितपुरा-होतें जिल्लामा भृतुकेदंशका वर्णन किया है, उसके अनुसार भृतुके दंशका इतिहाल पहिले कहता हूँ, उसकी सुनी, श्रापने सुना ही है, कि-स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीने वरुएके यक्षमें ब्रिझिसे महर्षि भग-वान् अ्यु को उत्पन्न किया था, भृगुजीका एकश्र त्यन्त प्यारा च्यवन (भार्यव) नामवाला पुत्र हुआ ॥ ५--- ॥ च्यवनका पुत्र प्रमति परम धर्मात्मा था, प्रमितिको घृताची नामक अप्सरासे रुख नामकपुत्र हुत्रा था और उठके प्रसहरा नामक खीसे वेदोंका पारगामी धर्मात्मा ग्रनक नामा पुत्र हुआ था जो कि-आपके परदादा थे,हे शौनक ! वह महा-त्मा, कॉर्चिमान्, शास्त्रों के काता, वेदणरगामी, सत्यवादी, शमदमादि युक्त और नियमानुसार पवित्र श्रत्न खानेवाले थे ॥ ६-११ ॥ शीनक कहते हैं, कि—हे सुतन दन ! मैं तुमसे पश्न करता हूँ, कि—महात्मा

भागविका चयवन नाम किस कारणसे प्रसिद्ध हुप्राथा सो मुकसे कहो ॥ १२॥ उत्रक्षवाने कहा, कि—हे भृगुनन्दन ! महात्मा भृगुकी पुलोमा

(१०१) भार्या पुलोमेत्वभिविश्रुना । तस्यां समभवद्वभौ भृगुवीर्य्यसमुद्भवः ॥ १३ ॥ तस्मिन् गर्भेऽथं संभृते पुलोमायां भगृहत्। समये समशीलिन्यां धर्मपत्न्यां यशस्विनः ॥ १४ ॥ श्रमिपेकाय निष्कान्ते सुगी धर्मभुतांवरे श्राश्रमं तस्य रत्तोऽथ पुलोमाभ्याजगाम ह ॥ १५ ॥ तं प्रविश्याश्रमं हृष्टा भृगोर्भार्थ्यामनिन्दिताम् । हञ्जुयेन लमायिष्टो विन्वेताः लमपचत ॥ १६ ॥ श्रभ्यागतन्तु तद्रज्ञः पुलामा त्याग्दर्शना । न्यमन्त्रयत वन्येन फलम्लादिना तदा ॥ १७ ॥ तांतु रक्षस्तवा ब्रह्मन् हुच्छुयेनाभिषीडितम् हृष्टा हृष्टमभृदाजन् जिहीर्ष्स्तामनिन्दिनाम् ॥ १= ॥ जातमित्यव्यीत् कॉर्य्य जिहीर्यमुदितः शुभाम् । सा हि पूर्व बृतातेन प्लोम्ना तु शुचि-स्मिता ॥ १६ ॥ तांनु प्रादात्पिता पश्चाद्भूगवे शाखवनदा । तस्य तत् कितिवपं नित्यं हृदि वर्त्तति भार्गव ॥ २० ॥ इद्मन्तरमित्येवं हर्त्तं चक्ते नामवाली परमप्रसिद्ध स्त्रीथी, जो कि—उनको प्राणांसे भी श्रधिक प्यारा थी, वह भुगुके वीर्यसे गर्भवती हुई ॥ १३ ॥ कीर्त्तिमान् भुगुकी समान स्वभाववाली धर्मपत्नी प्लोमा गर्भवती थी उसी समय, हे शीनक ! धर्म पालनेवालोंमें श्रेष्ठ भुगुजी, एक दिन उसकी श्रकेली छोड़कर स्तान करने को बाहर गए, इतने ही में एक पुलोमा नामका राज्ञस उनके ब्राधम के समीप ब्रापहुँचा ॥ १४ ॥ ६५ ॥ और ब्राधम में घुसककर शुद्ध चरित्रवाली भृगुकी भार्या पुलोमाको देखकर कामा-तर होने से मुर्छितसा होगया ॥ १६ ॥ परन्तु उस समय स्वरूपवती पुलोमाने उस श्रभ्यागत राज्ञसका वनके फल मुल श्रादिसे स्वागत किया ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! कामसे पीडित हुआ वह राजस उस समय उसको देखकर प्रसन्न हुआ और है राजन ! सब प्रकारसे उस पुलोमा को हरकर लेजानेकी इच्छा करने लगा ॥ १= ॥ चलो मेरा काम वन-गया, ऐसा कहकर उस सुन्दर स्त्रीको एरण करना चाहने वाला वह राज्ञस प्रसन्न हुआ, पहिले पवित्र हास्यवाली उस पुलोमा क के साथ इस राज्ञसने विवाह करना चाहा था॥ १६ ॥ परन्तुं कन्याके पिताने उसको न देकर शाखकी विधिके अनुसार भृगुके साथ विवाह कर-दिया था, हे भार्गव ! उस राज्ञसके मनमें तो नित्य यही पाणी विचार हुन्रा करता था, कि-पुलोमाको हरकर लेजाऊँ, ऐसा झच्छा श्रवसर वार २ नहीं मिलसकता, ऐसा विचार कर उसने उस समय ही उस ह बाल्यावस्था में पुछे।माके विताने एक समय जब पुछोमा रोरही थी, तब भय दिखाकर इसको चुराने के छिये कहा कि-अरे राक्षस ! इसको छेजा ' जिस समय

उन्होंने ऐसा कहा उससमय राधम समीपमें ही था,उसने आकृत पूर्विमाको देशिया

इसकारण वह कन्या राक्षसको दी हुई कड़ाई।

सनस्तदा । प्रथाग्निशरणेऽपश्यज्ज्वलन्तं जातवेदसम् ॥२१॥ तमपृच्छ-त्ततो रत्तः पावनं ज्वलितं तदा । शंस से कल्य भाव्येयमण्ने पृच्छे ऋतेन दै ॥ २२ ॥ सुद्धं त्वमसि देवानां वद पावक पृच्छते । मया हीयं चृता पर्वभार्क्यार्थे वरवर्णिनी ॥ २३॥ पश्चादिमा पिता प्रादाद् भगवेऽनृतका-रिए। लेयं यदि वरारोहा अगोर्भार्य्यारहोगता॥ २४॥ तथा सत्यं समा-खयाहि जिहीर्षाम्याश्रमादिसाम् । स मन्युस्तत्र हृदयं प्रवहन्निव तिष्ठति सत्पूर्वभार्व्याम् यदिमां ४गुराप सुमध्यमाम् ॥२५ ॥ सौतिरुवाच । एवं रक्षतमामन्त्र्य ज्वलितं जातवेदलम्। शंकमानं भगोभीर्या पनः पनर-पृच्छत ॥ २६ ॥ त्वमग्ने सर्वभृतानायन्तर्चरसि नित्यदा । सान्निवत पुरस्पारेषु सत्यं बृहि कवे वचः ॥ २० ॥ सत्पूर्वापहता भार्या भगुणा बृतकारिला । सेयं यदि तथा में त्यं सत्यमाख्यातुमईसि॥२=॥श्रुत्वा त्वत्तो भूगोर्भार्थ्या हरिष्यास्याधसादिसास् । जातवेदः पश्यतस्ते वद

को हरनेका निश्चय किया, परन्तु इतने में ही उलकी दृष्टि यहाशाला की श्रीरको गई और श्रीनदेवको प्रज्वसित देखा॥ २०॥२१ ॥ वस उसी खमय राज्ञलने प्रव्यतित छाझिदेवले तृक्षा कि-हे छान्तिदेव ! सुभा से कहो कि-यह किसकी भार्या है, में प्रापसे सची २ वात वृक्ता हूँ ॥ २२ ॥ हे अग्निदेव ! तुम देवताओं के मुख हो, इलकारण मुक्षे मेरे प्रश्नका उत्तर दो, पहिले तो इस धुन्दरीको आर्या वनानेके लिये मैंने ही बरा था॥ २३॥ परन्तु पीछेसे उसके मिथ्यावादी पिताने मुगुके साथ विवाह करदिया है, हे अग्निदेव ! तुम सुभी सत्य २ वर्ताओ. यह एकान्तमें खड़ीहुई सुन्दर नितम्बोबाली स्त्री यदि भगुकी भार्या है तो मैं इस धांश्रम में से इसको हरकर लेजाना चाहताहूँ,सुन्दर कटि-वाली और पहिले मेरे साथ वरी हुई इस पुलोमाके साथ भगुने विवाह करितया है, जबसे मैंने यह बात छुनी है तबसे क्रोध मेरे हृदय को भस्म करता हुआ हृदय में चला हुआ है ॥ २४ ॥ २५ ॥ जप्रश्रवा कहते हैं, कि—इस भृगुकी स्त्रीके विषयमें क्या उत्तर देना चाहिये, ऐसी शंकामें पड़ेहुए पज्वलित अग्निदेवसे राज्ञस वार२ वृक्ष-नेलगा कि-॥ २६॥ हे अञ्चिदेव ! तुम नित्य सकल प्राणियोंके अन्तः करणमें ही निवास करते हो और पुराय तथा पापके साची हो इस कारण हे अभिदेव ! आपको मेरे प्रश्नका ठीक २ उत्तर देना चाहिये ॥ २० ॥ जिसको पहिले में साग्दान रूपसे श्रपनी स्त्री करसुका हूँ, उसको पीछेसे अनुचितकाम करनेवाले मृगुने हरण करलिया है, सो हे अग्ने ! यदि यह स्त्री मेरी होय और भ्रुने यदि असत् काम किया

होय तो आपको सत्य कहदेना चाहिये॥ २८॥ आपसे उत्तर मिल-

अध्याय] # भाषानुवाद सहित # (१०३)

सत्याद्विरं मम ॥ २६ ॥ स्त डवाच । तस्येतह्वचनं श्रुत्वा सत्ताधिहुँ :स्वितोऽभवत् । भीतोऽन्त्राच शाषाच भृगोरित्यव्रवीच्छ्वनं: ॥३०॥ द्याश्च । स्वाच । स्वया चृता पुलोमेयं प्व दानवनन्दन । कित्वियं विश्विता पूर्व मनवत्र चृता स्वया ॥३१ ॥ पिता तु भृगवे दत्ता पुलोमेयं यशिका । मनवत्र नत्त चृत्वं चरलोभान्महायद्याः ॥ ३२ ॥ प्रधेमां वेदसुष्टेन कर्मणा विधिष्वंकम् । भार्यामृरिपर्वु गुः प्राप मां पुरस्कृत्य दानव ३३ स्विमित्यवण्याम् । स्वयां मृरिक् गुः प्राप मां पुरस्कृत्य दानव ३३ स्वयमित्यवण्याः ॥ १४ ॥ हत्यादि पर्वाणि पोलोमे पद्यमोऽप्यायः ॥ ५ ॥ स्वितिक्वाच । द्यन्तिय प्रवाद प्रविण पोलोमे पद्यमोऽप्यायः ॥ ५ ॥ स्वितिक्वाच । द्यन्तिय प्रस्ता । स्वावते स्वयः श्रुत्वा तह्न् । प्रकृत्ति । मुस्त्व वराष्ट्र कर्पेण मनोमाक्तरंद्सा ॥१॥ ततः स्व गर्मों नियसन् कृत्वी भूगुकुलो-

द्वह । रोपान्मानुश्च्युतः कुत्त्वेश्च्यवगस्तेन सोऽभवत् ॥ २॥ तं च्युन जाते पर में इस खाश्रममें से भूगुकी भार्याको ध्यापके सामने ही हरकर हो जाते पर में इस खाश्रममें से भूगुकी भार्याको ध्यापके सामने ही हरकर लेजाऊँगा. इसकारण है श्रम्भिद्व । नुम मुक्ते सचा उत्तर दो ॥ २६ ॥ इत्रम्भवा कहते हैं, कि-रात्तसके पेसे वचनांको जुनकर सत्याचिदेव (श्रान्त) यहत खिलाहुए, पर्योक्ति—यदि भूगुके पत्तकी वात कहते हैं तब तो मिथ्याभाषणुको पातकका भय स्वानता है श्रोर यदि सची बात कहते हैं तो भूगुशाप देवेंने, इसका मय है, इसकारण उनहोंने धीरेसे

उत्तर दिया। ३० ॥ प्रशित कहा, कि से दानवनन्दन ! इस पुलोमाको पिहले तुमने वरा था, यह बात उन्होंने बहुत ही धीरेले कही थ्रीर फिर जोरसे स्पष्ट करके कहनेलमें कि—परंतु तुने पिहले शास्त्रोक्त विधिसे तो इसको नहीं विवाहा था, उत्तके वशस्वी पिताने उक्त स सर मिलजानेके लोससे उस दिनतक तेरे साथ वेदविधिसे विवाह नहीं किया था, किंतु उन्होंने पीछुसे अपनी स्त्रीमाव्यती पुत्री पुलोमा स्मु में से साथ शास्त्रविधिसे विवाह दी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ह दानव भूगुमृषिने मेरे समक्ष वेदिक कर्मनी रीतिसे विधिपूर्वक इस पुलोमाक लाथ विवाह किया है श्रीर में इस वातको जानता हूँ में असस्य वोलना

उन्नश्रवा कहते हैं कि—हेबाहाण ! श्रविके ऐसे वचन खुनकर उस दुष्टात्मा राज्ञसने वराहका रूप धारण करा श्रीर मन तथा पवनके समान वेगसे उस पुलोमाको हरकर लेगया, हेम्मुवंशी उस्त समय पुलोमाके पेटमेंका भृगुका गर्भ कोधके कारण माताकी कोस्त्रमेंसे वाहर निकत पड़ा. इसकारण वह व्यवन (खुआ हुआ) कहलाया ॥ १ ॥२

नहीं चाहता तथा हे दानवश्रेष्ट! इस जगत्में कभी श्रसत्यकी प्रतिष्ठा भी नहीं होती ॥ ३३॥३४॥ पांचवां श्रष्याय समाप्त ॥ ५ ॥ * ॥ *॥ नातुरुदराज्युतमादित्यवर्चलम् । तद्रको भस्मसाद्गतं पपात परिमुच्यताम् ॥ ३॥ सा तमादाय सश्रोणी ससार भृगुनन्दन । च्यवनं भागंच
पृत्रं पुत्तोमा दुःखसृच्छिता ॥ ४॥ तां दद्रशं स्वयं त्रह्मा सर्वलोकपितामहः । उद्दन्ती वाष्पपूर्णांची भृगोर्भार्थ्यामनिन्दिताम् ॥ ५॥ सान्त्वयामास भगवान् चर्म् ब्रह्मा पितामहः । अशुविन्दृद्भवा तस्याः प्रावर्त्तत
महानदी ॥ ६॥ अञ्चनमाश्रिता तस्या भृगोः पत्न्यास्तपस्थिनः । तस्या
मार्ग छत्तवती हृप्या तु सरितं तदा ॥ ७॥ नाम तस्यास्तदा नद्याश्रक्षे
लोकपितामहः । वयूसरेति भगवांश्चयत्वस्याश्रमं प्रति ॥ = ॥ स एयं
स्वयनो जले भृगोः पुत्रः प्रतापवान् । तं द्र्द्या पिताम । स्व पुत्रम् । स्व प्रत्रम् । स्व प्रत्रम्या । स्व प्रत्रम् । स्व प्रत्रम्या । स्व प्रत्रम् । स्व प्रत्रम्य । स्व प्रत्रम् । स्व प्रत्रम् । स्व प्रत्रम् । स्व प्रत्यम् ।

ज्ञला ही, राज्ञस पुलोमांको छोडकर पृथ्वीपर गिरगया श्रीर देखते २ वह जलकर भस्म होगया॥ ३॥ तदन्तर दुःखले व्याकुल हुई श्रीर सुन्दर नितम्बीवाली पुलोमा, भृगुकेपुत्र च्यवनको लेकर रोती र तहांसे आगको चलदी ॥ ४॥ सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने स्वयं भुगुकी सदाचारवती स्त्रीको श्राखाँमें श्रांस् भरे रोतीहुई देखा ।। पू ॥ तद पितातह भगवान ब्रह्माजीने पुत्रवधू पुलोसाको शांत किया प्रतोमा जो रोई थी, उलके बाँजुड़ोंकी हिंदुशोंमेंसे एक वड़ीमारी नदी तहने लगी॥६॥ और वह नदी तपस्यी भगवान् भ्युकी धर्मपत्नी के पीछै पगर पर वहने लगी, उस को देखकर उससमय सब लोकों के पितामह भगवान बहाजीने उस नदी को अपनी पुनवधूके पग २ पर पीछे जाती हुई देखकर उसका 'वधुसरा' नाम रेक्खा, यह नदी च्यवन ऋषिके आश्रमके पास श्रव भी बहती है ॥ = ॥ इराप्रकार अगवान् अगुक्ते प्रतापी पुत्र व्यवन ऋषि उत्पन्न हुए॥ ६॥ पिता भृगु ऋषिने अपने पुत्र व्यवनको तथा अपनी लंदरी रजीको देखते ही कोधमें भरकर अपनी रजी पुलोमासे वृक्षा ॥ १० ॥ भृगु वोले, कि हरण करना चाहने वाले उस राजसको तेरा परिचय किसने दिया यह वता, हे मधुर हास्यवाली स्त्री ! वह राच्छ तो इस बातको नहीं जानता था, कि-तू मेरी मार्या है॥ १०॥ तो ऐसा कौन है कि-जिसने उस राज्ञसको तेरा पता दिया, यह त् सुकसे कह,

पर्वोकि-में अभी उत्तको कोधके कारणशाप देना चाहताहूँ, ऐसा कीन है जो सेरे शापसे न डरता हो ? और यह अपराध किसने किया ?

(foy)

च्छाम्यहं रुषा । विमेति को न शापान्मे कस्य चायं व्यतिक्रमः ॥ ११ ॥ पुलोमोवाच । श्रानिना भगवंस्तस्मे रत्तसेऽहं निवेदिता । ततो माम-नयद्वतः कोशन्तीं कुररीमिव ॥ १२ ॥ साहं तव खुतस्यास्य तेत्रसापरि-मोसिता । भस्मोश्नेत् न तद्वतो मामुत्स्न्य पतात व ॥१३ ॥ सृत ववाच हित शुत्वा पुलोमाया भृगुः परममन्युमान् । शशापानिन प्रतिकृष्टः सर्व-भन्नो भविष्यस्ति ॥ १४ ॥ पोलोमेऽनिशाषः प्रग्नोऽत्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

सौतिरवाच । शासन्तु भुगुणा विहिः कृदो वाययमथाव्रवीत् । किमिद्रं साहसं ब्रह्मन, कृतवानिस मां प्रति ॥१॥थर्मे प्रयतमानस्य सत्यञ्च बद्दाः समम् । पृष्ठो यद्वबु वं सत्यं व्यिमचारोऽत्र को मम ॥२॥ पृष्ठो हि साही यः साहयं जानावोऽप्यन्यथा वदेत् । स पृर्वानातमः सत्त कुले हन्यातः थापरान् ॥॥यञ्च कार्व्यार्थतस्वको जानानोऽपि न भापते। सोरि तिनव पापन शिण्यते नात्र संव्याः ॥ ४॥ शकोऽहमिपि श्रातं त्यां मान्यानन

पुलामा कहनेलगी, फि-हे भगवन । श्रामिने उस राज्ञसको मेरा परिचय दिया था, तब वह राज्ञस इटीड्रॉकी समान रोतीहुई मुभै बड़े वेग
के साथ त्राश्रममें से हरण करके लेगय था और में इस तुम्हारे पुत्रके
कारण उस राज्ञसके हाथसे छूटी हैं, वह राज्ञस इस वालकको देखते
ही मुभी गिरती हुई छोड़कर पृथ्वीपर गिरपड़ा श्रोरागरते ही जलकर
भरम होगया ॥ १२ ॥१३ ॥ उत्रश्रवा कहते हैं, कि—पुलोमाके मुखसे
इसप्रकार बुत्तान्तको छुनकर भृगुको वड़ा कोध चढ़श्राया श्रोर उन्होंने
ग्राति कोधमें होकर श्राप्तिको शाप दिया, कि—जा तृ सर्वभित्ती होजावगा॥ १४ ॥ इति छुठा श्रध्याय समात ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
अश्रवा कहते हैं, कि—भृगुक शाप देने पर श्राप्ति कोधमें छाकर
सुगु श्रिप्ति कहा, कि—हे श्राह्मण मेरे अपर यह साहस पर्यो किया?
मैं धर्मके विषयमें उद्योग किया करताहूँ, सत्य श्रोर यथार्थवात कहता
हूँ, इसकारण पुलोमाने जब मुभले नुभता तब मैंने उससे सत्य वात

हुत राज में मेरा क्या अपराध है ? ॥ १ ॥ २ ॥ यदि कोई साझी किसी वातको जानता हो श्रीर उससे जब वह वात वृक्षोजाय तब यदि वह मिथ्या वोले तो उसके कुलको वीतीष्ठुई छः पीढ़ी श्रीर श्रामेको होने वालीं सात पीढ़ियाँका नाश होताहै श्रथांत् वह नरकमें पड़ताहै ॥३॥ ऐसे ही श्रीर किसी भी कामको जाननेवाले मनुष्यके पास व्कानेको जाने पर यदि वह ठीक वात नहीं कहता है किंतु उलटी वात वताता

है नो वह भी इसही पापका भागी होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ में भी तुम्हे शांप देसकता हूँ, परन्तु प्राह्मल् मेरे मान्य हैं इसकारण में तुम्हें शांप नहीं देता हूँ हे ब्राह्मल्!तुम धर्मको जानते

पौर्णमास्त्र्य देवानां पितुभिः सह ॥८॥देवताः पितरस्तस्मात्पितरश्चापि देवताः । एकीभृताश्च दृश्यन्ते पृथक्त्वेन च पर्वस् ॥ ६ ॥ देवताः पित-रश्चैव भुवजते मिय यद्धतम् । देवतानां पित्णाञ्च मुखमेतदहं स्मृतम् ॥ १० ॥ श्रमावास्यां हि पितरः पौर्णमास्यां हि देवताः । मन्मुखेनैव हुयन्ते भुक्जते च हुतं हुविः। सर्वभक्तः कथं तेषां भविष्यामि मखं त्वहम् ॥ ११ ॥ सौतिरुवाच।चिन्तयित्वा ततो वहिश्चके संहारमात्मनः हिजानामग्निहोत्रेषु यज्ञसत्रक्षियास च।१२। निरोङ्कारचपर्काराः स्वधा-स्वाहाविवाजताः।विनाञ्जिना प्रजाः सर्वोस्तत श्रासन् सुदुःखिताः॥१३॥ घ्रथर्षयः समुद्धिग्ना देवान् गत्वाबुवन्वचः। श्रग्निनाशात् क्रियाभ्रंशा-हो. तथापि में जो कुछ कहता हूँ, उसको सुनो ॥ ५ ॥ भें गाईपत्य और दत्तिणाग्नि आदि मुत्तियोंमें नित्य अग्निहोत्रोंमें, यज्ञोंमें, विवा-हादि कियाओं के होमोमें और अन्य यहाँ में भी योगसिद्धिके प्रभावसे द्यपने बहुतसे रूपोंसे निवास करके रहता हूँ ॥ ६ ॥ श्रीर वेदमें कही हुई विधिसे सुक्षमें जो हवि होमाजाता है उससे देवता और पितर तृप्त होतेहैं ॥ ७ ॥ श्रक्षिमें होमाहुश्रा सोम, घी श्रीर दूध सकल देवता श्रीर पितरोंका शरीर बनजाताहै, देवताश्रोंको पितरोंके साथ ग्रमा-वास्य और पौर्णमाल नामक यहाँ में समान भाग है, इसकारण देवता ही पितर हैं, और पितर ही देवता हैं, इसप्रकार एकरूप देखे जाते हैं परन्तु वह पर्वणियोमें पृथक् २ प्रतीत होते हैं ॥ = ॥ १ ॥ सुक्रमें जो होमाजाता है वह देवता श्रीर पितरोंको पहुँचता है, क्योंकि-में देवता श्रीर पितरोंका सुख मानाजाताहूँ ॥ १० ॥ श्रमावास्यांके दिन पितर और पौर्णमालीके दिन देवता मेरेमें जो होमाजाता है उसको मेरे मुखसे ही खाते हैं इसकारण सर्वभन्नी होनेपर में उनका मुख कैसे होसक्ंगा अर्थात देवता और पितरोंका मखक्त होनेपर में पवित्र छौर छापवित्र चाहे जिस पदार्थको कैसे भन्नण करसक्या ॥ ११ ॥ उन्नश्रवा कहते हैं, कि-इसप्रकार कहनेके ज्ञनन्तर ग्रन्निदेव सब स्थानों ले अन्तर्भान होगए ॥ १२ ॥ ब्राह्मणीके अग्निहोत्रोंमें, यज्ञोंमें तथा सभा आदिकी कियाओंमें ॐकार, वषट्कार, स्वाहा, स्वधा आदि बंद होगए सब प्रजा भी अग्निके अन्तर्घान होनेसे दुःखित होगई, ॥ १३ ॥ घव-डाएइए ऋषि देवताश्चीके पास गए श्रीर इसप्रकार कहनेतारे कि-

सहाभारत द्यादिपर्व

ब्राह्मण् मम। जानते ऽपि च ते ब्रह्मन् कथयिष्ये तिवोध तत् ॥५॥यागेन वहुधात्मानं कृत्वा तिष्ठामि मूर्त्तिषु । अन्निहोत्रेषु अत्रेषु क्रियासु च मखेषु च॥६॥ चेदोक्तेन विधानेन मयि यद्भूयते हविः। देवताः पितरक्षेय तेन हप्ता भवन्ति वै॥०॥यापो देवगणाः सर्वे आपः पितगणास्तथा। दंशिक्ष

(303)

िसातवां

अभाषानुवाद सहित (800) इरान्ता लोकास्त्रयोगघाः॥१४॥ चिद्ध्यमत्र यत्कार्य्यं न स्वारकालान्ययो यथो । अथर्पयक्ष देवाक्ष ब्रह्माण्मुपनम्य तु ॥१५॥ अग्नेरावेदयञ्छापं कियालंहारमेव च । भृगुणा वै महामाग श्रप्तोऽग्निः कारणान्तरे॥१६॥ कथं देवमुखो भृत्वा यशभागात्रमुक्तथा। हुतभक् सर्वलोकेषु सर्व भक्तत्वमेष्यति ॥ १७ ॥ श्रुत्वा तु तहचस्तेपामग्निमाहय विश्वकृत् । उवाच बचनं शुक्लं भूतभावनमञ्ययम् ॥ १= ॥ लोकानामिह् सर्वेपां त्यं कत्ती चान्त एव च । त्यं घारयसि लोकांस्त्रीन् कियाणाञ्च प्रवर्त्तकः ॥ १९ ॥ स तथा कुरु लोकेश नोच्छिचेरन्यथा क्रियाः। कस्मादेवं विमु-हस्त्वमीश्वरः सन् हुताशन ॥ २० ॥ त्वं पवित्रं सदा लोके सर्वभतग-तिश्च हु । न त्वं सर्वशरीरेण सर्वभक्तंवमेष्यसि ॥ २१ ॥ श्रपाने हार्चिपो यास्ते सर्वं भोदयन्ति ताः शिखिन् । अव्यादा च तनुर्ध्या ते सा सर्वं भन्नियप्यति । यथा सूर्य्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वं शुचि विभाव्यते ।। २२ ॥ तथा तद्दिंभिर्द्ग्धं सर्वं श्चि भविष्यति । त्वमन्ते परमं तेजः स्वप-हे निर्दोप देवताओं ! शग्निदेव अन्तर्थान होगए हैं इसकारण हमारी नित्यकी अभिदोत्रादि कियाएं वन्द होगई, अव तिलोकीके प्राणी वया करें ? हमारी कुछ समभमें ही नहीं खाता॥१शासी खब खाप जराभी विलम्ब न फरके इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो सो उपाय करिये तद-नन्तर ऋषियों और देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर ॥१५॥ अन्निके शापका बत्तान्त तथा कियाश्रोंके वन्द होनेका समाचार निवेदन किया हे महोसाग ! किसो कारणसे भृगुजीने अग्निकोशाप देदिया है ॥१६॥ परन्त श्राम्त देवमुख है और यहके भागमें प्रथम भोका है, वह सब लोकोंमें सर्वभक्षी कैसे होसकता है ? देवताशांकी इस वातको सनकर विश्वके कत्ता ब्रह्माजीने श्रानिको श्रपने पास बुलाया शौर प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले श्रविनाशी श्रग्निके प्रति कोमल वचनसे कहा कि-है अने ! तू ही सब लोकोंका कत्ता और हत्ती है, सब लोकोंको धारण करने वाला भी त ही है और क्रियाओंका अवर्त्तक भी त हो है, इस कारण हे लोकेश । ऐसा वर्त्ताव करो कि-जिससे कियाश्रोंका नाश न होय हे हुताशन! तुम महासमर्थ होकर ऐसे मृढ़ कीसे होगए हो ? ॥ १७।२० ।। तुम जगत्में सदा पित्र हो श्रीर जगत्में सव प्राणियों की गति भी वास्तवमें तुम ही हो इसकारण तुम सब शरीरों सेसर्व-भर्जा नहीं होश्रोगे॥२१॥ हे शिखिन् ! तम्हारे श्रपानदेशमें जो ज्वालाएं हैं वह सबका भन्नण करेंगी, तथा. मनुष्यादिका मांस भन्नण करने-वालीं तम्हारी जो मूर्तियें हैं वह सबका भन्नण करेंगी श्रीर जैसे सर्व की किर्ल पड़ने से सब बस्तुएं पवित्र होजाती हैं तैसे ही तम्हारी (१०=) * महाभारत श्रादिपर्व *

भावाद्विनिर्गतम् ॥२३॥ स्वतेजसैव तं शापं कुरु सत्यसूषेविभो । देवानं चातमनी भागं गृहाण् त्वं सुखे हुतम् ॥ २४ ॥ सौतिव्वाच । एवम-स्वित तं विहः प्रत्युवाच पितामहम् । जगाम शासनं कर्त्तं देवस्य परमेष्ट्रिनः ॥ २५ ॥ देवपंयस्य सुदितास्ततो जम्मुर्यथानतम् । ऋष्यस्य यथापृत्वं कियाः सर्वा प्रचित्रते ॥२६ ॥ दिवि देवा सुसुदिते सूतसङ्खास्र लौकिकाः । स्रिनस्य परमां प्रीतिमवाप हतकलमपः ॥ २७ ॥ प्यं स भगवाञ्चापं लोभेऽसिसृं गुतः पुरा । प्यमेष पुरावृत्तं इतिहासोऽनि शापजः । पुलोम्नश्च विनासोऽयं च्यवनस्य च सम्भवः ॥ २० ॥ प्रापजः । पुलोम्नश्च विनासोऽयं चयवनस्य च सम्भवः ॥ २० ॥

स्त उचाच। स चापि च्यवनो ब्रह्मच् भागेबोऽजनयत् सुतम्। सुक-न्यायां महात्मानं प्रप्ताते दीप्ततेजसम्॥१॥प्रमतिस्तु रहे नाम घृताच्यां समजीजनत् रुषः यसङ्ग्यान्तु युनसं समजीजनत्॥२॥ तस्य ब्रह्मच्

ज्यालाओं में जलाहुआ सब पिवन हो जायगो, हे अन्ते ! तुम अपने प्रभावसे ही उत्पन्न हुए परमतेन हो ॥ २२-२३ ॥ इसकारण हैव्यापक अने ! अपने तेज के प्रभावसे ही तुम ऋषिके शापको सच्चाकर दिखा- को और मुखमें हो मेहुए देवताओं के तथा अपने भागको तुम अहण्य करो ॥ २४ ॥ उन्नथान कहते हैं, कि तदनन्तर अग्निने पितामह ब्रह्माजी से कहा, कि — श्रच्या ऐसा ही होगा, किर अग्निदेव ब्रह्माजीकी आज्ञा- हुसार वर्चाव करनेको चलेगए ॥ २५ ॥ और देवता तथा ऋषि भी प्रसन्न होतेहुए जहां से आये थे तहां को चलेगए, ऋषिगण पहिले की समान अपनी सव कियाएं और यह करनेलगे ॥ २६ ॥ स्वर्गमें देवता प्रसन्न हुए, जगत्के सव प्राणियोंने भी परम श्रानन्दपाया और पाप रहित हुआ अग्नि भी परम आनन्दको प्राप्त हुआ, ४२० ॥ इसम्मकार हे

रहित हुआ छिनि भी परम झानन्दको प्राप्त हुझा ४२०॥ इसप्रकारहे भगवन् ! पिहले झिनने भूगुसे शाप पाया था और अगिनके शापके विषयका इसप्रकार पाचीन कुत्तान्तका इतिहास है, कि-जिसमें पुलोमा राज्ञसका विनाश तथा च्यवनके जन्मकी कथा झाती है॥२८॥ सातवां प्रध्याय समात॥ छु॥ छु॥ छु॥ छु॥ छु॥ छु॥ छु॥ छु॥ छु॥ उज्रश्चवा कहते हैं, कि—हे बाह्यलु ! सुकन्या नामकी अपनी खीसे

उत्रश्रवा कहते हैं, कि—है ब्राह्मण ! सुकन्या नामकी अपनी स्त्रीसे भृगुके पुत्र च्यवनके महात्मा और महातेजस्यी प्रमति नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥१॥ प्रमतिने घृताची अप्लरासे रुठ नामके पुत्रको उत्पन्न किया और रुठने प्रमहरासे युनक नामक पुत्रको उत्पन्न किया था, जो महावलवान तीब ब्रतधारी, यशस्यी और भृगुके सव पुत्रोमें प्रधान पुष्रप् था, वह जन्मकोलसे ही तीब तपस्या करनेलगा, इस

प्रधान पुरुष था, वह जन्मकालसे ही तीव्र तपस्या करनेलगा, इस कारण सर्वत्र उसका यश ब्रटल होगया था, हे ब्राह्मणों । उस महा-

 भाषानुवाद सहित श (303) अध्याय ी रुरोः सर्वं चरितं भूरितेजसः । विरनरंग प्रवन्यामि नच्छ् गुन्यमशेपतः ॥ ३ ॥ ऋषिरालीन्महान् पूर्वं नगोविधासमन्वितः । स्थलकेश इति ख्यातः सर्वभ्रतिहते रतः ॥ ४ ॥ प्राह्मिश्चेव काले न् संनकायां प्रजिध-वान् । गन्धर्यराजो विप्रपे धिश्यावसुरिति स्मृतः 🙌 अप्सरा भेनका तरुव तं गर्मे भगुनन्दन । उत्सत्तर्जं यथाकालं स्थलकेशाश्रमं प्रति ॥६॥ उत्सन्य चैव तं गर्भ नवास्तीरं जगाम सा। श्रन्सरा मेनका ब्रह्मशि-र्दयो निरपन्नया ॥ ७ ॥ कन्यासमरगर्भागां ज्यलन्तीमिन च श्रिया । तान्द्रशं लगुन्युष्टां नदीनीरे महानृषिः ॥ = ॥ स्थुलकेशः स तेजस्त्री विजने वन्ध्यक्तिताम् । स तां ह्या तदा कन्यां स्वृतकेको महाद्विजः ॥ ६ ॥ जञाह च म्विञ्रेष्ठः छुपार्थिष्ठः पुषीप च । प्रयुधे सा वगरीहा तस्याश्रमपदे मुभे ॥ १० ॥ जानकाद्याः क्रियाधारमा विधिपूर्वं यथा-क्रमम्। स्थूलकेशो सदाशागळकार सुमहाद्वविः ॥ ११ ॥ प्रमदाभ्यो वरा सा न् सरबद्धपगुणान्यिना । तनः प्रमहरंत्यस्या नाम चक्रे महा-मृषिः ॥१२॥ तामाश्रमपदे तस्य कर्न्दं प्रा प्रमहराम् । यसूच किल धर्मा-त्मा मदनोपदृतस्तदा ॥ १३ ॥ पितरं सिविभिः सोऽथ धावयामास तेजस्वी रुठके चरित्रको दिस्तारके साथ फहताहै, उसको तुम सब सनो ॥ १-३ ॥ पहिले तपस्थी श्रीर विद्वान, सकल गाणियीके कल्याण में प्रीति रखनेवाले स्थल केश नामवाले एक प्रसिद्ध महर्षि थे॥ ४॥ ह विप्रपें! उस समय विश्वावसु नामके एक गन्धर्वराजने मेनका नामवाली द्यप्सरामें गर्साधान किया और हे भग्रनन्दन ! जब अपना समय पुरा होनेको द्याया तत्र दयाहीन श्रीर लज्जारहित वह अप्सरा तत्काल जन्मेहुए उस वालक को स्थलकेश ऋषिके आश्रमके सामने गरीके तटपर रखकर चलीगई॥ ५-७ ॥ देवकन्याकी समान रमणीय और सुन्दरताकी प्रमासे दमकती हुई उस कन्याको महर्षि स्धूलकेशने नदी के किनारे पर पडीहुई देखा॥=॥ उस कन्याको मार्गमें विना मा वापकी पड़ीहुई देखकर तेजस्वी महात्मा महर्षि स्थलकेशको दया श्रागई, इस कारण यह उस कन्याको उठावर अपने श्राथममें लेशाये, वह सुन्दराजी

कन्या स्पूलकेशके शुभ आश्रममें रहकर धीरेश्वड़ी होनेलागी॥ ६-१०॥
महाभाग महपिस्थूलकेशने कमश्ले उस कन्याके जातकर्मे आदि संस्कार
करिदेये॥११॥ वह रूप, गुण और दुव्हिमें सब प्रमदायाँ (स्त्रियाँ) से
श्रेष्ठ थीं, इसकोरण उस कन्याका नाम भी महोने प्रमहरा स्वाधार॥ एक समय स्थूलकेश ऋषिके आश्रममें प्रमद्धार को देखंकर प्रमातमा रुक कामदेवसे हारगप्र॥१३॥ और उन्होंने मित्रोंके हारा अपने पिता, भुगुके पुत्र प्रमिति को अपनी कामकी दशा निवेदन करायों, जिस

* महाभारत ज्ञादिपर्व * (230) सार्ववस् । असतिश्चास्ययाचलां स्थलकेशंयशस्विनम् ॥१ ॥ ततःप्रादा-रिएता कर्या रुखे तां प्रमहराम् । विवाहं स्थापथित्वात्रे नक्तत्रे भग-दैवते ॥१५॥ ततः कतिपयाहस्य विवाहे समुपस्थित।सखीभिः कीड्ती साज ला कन्या बरवर्शिनी ॥ १६ ॥ नापश्यत संप्रसप्तं वै भूजङ्गं तिर्थ्य-गायतम् । पदा चैनं लमाकामन् सुम्षुः कालचोदिता ॥ १७ ॥ स तस्याः संप्रमुक्तायाध्वीदितः कालधर्मणा । विपोपलितान्दशनान् भशमक् न्य-ए।तयत् ॥ १८ ॥ सा द्रपा तेन सर्पेण पपात सहसा भुवि । विवर्णा विग-तथीका सुद्याभरणचेतना ॥ १६ ॥ निरानन्दकरी तेपां बन्धनां मुक्तम-र्ज्ञा । व्यसुरप्रेक्षणीया सा प्रेक्षणीयतप्रोभवत् ॥ २० ॥ प्रसुप्तेवाभव-चाणि भवि सर्विपार्दिता। श्रृयो मनोहरतरा वभव ततुमध्यमारश्ददर्श तां पिता चैवरे चैवान्ये तपस्विनः।विचेष्टमानां पतितां भृतले पदावचंसम ॥२२॥ ततः सर्वे द्विजवराः समाजग्मुः छपान्विताः । स्वस्त्यत्रेयो महा-से महात्मा प्रमृतिन अपने पुत्रके लिये यशस्वी स्थलकेश ऋषिसे उस कन्याकी याचना दरी, तय स्थलकेंग ऋषिने उसे याचनाको स्वी-कार करके प्रमहरा कन्याका रुखे लाध लंबंध पक्का करके श्राने वाले पर्वाफाल्युनी नक्त्रमें विवाहका निश्चय करदिया॥ १४॥ १५॥ कितने ही दिन दीतगए और बिवाहकाल समीप श्रागवा था, इतने ही में एक लाग वह वरवर्णिनी कन्या अपनी समान अवस्थाकी सहित्योंके साथ वनमें कीड़ा कररही थी, तहाँ मार्गमें जातेहए. मानी कालकी प्रेरणा करी हुई और मरना चाहतीहुई तिस कन्याने प्रशी पर आड़े होकर पड़ेडुए एक लम्बे सांपको देखा नहीं इस-कारण उस सर्वको अपने पैरसे खंददिया, उसी समय कालधर्मके प्रेरणा करेहुर सपने मदमक हुई उस कन्याके शरीरमें विपसे भरी हुई अपनी डाढ़का जोरले डंक मारदिया॥ १६ ॥१०॥सर्पके काटतेही वह क्रम्या एकाएकी शृप्तिपर गिरपड़ी, उसके शरीरका रंग वदलगया, शरीरका लावराय नए होगया, गहने शरीरमेंसे निकलकर विखरगए. चेतनता उड्गई॥ १६॥ शिरके वाल विखरनए, सिखयें उसको देख-कर उदास हो हाहाकार करनेलगी, और जो वास्तवमें देखने योग्य खन्दराङ्गी थी यह एक ही चलमें प्राल निकलते ही ऐसी होगई कि देखनेमें भय लगनेलगा ।। २० ॥ सर्पको विषस्ते पीड़ित होती हुई वह-निद्वाके वशीसृतसी होकर पृथ्वी पर गिरपड़ी थी तो भी वह सिंहकी समान करिवाली ज्लाभर को देखनेमें वहत ही अच्छी प्रतीत होती थी ॥ २१ ॥ दयालु सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण तथा उसके पिता और अन्य जो तपस्वी तहाँ आएँ थे उन्होने कमलकी समान कान्तिवाली तथा चेत्रतारहित उस कन्या को भूमि पर पड़ीहुइ देखा॥ २२॥ स्वस्त्यत्रेय - version of the second of the

अंध्याय] क भाषांचुवाद सहित क (१११)

जांच्याय] क भाषांचुवाद सहित क (१११)

जांचु कुशिकः श्राह्ममेखतः ॥ २३ ॥ उदालकः कडक्षेय रवेतक्षेय महायशाः । भरद्वाजः कीणाकुल्यः आर्षिपेगोऽय गातमः ॥ २४ ॥ प्रमतिः
वादः । भरद्वाजः कीणाकुल्यः आर्षिपेगोऽय गातमः ॥ २४ ॥ प्रमतिः
हिताम् । २०दुः कृषयाविष्यः करुस्त्वात्तां विह्ययेषा ॥ २५ ॥

हत्यादिपर्विणे पीलोमेऽप्रमोध्यायः ॥ = ॥

सीतिकवाच । तेषु तत्रोपिविष्ठेषु प्राप्तगेषु अस्तान्तमम् । गक्ष्तुकोष्ठा गतमं

यनं गत्वातिद्वात्ताः ॥ १ ॥ शोकेताभिष्टतः काऽप विलाप्न करण्वाः ।

अववीद्वचनं शोचन् प्रियां स्मृत्वा प्रमहराम् ॥ २॥ शोत सा भृति तत्यद्वाः

मम शोकविवर्विन । वोच्यानाङ्ग सर्वार्या कि ग द्वान्यतः परमः । ३।

स्थादिपवाल पालामऽष्टमाध्याः ॥ ॥ स्थादिवाल पालामऽष्टमाध्याः ॥ ॥ स्थादिवाल । तेषु तत्रोपदिष्टेषु प्राप्तमेषु प्रमाराम्याः ॥ ॥ स्थादिवाल प्रत्याद प्रवास प्रत्याद । ॥ स्थादेकामिहनः सोऽप विलयन् कर्ल्यवहा अववविद्याने स्थाद स्थाद प्रत्याद । स्थाद स्थाद प्रत्याद । स्थाद स्थाद प्रत्याद । स्थाद स्थाद स्थाद स्थाद स्थाद स्थाद । स्थाद स्याद स्थाद स्याद स्थाद स्याद स्थाद स्थाद

महाजानु, फुशिक, शंलमेश्रल, उदालक, महायग्रस्थी, पठ, स्वेत, भरद्वाज, कीखुक्स्य, गीतम पुत्रसिंहत प्रमति तथा श्रीर वहुनसे वनवासी
तपस्वी अहां कन्या पड़ी थी तहां श्राये और उस कन्याको सर्पके
विपकीपीड़ासे विद्वत होकर मरखके प्राप्त है देककर कांतर हो रीने
खगे, यह दशा देख कर घवड़ाकर श्राथममें से नाहर राजान्या, परंतु
और सब प्राप्त नहीं ही बेटे रहे ॥ १३-२५॥ आठवां प्रम्याय समाह.
उन्नश्रवा कहते हैं, कि हे ब्रह्मन् ! जिस समय उस श्राथममें गहातमा
श्राप्त प्रमहराके आस पास बेटेहुए श्रोक कररहे थे, उससम्य श्रोक
से महादुःचित हुआ कर प्रकेश वा हिन समाग कांत्रश्रक कर्या कर समाग्र हुक्स से महादुःचित हुआ कर प्रकेश वा हिन समाग्र कर समाग्र हुक्स से प्रार्थ कराती।

से सहादुराखत हुआ रुठ अल्ला गहन बना जा डाल फाइकर राम स्वाग और अपनी प्रिया प्रमहरा को चार र स्मरण फर्स्स थित फरणा-जनक विलाप करता हुआ स्स्प्रकार कहनेलामा।(शासा अरी मेरे शोक को यहानेवाली छुशोदरी! तू भरती पर दी सोराही है, यह देखकर यून्युकन तथा दूसरोंको इससे छिक्त और क्या दुःख टोगाशा ३॥ संते यदि कुछ दान दिया हो, यदि मैं भामिक होऊँ, यदि सैंने कुछ तप किया हो तो, अथया यदि मैंने भलेमकार गुरुकांको सेवा की हो तो उन सब पुण्योके बलसे यह मेरी प्रिया जीवित होजाय॥ ४॥ यदि मैंने अपने आरामाकोजनमसेही संयममें रस्खाहो औरंग्रित भारण किया होतो उस स्व पुण्यके फलसे मेरी यह ममहराक्षी अमीं उठा-कर जड़ो होजाय॥ ४॥ इसामकार प्रियाक लिये हुःखी हुआ और शोक करता हुआ दुब वनमें अकेंता बैंग था, तहाँ उस्वेसे पाल एक

विवद्तने श्राकर इसमकार कहा—॥ ६॥ देवदूतं वोला, कि—हे कह!

निधम # महाभारत श्रादिपर्व # (११२) धर्मात्मन्नायुरस्ति गतायुषः ॥ ७ ॥ गतायुरेषा कृपणा गन्धर्वाप्सरसोः सता । तस्माञ्जोके मनस्तात माकृथास्त्वं कथञ्चन ॥ 🖛 ॥ उपायश्चात्र विहितः पूर्वं देवैर्महात्मभिः । तं यदीच्छसि कर्त्तुं त्वं प्राप्स्यसीह प्रम-हराम् ॥ है। इरुखोच । क उपायः कृतो देवैब हि तत्त्वेन खेचर । करि-ध्येऽहं तथा श्रुत्वा त्रातुम्हति मां भवान् ॥१०॥ देवदूत उवाच ।श्रायु-पोऽद्ध प्रयच्छ त्वं कन्यायै भृगुनन्दन । एवसुत्थास्यति रुरो तवभार्य्या प्रमहरा ॥ ११ ॥ रुरुखाच । श्रायुषोऽद्ध प्रयच्छामि कन्यायै खेचरो-त्तम । शृङ्गारद्धपाभरणा समुत्तिष्ठतु मे प्रिया ॥ १२ सूत उवाच । ततो गंधर्वराज्यः देवदृतश्च सत्तमौ । धर्मराजमुपेत्येदं चचनं प्रत्यभापताम् ॥ १३ ॥ धर्मराजायुपोऽव्हेंन दरोर्भाया प्रमहरा । समुत्तिष्ठतु कल्याणी सतैवं यदि मन्यसे ॥ १४ ॥ धर्मराज उवाच । प्रमद्वरा रुरोर्मायां देव-<u>ढूत यदीच्छुसि । उत्तिष्ठत्वायुषोऽद्धेन रुरोरेव समन्विता ॥ १५ ॥</u> सीतिववाच । एवमुक्ते ततः कन्या सोदतिष्ठत् प्रमद्धरा।क्रोस्तस्या-त्र दुःखके कारण जो वचन फहरहा है, उन वचनोंसे क्या होसकता हैं ?, हे बर्लात्मन ! जो मनुष्य आयु पूरी हीनेसे एक वार मरजाता हैं वह फिर जीवित नहीं हीता॥ ७॥ गन्धर्व श्रीर श्रप्तराकी यह विचारी कन्या आयु पूरी होजानेले मरणको प्राप्त हुई है, हे तात! इसके लिये किली प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये, परन्तु प्राचीन सहात्मा और देवताओंने इस विषयकादक उपाय निकाल रक्खा है, डस उपारकी यदि तू परीका करेगा तो तुभी प्रमद्वारा अवश्यही मिल-जायगी ॥=॥ ६ ॥ वरने कहा कि-हे देवदूत ! देवताओंका कहाहुआ दह उपाय कौनसा है?,यदि जुक्षे मालूम होजायगा तो में उसके श्रद-सार कार्य प्रवश्य ही फर्डमा, तुक्षे सेरी रज्ञा; करनी चाहिये अर्थात दह उपाद सुक्तै वताकर केस उद्धार अवस्पत्ती करना चाहिये ॥१०॥ देवद्रंतने यहा, कि—हे भृतुनन्दन ! त् अपनी आबी शासु उस कन्या को देवे, हे एवं विसामारी से तेरी की प्रमहरा उठकर खड़ी होजायगी ॥११ ॥ उक्ते कहा, कि-दे धाकाशचारियोंने भ्रेष्ठ देवदंत ! उस क्रन्याके लिये में जबनी जायी घायु देता हूँ, बृहार, रूप और आम्-पर्णो सहित देरी त्रियो जीवित होजाय ॥ १२ ॥ उप्रथ्रवा कहते हैं. कि-तदनन्तर सहात्मा गंधर्यराज (प्रमहरा का पिता) और देवदत धर्म-राजके पालनय और उनसे कहा, कि-हे धर्मराज ! उठकी खी प्रम-द्वरा जो बरनई है उसको, उसके पतिकी श्राधी श्रायुसे,यदि श्रापके च्यानमें आये तो जीवित करदीजिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ धर्मराज वाले कि-हे देखदूत ! तुम चाहते होतो रुक्की भागी रुक्की ही आधा आयु से जीतिन होजाय ॥ १५ ॥ उग्रथवा कहते हैं, कि-ऐसा कहते ही वह

भाषानुवाद सहित # युपोऽर्द्धेन सुप्तेव वरवर्णिनी ॥ १६ ॥ पतद्दप्टं भविष्ये हि रुरोरुत्तम-तेजसः । श्रायुपोऽतिप्रवृद्धस्य भार्ग्यार्थेऽद्धं मलुप्यत ॥ १७ ॥ तत इष्टे-

ऽहिन तयोः पितरी चक्रनुर्मुदा ॥ विवाहं ती चरेमाते परस्परिते-पिणी ॥ १= ॥ स लब्ध्वा दुर्लभां भाज्यी पदाकिञ्जलकसुप्रभाम् । व्रतं चक्रे विनाशाय जिह्मगानां घृतव्रतः ॥ १८ ॥ स दृष्या जिह्मगान् सर्वा स्तीवकोपसमन्वितः । श्रभिहन्ति यथासस्वं गृहा प्रहरणं सदा ॥२०॥ स कदाचिद्वनं बित्रो रुरूरभ्यागमन्महत् । शयानं तत्र चापश्यत् ङ्ग्डभं वयसान्वितम् ॥२१॥ तत उद्दम्य द्राडं स कालद्राडोपमं तद्याजिर्घासः

(११३

कुषितो विवस्तमुवाचाथ डुएडुभः॥ २२॥ नापराध्योमि ते किञ्चिद-हमद्य तपोधन । संरम्भाच किमध मामभिहंसि रुपान्वितः ॥ २३ ॥ इत्यादिपर्वणि पौलोमे नवमोऽध्यायः॥६॥

रुरुरवाच । मम प्राण्समा भार्य्या द्षासीद्भजगेन ह । तत्र मे समयो घोर द्यातमनोरम चै कृतः ॥ १ ॥ भ्जंगं चै सदा हन्यां यं यं पश्येयिम-

रवर्णिनी प्रमद्वरा, रुरुकी छाधी छायुसे, जैसे निदामसे जागीरो | तेसे उठकर बैठी होगई ॥ १६ ॥ स्त्रीके लिये छाधी छायु देनेवाले केवल रुक के भाग्यमें ही इसप्रकार देखनेमें श्राया थी श्रीर इसप्रकार स्त्रीको श्राधी आयु देनेसे रुख्की बहुत बड़ी श्रायुमेंसे श्राधी श्रायु कम होगई थी १७ तदन्तर उन दोनोके माता पिनाने शुभ लग्न (पूर्वाफाल्गुनी) के श्राने पर उनका विवाह करदिया और रुरुतथा प्रमहरा एक दूसरेका हित चाहतेहुए ग्रानन्दसे दिन वितानेलगे ॥१८॥इसप्रकार कमलके केसर की समान कान्तिवाली प्रमहरा नामक दुर्लभ स्त्रीको पाकर व्रतथारी रुठने सपेंका नाश करनेकी प्रतिशा करी ॥ १६ ॥ श्रोर वह जहां तहां सपेंको देखते ही श्रत्यन्त कोपमें भरकर श्रपनेसे वने उतने जोरसे शस्त्रलेकर सर्पोको मारने लगा॥ २०॥ एक समय वह रुरु ब्राह्मण किसी घोर वनमें जापहुँचा, तहां उसने एक बुद्दे जीर्णशरीर डण्ड्-भजातिके सर्पको सोताहुया देखा॥ २१॥ रुठ उसको देखते ही फ्रोध में भर गया श्रोर उसको मारनेकी इच्छासे कालदग्डकी समान श्रपना दंडा उठाया, उस समय दुरहुभ जातिके सर्पने उस बाह्मण्से कहा, कि—हे तपोधन ! इस समय मैंने तुम्हारा कोई श्रपराध नहीं किया है, फिर तुम निष्कारण ही कोधके श्रावेशमें श्राकर मुभी वर्षो मारेडा

लते हो ? ॥ २२ ॥ २३ ॥ नवम अध्योय समाप्त ॥ 🕸 ॥ 🕸 ॥ 🕸 ॥ रुरुने कहा, कि-हे भुजङ्गम | मेरी प्राणसमान प्यारी भार्याको एक दृष्ट सर्पने काटलायां था,उस दिन से ही नैने उस सर्पके अपराधसे (११४) ः सहाभारत झादिपत्र ः [दश

त्युत । ततीऽदं त्यं जियंकाित जीवितेनाय मोदयले ॥ २ ॥ बुर्बुभ हवाच । अन्ये ते भुजगा ब्रह्मत् ये द्यान्तीत् सानवान् । बुर्बुभानिह-गंधेन न त्यं हिंसितुमईित ॥ ३ ॥ एकानर्थात् पृथगथनिकदुःखान् पृथक्तुवात् । बुर्बुभान्यमीविद्म्त्वा न त्वं हिंसितुमईित ॥ ४ ॥ स्तीतिक्वाच । इति अत्या वचस्तस्य भुजगस्य रुस्तत् । राजधीन्त्रयसं-विक्तमित्र मत्याथ बुर्जुअं ॥ ५ ॥ उवाच चैनं भगवान् वसः संयम-विज्ञत । कार्ष पुरा क्रो नाम्ना ऋषिराखं यतः ॥ ६ ॥ इ एडुभ उवाच । शहं पुरा क्रो नाम्ना ऋषिराखं यहस्यात् । सी.ड्रं राग्येन विम्नव्य भुजगत्वस्रुव्यान्ता॥ शास्त्रक्वा । किमर्थं यासवान् कुद्धो हिज-स्त्यां भुजगोत्तय । कियन्तं चैव जालं ते वपुरेतन्त्रविष्यति ॥ = ॥ इत्याविष्विणि पौक्षोते व्यामोऽभ्यायः॥ १० ॥

डगड्भ उदाच । सला वश्रुव ये पूर्व खगमो नाम वे हिजः । भृशं संशितदाक् सोऽथ तपोबलसमन्दितः ॥१॥ स मया क्रीडता वात्ये उन सबको मारडासूंग, इसकारण ही में तुक्षे अभी मारेडालता हूँ आज

मेरे हाथसे तेरा प्राण्यस्वार होगा ॥ १ ॥ २ ॥ इंडुमने कहा, कि—हे सहम ! से हाथसे तेरा प्राण्यस्वार होगा ॥ १ ॥ २ ॥ इंडुमने कहा, कि—हे सहम ! से वित्त से हैं, इसकाएप हे महर्षे ! केवल सर्प हंडुं में व्याप्त साम हो सर्प है, इसकाएप हे महर्षे ! केवल सर्प मामकी गन्धमान पाकर इंडुमसर्प का वर्ष करना तुम्हें योग्य नहीं है ॥ २ ॥ एक जातिके होने से हानि हमारी भी होती है, परंतु लाम सबको जुदा २ किलता है, इसकारण दुःखं में सब स्थान है जीर हुन

लबको जुदा र सिकता है, इसकारण दुःश्व म अब समल ह आर छुन में जुदे र है, इसकारण धर्मक होकर आपको दुगड़मोंका नाश नहीं करना चाहिये॥ ४॥ उग्रथवा कहते हैं, कि—मबचे धवड़ाये हुए और दुःश्वित दुगड़ुगके ऐसे कातरब चन छुननेसेडचको फोई ऋषि सममा और सारा नहीं, किंतु उसको धीरक देवेहुए रुश्ते दुग्नी, कि—हे सर्प तू क्षीन है ? और सर्पकी यीनि तुने किस कारएसे पाई है, यह वात स्क्री रुख्या होय हो दता॥ ५॥ ६॥ इंडुभ कहता है, कि—हे करें!

ः भाषानुवाद लहित ः (११५) कृत्वा ताण् भुजङ्गमम् । श्रक्षिहोत्रे प्रसक्तस्तु भीषितः प्रसुमोत् वे ॥२॥ लब्बा स च पुनः संज्ञां मामुबाच तपोधनः । निर्द हिराव कोपेन सत्य-वाक् शंक्तितवतः ॥ ३ ॥ यथावीर्यस्त्वया सर्पः छतोऽयं महिभीपया । तथाबीयों भुजङ्गस्वं मम शापाङ्चिष्यसि ॥ ४ ॥ तस्याहं तपसो वीर्य्य जानानस्तत् तपोधन । भृशसुद्धिनहृद्यस्तमयोचमह् तदा ॥५॥ प्रसानः संभ्रमाच्चेव प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः । सखेति हसतेदन्ते नर्गार्थं ये छतं मया ॥६॥ चन्तुमर्हिस से ब्रह्मन् शापोऽयं विनिवर्श्यताम् । सोऽथ माम-ब्रबीदुरपुा भृशमुद्धिग्नचेतसम् ॥७॥ मुहुक्ष्णं विनिश्वस्य सुसंभ्रान्त-स्तपोधनः। नामृतं वै मया बोक्तम्भवितेदं अथञ्चन ॥ = ॥यत्त् बदयासि ते बाक्यं श्रुणु तन्मे तपोधन । श्रुत्वा च हृद्दि ते पास्यमिदमस्तु सदा-नय ॥ ६ ॥ उत्पत्तस्यति रुष्नाम प्रमतेरात्मजः शुचिः । तं दृष्टा शाप-मोलस्ते भविता न चिरादिव ॥१० ॥ स त्वं वरुरिति ख्यातः प्रमतेरातमः जोऽपि च । स्वं रूपं प्रतिपद्याहमद्य बस्यामि ते हितम् ॥ ११ ॥ स वालस्वभावमें श्राकर खेलते २ तिनुकींका एक सांप वनाकर उससे उसको डराया श्रीर वह उलसे डरकर मृद्धित हो भृतिपर गिरपटा ॥ २ ॥ वह ब्राह्मण सत्यवादी, उत्तम ब्रतधारी धौर तपको ही धन माननेवाला था, उसको जय चेतना हुई तन मानो मुभी कोघसे भस्म करे देता हो. इसप्रकार लाल२ छांखें करकी सुभाले कहुनेलगा, कि ॥३॥ मुक्ते डरानेके लिये तूने जैसा पराक्रमहीन भूठा लांप बनावा है, तू वैंसा हो पराक्रमहीन सांप मेरेशापसे होजायगा॥शाहे तपोधन ! मैं उसके तपोवल को जानताथा, इसकारण में उकीसमय चित्तमें घवडाताहुं उसके सामने खड़ा होगया, श्रीर दोनो हाथ जोड़ प्रणाम करके निवेदन किया, कि—हे भाई! यह तो भैंने साधारण हँसनेके त्विये हीं तुमले परिहास (मरुलरी) किया था ॥ ५ ॥ ६ ॥ है ब्रह्मन् तुर्न्ह मेरे ऊपर चमा करनी चाहिये. तुम अपने शापसे छुटाओ,सुक्षे श्रत्यन्त उद्विवचित्त और घवड़ाहटमें पड़ाहुशा देखकर वह तपस्वी बार २ लंबेश्वास लेताहुआ कर्नेलगा, कि-मेरा शाप किसीप्रकार भी भिथ्या नहीं होगा॥ ७ ॥ = ॥ परंतु हे तपोधन ! में तुकसे जो बात कहता हूँ उसको सावधान होकर खन और है निदाप इस बात को सुनकर सदा अपने हृदयमें रखना ॥ ६ ॥ महात्मा अमृतिके एउ नामका परमपवित्र पुत्र उत्पन्न होगा, उसका दर्शन करते ही तृ तुरंत शापसे छूटजायमा ॥ १० ॥ (फिर डुंडभ सर्पने कहा कि-) है तपी-धन ! तुम ही वह प्रमतिके प्रसिद्ध पुत्र रुरु हो, आज मैंने आपका दर्शन पालिया, अब मैं अपने पहिले रूपको पाकर आपसे कुछ हितकी बात कहता हूँ उसको सुनो ॥११॥ पेसा कहते ही महायशस्त्री उत्तर

महायशाः ॥१२ ॥ इदं चोवाच वचनं रुस्मप्रतिमोजसम् । श्राहिसा परमो धर्मः सर्वप्राण्मृताम्बर॥१३॥तरमात् प्राण्मृतः सर्वाच हिस्याद् ब्राह्मणः क्रचित् । ब्राह्मणः सौम्य पवेह भवतीति परा श्रुतिः ॥१४॥ वेदवेदाङ्गविद्याम सर्वभूताभयप्रदः । श्राहिसा सत्यवचनं स्मा चेति वितिश्चितम् ॥१५ ॥ ब्राह्मणस्य परो धर्मो वेदानां धारणापि च । स्वि-

वितास्त्रतम् ॥ १३ ॥ श्रास्त्रपुरः परा नापप्राणा वारणाय वारणाय वारणाय वारणाय वारणाय वारणाय वारणाय वारणाय वारणाय परिपालनम् । तदिवं चित्रयस्यासीत्कर्म वै शूण मे स्रो ॥ १० ॥ जन-मेक्तयस्य यर्जेऽत्र सर्पाणां हिंसनं पुरा । परिजाणञ्च भीतानां सर्पाणां ब्राह्मणाविष् ॥ १० ॥ तपोवीर्य्यवलोपेताह्नेदवेदाङ्गपारणात् । श्रास्ती-

काद्द्रिजमुख्याद्वे सर्पसत्रे हिजोत्तम ॥ १८ ॥

इत्यादिपर्वेणि पौलोमे पदादशोऽध्यायः॥११॥

चत्रवाच । कथं हिंसितवान् सपीन् स राजा जनमेजयः। सपी वा
हिंसितार्वत्र किमथं द्विजसत्तमा। किमथं मोसितार्थेव पन्नगारतेन धीमता। खास्तीकेन द्विजधेष्ठ थोतुमिच्छाम्यशेपतः॥२॥ खृपिर-बाह्मण सुंडुंभने, सर्पकं स्वक्पको त्यागकर खपने पहिले खतितेजस्वी शरीरको । कर धारण करिलया॥१२॥ और खगाय बलवाले रुक्तुनि

ले इत्तप्रकार कहा. कि—हे सकल प्राणियों में उत्तम महातमन् !श्रहिंसा ही परमधर्म है, इलकारण ब्राह्मणको कभी भी किसी प्राणी की हिसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वेदमें कहा है, कि जगत् भर के महुष्यों में ब्राह्मणका स्वमाय कोमल होता है॥ १३॥ १४॥ वेद तथा स्वय देवाकों को जानगा, सकल प्राणियोंको श्रमयदान देना, श्रहिंसा, सत्य-

दद्का ता जाराना, सर्वाय आयुवाना अन्यप्ता प्रान्त आहुता, स्वयुवाना व्याद्वीपन और चेहीं को पढ़कर उनको स्मरण रखना भी ब्राह्मणका परम धर्म है, इसकारण व्यापको ब्राह्मण होकर चत्रियके धर्मके ब्रह्मसार वर्चाव नहीं करना चाहिये।। १६॥ दग्ड धारण करना, उन्नता रखना और प्रजाका पालन करना यह चत्रियका धर्म है, हे श्रेष्ट ब्राह्मण स्ट (पहिले राजाजानमेजय

के लर्पयहमें सांपोंका नाश होनेलगा था वह कथा, श्रीर उस सर्पयक्ष में भयभीत हुए संपोंकी उस समय तपीवलवाले, वेद श्रीर वेदाङ्गके पारङ्गत एक श्रास्तीक नामक बाह्मणने रत्ता करीथी, वह भी सुनी १०-॥ १६॥ ग्यारहर्वा श्रध्याय समाप्त ॥ ११॥ ॥

इहने कहा, कि-हे द्विजोत्तम! उस जनमेजय राजाने यक्षमें सर्पेंका वध करना क्यों श्रारम्भ किया था?॥१॥ श्रोर हे द्विजवर्य! बुद्धिमान् श्रास्तीकने उन सर्पेंकी रचा किसकारणसे की थी? वह सब वृत्तांत में परा २ छनना चाहताहूँ॥२॥ ऋषिने कहा कि—हे स्रो! तम

lone reserverserversorsversors

श्रध्याय] * भाषानुवाद सहित * (११०)

याच । श्रोष्यित त्वं करो सर्वमास्तीकचितं महत् । ब्राह्मणानां कथ्यामित्युक्त्वान्तरपीयत ॥ ३॥ सौतिष्ठवाच । रुरुश्चापि वनं सर्वं पर्यं धावत्समन्तरः । तमृषि नष्टमन्विच्छुन् संश्रान्तो न्यपद्वि ॥ ४॥ समोहं परमं गत्या नष्टसंद इवाभवत् । तदपैर्वचनं तद्यं चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ४॥ लध्यसंत्रो रुरुश्चायात्तदाच्यपे पितृस्तदा । पिता चास्य तद्दाख्यानं पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ॥ १॥ इत्यादिपर्वेणि सर्पसन्नप्रस्तावना पौलोमं समाप्तम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अ**थास्तीकपर्व ।** श्रीनक उवाच । किमर्थ राजशार्व लः स राजा जनमेजयः । सर्पस-

त्रेण सर्पाणा गतोऽन्तं तहृदस्य मे ॥१॥ निखिलेन यथातस्यं सीते सर्वमशेपतः । श्रास्तीकथ हिजश्रेष्ठः किमर्थं जपतां घरः । मोजयामास भजगान प्रदीप्ताद्वसरेतसः ॥ २ ॥ कस्य पत्रः स राजासीत सर्पसन्न यं श्राहरत । स च द्विजातिप्रवरः कस्य पुत्रोऽभिधत्स्य मे ॥ ३॥ सौतिरुवाच । महदाख्यानमास्तीकं यथैतत् प्रोच्यते हिज । सर्वमेतद-शेपेण शण मे बदताम्बर ॥ ४॥ शीनक उवाच । श्रोतिभिच्छाम्यशेपेण ब्राह्मणोंके मुखसे ब्रास्तीकका वडाभारी वृत्तांत सुनोगे, ऐसा कहकर महर्षि सहस्रपाद अन्तर्धान होगए॥३॥ उत्रथवा कहते हैं, कि---तदनन्तर भन्तर्थान द्रप उन भृतिको खोजनेके लिये रुरु उस यहेभारी वनमें चारों श्रोर घमनेलगा श्रौर श्रंतको धकजानेसे मर्छित हो वावला सा वनकर भूमिपर गिरपडा और महामोहके वशमें होकर अचेतनसा होगया, चेत होनेपर सहस्रपाद ऋषिके उपदेशवचनीका वार २ स्मरण करता हुआ अपने आश्रममें आपहुँचा और अपने पितासे आस्तीकके विपयका बत्तांत वसा, तव उसके पिताने आस्तीकका सब बत्तांत कह सुनायो ॥४-६॥ वारहवाँ ऋध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ 🕸 ॥ 🕸 ॥ शांनकने कहा, कि-हे सतपुत्र ! सिहसमान राजा जनमेजयने संपी का यह करके सर्पेका नाश किस कार एसे किया था ? वह सब मक्ते पर्णरीतिसे सुनाश्रो तथा विजय पानेवालीमें श्रेष्ठ श्रीर द्विजोत्तम श्रा-स्तीकने धधकतीहर्द श्रविमेंसे सपैंकी रज्ञा किस कारणसे की थी? वह सब वृत्तांत जैसा हो तैसा मुभी सुनात्रो, जिसने सर्पवश किया था

वह राजा किसका पुत्र था और बाह्यणों में श्रेष्ठ शास्तीक किसकां पुत्र था यह भी मुक्तसे कहो ॥१-३॥ उप्रथवा कहते हैं, कि-हे सुनिवरा में तुम से आस्तीकका बढ़ाभारी बृत्तांत जित्रभाकार है, तैसा ही कहता हूँ, उस सबको है वकाश्रों में श्रेष्ठ । तुम सुनी। ४। शोनक कहते हैं, कि-पुरातन ऋषि, यशस्वी श्रास्तीककी मनौहर कथाको में पूर्ण रीतिस सुननां

[तेरहवाँ (११¤) 🕸 महाभारतं ज्ञाविपर्वे 🕸 कथायेतां मनोरमाम् । श्रास्तीकस्य पुराएएँजीहाणस्य यशस्विनः ॥५॥ सौतिरवाच । इतिहासिममं विधाः प्राणं परिचन्तते॥६॥ सुप्णहैपा-वनहोक्तं नैक्षिषारएववासिषु । पूर्वं प्रचोदितः सूतः पिता मे लोमह-र्पंतः॥ ७॥ शिष्यो व्यासस्य मेघादी ब्राह्मखेष्वद्युक्तवान् । तस्याद-हमुपश्रुत्य प्रवच्चामि यथातथम् ॥ = ॥ इद्नास्तीकमाख्यानं शौनक पृच्छते । कथयिष्याम्यशेषेग् सर्वपापप्रसाशनम् ॥ ६ ॥ श्रास्ती कस्य पिता ह्यांकीत् प्रजापतिस्त्रमः प्रभुः। ब्रह्मचारीयताहारस्तपस्युत्रे रतः सदा ॥ १० ॥ जरत्कारुरिति ख्यात ऊर्द्धरेता महातपाः । याया-वराणां प्रवरो धर्मकः शंक्षितव्रतः ॥ ११ ॥ स कदाचिन्यहाभागस्तपो-वलसमन्दितः । चचार पृथिवीं सर्वी यत्रसायंगृहो सुनिः।१२। तीर्थेष च लमाप्तावं कुर्वबर्दात सर्वशः। चरत्वीत्तां महातेजा दुश्चरामक्न-त्तात्मभिः ॥ १३ ॥ वायुभक्तो निराहारः शुष्यक्रनिमिषो सुनिः। इतस्ततः परिचरन्दीतपावकसप्रयः ॥ १४ ॥ श्रदमानः कदाचित् स्वान् स ददशी चाहता हूँ, इसकारण सुभसे उनकी कथा कहिये। उग्रश्रवा कहते हैं, कि-कुन्लहेपायनके कहेहुए इस इतिहासको ब्राह्मण पुराण कहते हैं ॥ ४—६॥ पहिलो व्यासजीको शिष्य और मेरे पिता बुद्धिमान सत लोमहर्पणजीने नैकिपारएयमें रहनेवाले जाहालों के समीप उनके पंछने पर यह इतिहाल कहा था और हेशीनक ! मैंने उनसे जो कुछ खना था. वह तम सुक्त वृक्तते हो तो तुम्है सकल पापीका हरनेवाला आस्तीक का बाख्यान जैला छुना है तैसा ही पूर्ण रीतिसे छुनाता हूँ॥ ७-८ ॥ ज्ञास्तीक के पिता प्रजापतिकी समान शक्ति रखते थे, वह श्रविवाहित होतेले नित्य देदका स्वाध्याय करनेमें लगे रहते थे, सदा महातप से ही प्रेस रखते थे, नियमित भोजन करनेवाले श्रीर ब्रह्मचारी थे।१०। वह अर्ध्वरेता ग्रहातपरवी जरत्कारु नामसे पृथ्वी पर प्रसिद्ध थे.वह एक प्राप्तमें एक ही रात रहनेवाले यायावरीमें श्रेष्ट, धर्मन श्रीर हदबत घारी थे ॥ ११ ॥ वह सहासान तपोवलधारी सुनि, एक समय यात्राके निवले सकलम्मएडल पर विचरनेको चलिचे और जहां सायंकाल होजाता था तहां ही ठहरजाते थे॥ १२॥ इसप्रकार अनेकों तीयाँवेंद्रनान करते हुए चारों ओर घूमने लगे, वह तेजस्वी ब्राह्मण यात्रावें जात्मसंयमहीन पुरुषोंसे न होसकनेवाले श्रनेको कठिन नियमोंका पालन करते थे ॥ १३ ॥ वह मुनि कथी वायुका ही अक्त करके रहजाते थे और कभी निराहार ही रहते थे उन्होंने

निद्राको भी जीतिलया था, प्रज्वलित अग्निकी समान तेजस्वी इन ऋषिने एक दिस इधर उधर फिरतेहुंए एक स्थान पर अपने

 भाषानुदाद सहित । पितामहान् । लस्वमानीन्महागर्चं पादैरुईंरवाङ्ग्यान्।१५। तामव्र-चीत्स द्रष्ट्रीच जरत्कारः पितामहान् । के भवन्तोऽवलवन्ते गर्चे हाहिम-क्योमखाः ॥ १६॥ बीरणस्तम्बके सङ्गाः सर्वतः परिभक्तिते । सृषि-क्षेण निगढेन गर्चें ऽस्मिन्नित्यवालिना ॥ १७॥ पितर ऊचुः । यायावरा नाम वयमुपयः शंसितवताः । सन्तानशक्यादुव्यक्षश्रो गच्छामः सेटि-नीम ॥ १६॥ अस्माकं सन्ततिस्त्वेको जरत्कारुरिति स्मतः । मन्द्रभा-ग्योऽल्वसाम्यानां तप एकं समास्थितः ॥ १८ ॥ न स पुत्रान् जनियतं दारानमद्भिकीर्पति । तेन लम्यामहे गर्चे सन्तानस्य जयादिहा ॥२०॥ श्रनाथास्तेन नाथेन यथा द्वण्कृतिनस्तथा। करूवं वन्ध्रुरिवास्माकम्त्र-शोचिस सत्तम।। २१ ॥ शाव्मिच्छामहे बदान् को भवातिह नः रियतः। क्रिमर्धज्येव नःशोच्याननुशोचित सत्तम ॥ २२ ॥ जरत्काररुवाच । मम पूर्व भवन्तो वै पितरः सपितामहाः । वृत कि करवाएयय जर-त्कार्रोहं स्वययम् ॥ २३ ॥ पितर उत्युः । यतस्य यत्वयांस्तात सन्ता-पितरीको उलटे शिर लटकते हुए देखा, यह एक गढे में ऊपरको पैर श्रीर नीचेको शिर हुए लटक रहे थं, पितामहाँको उलटे शिर लटकते हुए देखते ही जरत्कारने उनसे बुआ, कि-इस गढेमें उलटे जिर लटकनेवाले तम कौनहो ?॥१४-१६॥ इस गढेमें नित्य गुप्तरीति से रहनेवाले चहींने जिसकी जड़को चारी श्रोरसे काटडाला है ऐसे बीरण नामक तिनुकों के भूं उको पकड़कर तुम उलटे शिर लटके उप हो ! ॥ १७ ॥ पितरीने फहा, कि-हम मायाचर नासक तीव्रव्यतधारी ऋषि हैं और है आएए ! सन्तान न होनेसे हम पृथ्वीपर नीचे गिरजा-यँगे, जरत्कारुवामक हमोरा एक ही पुत्र है, परंतु हमारे मन्द्रभाग्यक कारणवह सन्दभाग्य पुत्र भी केवल तपका ही श्रवलम्बन कियेहुए है ॥ १= ॥ १६ । । उस मुर्खको पुत्र उत्प करने के निमित्त विवाह करने की इच्छा ही नहीं है, इसप्रकार अपुत्र होनेके कारण हम गढेमें लटक रहे हैं ॥ २० ॥ वह हमारा वंशधर है तो भी हम पापियोंकी समान अनायसे होकर गिरे पडते हैं, हे सत्तम ! तू कौन है ? जो बान्धव की समान हमारी चिंतो करता है॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमारे पास खडा हुया तू कौन है ? हम यह जानना चाहते हैं और हे सत्युख्य ! शोक करनेयोग्य हमारी चिंता तू क्यों करता है ॥ २२ ॥ जरत्कारने फहा. कि-मेरे वितामहोंके सहित तुम मेरे पूर्वपुरुप हो और में ही जरत्कार हूँ, इसकारण कहिये कि-अव मुक्षे आपके निमित्त प्या करना चाहिये॥ २३॥ पितर कहने लगे, कि—सो है तात! तू अपने कलकी बृद्धिके लिये उद्योगी होकर परिश्रम कर, है विभी । ऐसा (१२०)
* महाभारत श्रादिपर्च
नाय कुलस्य नः । श्रात्मनोऽयें उरुमद्यें चे धर्म इत्येव वा विभो ॥२४॥

न हि धर्मफलैस्तात न तपोभिः सुसञ्चिते । तां गति प्राप्नुवन्तीह पुतिलो वां व्रजन्ति वै॥ २५ ॥ तहारप्रहले यत्नं संतत्यां आमनः कुरु । पुत्रकास्मित्रयोगास्त्रमेतनः प्रमं हितम्।। २६॥ जत्कारुद्वाच । न दारान्वे
करिष्येऽहं न धनं जीवितार्थतः । भवतान्तु हितार्थाय करिष्ये दारसंप्रहम् ॥ २७ ॥ समयेन च कर्त्ताहमनेन विधिपूर्वकम् । तथा यद्युपलप्रवामि फरिष्ये नान्यथा छहम्॥२ = ॥ सनाम्नी या भवित्री मे दित्सता
स्त्रेव वन्धुसिः । भैद्यवन्तामहं कन्यामुपयंस्ये विधानतः ॥२६॥ दिदस्य
हि भव्यों को मे दास्यति विशेषतः । प्रतिप्रहिष्ये भित्तां तुयदि कश्चित्
प्रदास्यति ॥३०॥ एवं दारिक्षयाहेतोः प्रयतिष्ये पितामहाः । श्रनेन विचिना शर्ववक्त करिय्येऽहमन्यथा ॥ ३१ ॥ तत्र चौत्पत्यते जंतुर्भवतां
तार्लाय व । शायुवतं स्थानसासाध मोदंतां पितरो मम ॥ ३२ ॥

इत्यादिपर्वण्यास्तीकं त्रयोदशोऽध्यायः। करनेसे तु श्रपने तथा हमारे लिये धर्मकार्यं करनेवाला होगा ॥२४॥

हे तात । पुत्रवान् पुरुष जिस गितको पाते हैं, उस गितको धर्मके फलों से और उत्तम प्रकारसे संग्रह कियेहुए तपसे मनुष्य नहीं पाते ॥ २५॥ इस कारण हे पुत्रक ! हमारी खाक्षासे त् विवाह करनेका उद्योग कर और पुत्र उत्पन्न करनेकी वातको अपने मनमें रख, इतना करनेसे ही मानो तू हमारो परमहित करसकेगा ॥ २६ ॥ जरस्कारने कहा, कि—मैं अपने जीवनके सुख्योगके लिये स्त्री वा चनका संग्रह नहीं करूँ, गा, किनु केवल तुम्हारे हितके लिये ही विवाह करलूंगा, ॥ २०॥ मेरी प्रतिहाके अनुसार को कन्या मिलेगी में उसके साथ ही विधिप्रकेष विवाह करूँ, गा, कि—जिससे मेरी धारणा सफल हो, परंतु इसप्रकारसे यदि कोई कन्या नहीं मिलेगी तो में विवाह नहीं करूँगा॥ २॥ ॥ २॥ ॥ २॥ स्वाजिस कन्याका नाम मेरेनाम पर होगा और उसके क्रुट्रम्बी यदि

शिक्षा अस्य विकास विकास किया है हैंगे तो मैं उसके साथ यथाविधि विवाह करल्या ।। २६ ॥ परंतु अधिकतर तो मुक्तसे दिद्दीको कन्या देगे हो कीन ? तथापि यदि कोई मुक्ते कन्या देवेगा तो मैं उस मिल्लाको प्रहण करल्या ॥ २० ॥ हे पितोमहो ! इस विधिसे विवाह करनेका मैं नित्य उद्योग करूँगा, परंतु मेरी प्रतिकास अनुसार कन्या नहीं मिलेगी तो मैं विवाहका उद्योग नहीं कर्योग ॥ ३१ ॥ हे पितरों ! मैं अपने वचन के अनुसार विवाह करनेका प्रयत्म अवश्य करूंगा और आपको तारनेक लिये उस हामिसे पुत्र उत्पन्न होगा, जिससे कि—तुम अविनाशी स्थानको पाकर आनन्द सागोगे ॥ ३२ ॥ तेरहवां अध्याय समाप्त १३

सौतिरुवाच । ततो निवेशाय तदा सविषःशंसितग्रतः। महीं चचार दारार्थी न च दारागविन्दत ॥ १ ॥ स कद्याच्छनं गत्वा विष्रः पितृ-चचः समरन् । सुकोश क्रमाभिज्ञार्था तिस्रो वाचः शनीरव ॥ २ ॥ तं

षाहुक्तिः प्रत्यगृहाद्वयम्य भगिनीं तदा ॥ न सतां प्रतिजवाद न सना-म्नीति चिन्तयम् ॥ ३ ॥ सनाम्नीं चोषतां भाव्यीं गृहीयामिति तस्य ष्टि । मनो निविद्यमयवज्तरस्कारोमद्दासम्म ॥ ४ ॥ तसुवाच महाप्रायों जतस्कारमद्दातपाः । ष्कृताम्मी भगिनीयं ते वृद्दि सत्यं भुजद्रम ॥ ४ ॥ वासक्तिरवाच । जरकारों जरकारः स्वसेयमञ्जा मम । प्रतिगृहीस्य

वाशुक्तवाच । वारकारी वारकार स्वयम्बुल मेना माराहुलाच्य भाव्यिषे मया इक्तां सुमध्यमाम् । त्वद्धे रिज्ञा पृष्यतीच्छ्रेमां हिन्तो तम् ॥६॥ पचमुक्ता ततः प्रदादाव्यविषयविष्णोम् । च च तो प्रति-जप्रह्व विधिष्टटेन कर्मणा ॥ ७ ॥ हत्यिदिपर्यणि चतुद्शोऽष्यायः ॥१४॥ सौतिरुवाच । मात्रा हि भुजगाः शताः पुर्व ब्रह्मविदाम्बर । जनमे-

उम्रथवा फहते हैं, कि-तव्नन्तर तीव्ण्यतथारी वह जरत्कारु मुनि अपने ही नामकी, बाह्मणुजातिकी खीको पानेके लिये समस्त भूमएडल पर भमण करनेलगे,परंत उनको अपनी इच्छानुसार स्त्री कहीं भी नहीं मिली ॥ १ ॥ तदनंतर यह ब्राह्मण एक दिन चनमें जा.पितरोंके बचन को स्मरण करके धीमे स्वरसे तीन वार कन्याकी भिक्ता मांगनेलगे ॥ २ ॥ उनके भिजाके वाय्यको सुनकर नागराज वासुकि श्रपनी विहिन को लेकर तहां जरत्कारके सामने श्राया श्रीर उनसे कहा, कि-श्राप इस फन्याको ग्रहण करलीजिये, परन्तु जरत्कारुने विचारा, कि -यह कन्या मेरे नामकी नहीं होगी, इसकारण उसको स्वीकार नहीं किया ॥३॥ वर्षोकि-महात्मा जरत्कारु प्रतिज्ञा करञ्जके थे, कि-यदि मेरे नामकी कन्या मिलैगी और उसके वंधु वाधव शपनी इच्छासे भित्ता रूपमें देंगे तय ही में विवाह करूँगा, तदनन्तर महातपस्वी, परमव-दिमान जरत्कारुने वासुकिसे वृक्ता, कि-हेनागराज ! तम टीक २ वताओ, कि-तम्हारी इस वहिनका नाम को है ? ॥ ४ ॥ ५ ॥ वास-किने कहा, कि-हे जरत्कार | इस मेरी छोटी वहिनका नाम जरत्कार है, यह छशोदरी कन्या में तुम्हे अर्पण करता हूँ, श्राप इसके साथ विवाह करलें, हे दिजोत्तम! श्रापको शर्पण करनेके लिये ही होने

पहिलेसे इस कन्याको रखछोड़ा था, इसको में यहां लाया हूँ, इस कारण प्राप स्वीकार करलीकिये ॥६॥ ऐसा कहकर वह सुंद्रपद्गी जर-स्कारको विवाहके लिये प्राप्त करदी, जरत्कारको भी शास्त्रमें करीहुई विधिके श्रद्धसार उस सरकारु नामवाली कन्याके काथ विचाह कर लिया श्रीर गृहस्थाश्रमको चलाने लगे ॥ ७॥ चोहहां श्रथ्याय समाप्त उत्रश्रवाने महर्षि शीनकको संयोधन करके कहा, कि—हे ब्रह्मकार

महाभारत आदिपर्व # पंद्रहवां (१२२) जयस्य वो यह्ने धद्यत्यनिलसारथिः॥१॥ तस्य शोपस्य शान्त्यर्थं प्रद्दौ पन्नगोत्तमः। स्वसारमृषये तस्मै सुव्रताय महात्मने ॥२॥ स च तां प्रति-जबाह विधिद्दष्टेन कर्मणा। श्रास्तीको नाम पुत्रश्च तस्यां जज्ञे महा-मनाः ॥ ३॥ तपस्वी च महातमा च वेदवेदाङ्गपारगः । समः सर्वस्य लोकस्य पितुमातृभयापहः ॥ ४॥ श्रथ दीर्घस्य कालस्य पारडवेयो नरा-धिपः । श्राजहार महायद्यं सर्पसन्नमिति श्रुतिः ॥ ५ ॥ तस्मिन् प्रवृत्ते लजे तु सर्पाणामन्तकाय वै। मोचयामांस तान्नागानास्तीकः सुमहा तपाः ॥ ६॥ भ्रातृंश्च मातुलांश्चेव तथैवान्यान् स पन्नगान् । पितृंश्च तारयामाल सन्तत्या तपसा तथा ॥ ७॥ व्रतेश्च विविधवि हान् स्वाध्या-यैक्षानुगोऽभवत् । देवांश्च तर्पयामास यज्ञैविविधद्विगौः॥८॥ऋषींश्च ब्रह्मचर्यंण सन्तत्या च पितामहान् । श्रपहृत्य गुरुं भारं पितृणां शंसि-तव्रतः॥ १ ॥ जरत्कारुर्गतः स्वर्गं सहितः स्वैः पितामहैः । श्रास्तीकश्च लुतं प्राप्य धर्मं चानुत्तमं सुनिः॥ १०॥ जरत्कारः सुमहता कालेन स्व-के पारदर्शी ! पहिले लपेंंाने अपनी मातासे यह शाप पाया था, कि-राजा जनमेजयके यशमें श्रीय तुम्है जलाकर भस्म करडालेगा॥१॥ उस शापकी शान्तिके लिये ही सपैंमिं श्रेष्ठ वासुकिने सदाचारी महा-त्मा जरत्कारको अपनी वहिन विवाह दी थी ॥ २ ॥ उन ऋषिने भी विधियुक्त कियासे उस कन्याको ब्रह्ण करिलया था, उस कन्यामें उदार मनवाला आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न हुन्ना, वह महात्मा वेद श्रीर चेदके श्रङ्गीका जाननेवाला, सवकी समान दृष्टिसे देखनेवाला श्रीर माता पिता दोनोके कुलोंके भयको दूर करनेवाला था ॥ ३॥४॥ तदनंतर वहुत समय बीत जाने पर पाएडववंशके राजा जनसेजयने सर्पसत्र नामका एक वडाभारी यज्ञ किया, ऐसा हमने सुना है॥ ५॥ सपींका नाश करने के लिये ही छारंभ हुए उस यक्तमेंसे महातपस्वी ब्रास्तीकने भाई, मामा तथा ब्रन्य सपाँको वचाया था और सन्तान उत्पन्न करके तथा तप करके अपने पितरोंको भी तारदिया था ॥६॥ ॥७॥ हे ब्रह्मन् ! वह नाना प्रकारके ब्रत करके तथा स्वाध्योय फरके ऋषियोंके ऋणसे मुक्त हुआ था, तथा भांति २ का दक्षिणावाले यह क्षरके देवतात्रोंको तुप्त किया था॥ = ॥उसने ब्रह्मचर्यका पालन करके ऋषियोंको लन्तुष्ट किया और सन्तानसे पितरोंको तुप्त किया था, इसप्रकार पितरौंके बड़ेभारी भारको उतार आस्तांक नामक पुत्रको इस लोकर्से छोडकर तथा श्रेष्ठ धर्मका संब्रह करके प्रशंसाके योग्य श्राचरणवाला जरत्कार श्रपने पितामहों सहित कुछ कालमें स्वर्गको

सिधारगया, यह श्रास्तीककी कथा मैंने जिस प्रकार सुनी थी तैसी

चरपदं त्यया। प्रीयामहे भृगं तात पितेवेदं प्रभापसे ॥ २ ॥ अस्मञ्छभूषपे मित्रं पिता हि निरतस्तव । आवर्षत्यभाव्यानं पिता ते त्वं
तथा घद ॥ ३ ॥ सोतिक्वाचाआयुम्भविदमाध्यानमास्तीवं कथ्यामि
ते । यथाभुतं कथ्यतः सकामाहे पितृमंग ॥ ४ ॥ पुरा वेत्रपुर्गे महान्
प्रजापतिसुते छुमे । श्रास्तां भिगन्यो रूपेण समुपेतेऽद्वतेऽन्छ ॥ ५ ॥
ते भाव्यं कथ्यस्थास्तां कद्वश्च विनता च ह । महात्तास्थां वरं भीतः
प्रजापतिसुतः पतिः ॥ ६ ॥ कर्यपो धर्मपत्तीभ्यां सुदा परमया सुतः।
प्रतातिस्ताः पतिः ॥ ६ ॥ कर्यपो धर्मपत्तीभ्यां सुदा परमया सुतः।
स्त वरिक्तमः भूत्वेवं कर्युपादुत्तमञ्जते ॥ ॥ हर्योदभ्यिकां मीति प्रापतुः
स्त वरिक्तयो । वर्षे कद्वः सुतन्नागान् सहस्रं तुत्यवन्वसः॥ ८ ॥ हो।

पुत्री विनता वये कद्गुप्रत्राधिकी चले। तेजसा चपुपा चैय विक्रमें-ही आपसे निवेदन फरी, हे भृगुकुलशार्टूल ! कहिये अब में आपको कौनसी कथा सुनाऊँ ॥ ६—११ ॥ पद्रहवां अस्याय समाप्त ॥ १५ ॥ क शीनको कहा, कि हे सुतनदन ! तुमने जो विद्वान, सज्जन महातमा आस्तीककी कथा सुनाई, इसको ही फिर विस्तारसे सुनाइये, वर्षोकि उसको सुननेकी हमें बड़ी ही उत्कंज है ॥१॥ हे सोम्य ! तुम मधुर तथा कोमल अल्द और पदांवाली वाणीसे कथा कहते हो, इसकारण हेतात हम आपके कथनन व वह ही प्रसन्न हुए हैं तुम अपने पिताकी समान ही उपार्था करने हो ॥ २ ॥ तहहारे पिता हमारी सेवाम स्वार तराम

ही ब्यापक कथनस यह हा असन्न हुए हु तुम अपना पताका समान ही ब्याप्या करते हो॥ २॥ तुम्हारे पिता हमारी सेवाम सदा तत्पर रहते थे, इसकारण तुम्हारे पिताने यह व्याप्यान जिसमकार कहा हो तैसे ही तुम भी हमें सुनाओ ॥३॥ उग्रथ्याने कहा, कि—हे आयुप्तन् मैंने यह ब्राह्तीकको कथा पिताजीसे जैसी सनी है, अधिकल तैसी ही में तुमसे कहता हूँ॥४॥ हे निर्दोण ब्राह्मन, १ पहिले देव (कत्य) युगर्में दक्त प्रजापतिकी कद्र और विनता नामवाली परमसुंदरी और गुण्वती दो कन्यापं थीं, वह दोनो वहने महर्षि कश्यपको विवाही गई

र्योके ऊपर परमप्रसन्न होकर उन्हें वरदान देना चाहा वह दोनो उत्तम स्त्रियं यह सुनकर कि—कश्यपजासे उत्तम वरदान मिलेगा, परम प्रसन्न दुई और अतुल आनन्द पाकर उनमेंसे कट ने कहा, कि-मेरे समानवली एक सहस्र नाग पुत्र हों॥ ५—६॥ और विनताने मांगा, कि—यलमें, तेजमें, शरीरमें और पराक्रममें कद्रके हजार पुत्रोंसे भी

िसोलहवां (१२४) * महाभारत श्रादिपव * गाधिको च तो ॥ ६ ॥ तस्यै भक्ता वरं प्रादादत्त्यर्थं पुत्रमीप्सितम्। एवमस्तिवति तं चाह कश्यपो विनतां तदा ॥१० ॥ यथावत् प्रार्थितं लब्ध्या वरं तुष्टाभवत्तदा। कृतकृत्या तु विनता लब्ध्या वीर्व्याधिकौ सतौ ॥ ११ ॥ कद्भश्च लब्ध्वा पुत्राणां सहस्रं तुल्यवर्ज्यसाम् । धार्य्यो प्रयत्नतो गर्भावित्युक्त्वा स महातपाः । ते भार्य्ये वरसन्तुष्टे कश्यपा वनमाविशत् ॥ १२ ॥। सौतिष्वाच। कालेन महता कद्र रएडानां दश-तीर्दश । जनयामास विप्रेन्द्र हे चाएडे विनता तदा ॥ १३ ॥ तयोरएडानि निद्धः प्रहृष्टाः परिचारिकाः । स्वेपस्वेदेषु भाराडेषु पञ्चवर्पशतानि च ॥ १४ ॥ ततः पञ्चशते काले कद्गृपुत्रा विनिःस्ताः । अगडाभ्यां चिन-तायास्तु मिथुनं न व्यदृश्यत ॥ १५ ॥ ततः पुत्रार्थिनी देवी बीडिता च तपश्चिनी । ऋष्डं विभेद् विनता तत्र पुत्रमपश्यत ॥ १६ ॥ पूर्वार्द्धाः-यसम्पन्नमितरेगाप्रकाशता।सपुत्रःकोधसंरब्धः शशापैनामिति श्रुतिः ॥१७॥ योऽहमेवं कता मातस्ख्या लोभपरीतया।शरीरेणासमग्रेण तस्मा-हासा भदिष्यसि ॥ १८ ॥ पश्चवर्षशतान्यस्या यया विष्पर्दसे सह । अधिक बलो दो पुत्र मेरे होयँ ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले

सगवान् कर्यपने, विनताको उसकी इच्छानुसार कुलको परम पवित्र करनेवाले हो पुत्र होनेका परदान उस समय विनतासे 'तथास्तु', कहकर दिया ॥ १० ॥ विनता ऋषिक पराक्रमी हो पुत्रों का सरदान पाकर अपनी प्रार्थनाके अनुसार वर मिलजानेसे उस समय संतुष्ट और कतकृत्य हुई ॥ ११ ॥ उधर कह भी समान तेजवाले हजार पुत्र होनेका वरदान पाकर वहुत ही प्रसन्न हुई, महातपस्त्री कर्यपत्री, वरदान पाकर परममस्त्र हुई अपनी दोनो स्त्रियोंसे तुम चलले अपने गर्भकी रत्ता करना, ऐसा कहकर वनमें चलेगप॥ १२॥ उन्नश्रवाने कहा, कि—हे विशेष्ट विवन्तर कुल समय वीत सानेपर कहा, ने एक सहस्त्र अपने अपने ॥ १३॥

कहू ने एक सहस्र अपड़े और विनताने दो अगड़े उत्पन्न किये॥१३॥
फिर उनकी संविकाओंने प्रसन्न होकर उनके अगड़ोंको जुदे २ उच्यातायुक पात्रोंमें धरिदेये, पांच सौ वर्ष वीतकाने पर कद्र के बच्चे
सहस्र अगड़ोंकों कोड़क उनमेंसे बाहर निकले, परन्तु विनताके
होनों अपड़ोंमेंसे बच्चे निकलते हुए देखनेमें नहीं आये यह देखकर
पुत्रकीहच्छावाली तपिट्नी विनता देवी लिकत हुई और उसने
एक अगड़े को फोड़कर देखा तो ऊपरके आधे भागमें परिएक्व
अवयर्षों वाला और नीचेके भागमें अपक्व अवयवीवाला एक पुत्र
आगड़े में दीखा अपनेको अपक दशामें बाहर निकाल लेनेसे उस
तरकालके जनमें पुत्रने कोधके आवेशमें आकर मता को गांप

स्वनम् ॥ २०॥ प्रतिपालियतव्यस्ते जन्मकालोऽस्य धीरया । विश्वष्टं वस्त्रमालस्त्या पश्चवर्षप्रतारणः ॥ २१ ॥ पर्व प्रश्वा ततः पुत्री विन्तामालस्त्या पश्चवर्षप्रतारणः ॥ २१ ॥ पर्व प्रश्वा ततः पुत्री विन्तामालस्त्या पश्चवर्षप्रतारणः ॥ २१ ॥ पर्व प्रश्वा ततः पुत्री विन्तामालस्त्रम्य प्रसार ॥ श्वा ॥ २१ ॥ प्राविद्य प्रभातसमये अदा ॥ २१ ॥ प्राविद्य प्रमातसमये भीज्यमपं विदित्तमस्य यत् । विषाषा भृगुराष्ट्रं ल लुधितः स्वस्त्रमस्त्रमा । श्वा ॥ एत्यविद्यवर्षि प्रास्तिके पोड्योऽप्यायः ॥ १६ ॥ प्रत्योद्यत्य । एत्यविद्यवर्षि प्राप्तिके पोड्योऽप्यायः ॥ १६ ॥ स्त्रमेवत्यः ॥ २४ ॥ एत्यविद्यवर्षि प्रास्तिके पोड्योऽप्यायः ॥ १६ ॥ स्त्रमेवत्यः ॥ २४ ॥ एत्यविद्यवर्षि प्राप्तिके पोड्योऽप्यायः ॥ १६ ॥ स्त्रमेवत्या ॥ एत्यव्या । पर्वाद्यत्वर्षा प्रसामायातमुर्वोःश्रवस्यसित्यत्व काले तु भिन्यो ते तपोष्रत । प्रपत्यत्व । सम्यवातमुर्वोःश्वस्यसित्यत्व ॥ १ ॥ यन्तं देवनणाः जये दृष्टक्यम् पूज्यन् । मस्य्यमानेऽमृते जातभ्रवयस्यस्तमुत्तमम्॥।श्वमोध्यलमप्ता विद्या, क्रि—हे मातः ! तृते द्यसमयमं मुभै लोभसे वाद्य निकालकर । मेरे ग्रारीरको श्वथ्या रहनेदिया इसकारज्य तु जिस्र व्यक्ति स्वर्थोतिया ।

डाह करती है, पांच सो वर्षतक तुभे उस लीकी ही दोसी बनकर रहना पड़ेना परंतु हे मातः!तने जैसे अएडेको फोड़कर मुभे अज्ञहीन करिया है, पेसे ही इस दूसरे तपस्वी पुनको अएडा फोड़कर अज्ञहीन का अपूर्ण अङ्गलाना नहीं करेगी तो यह पुत्र ही तुभेदासी भावसे छुटा-देगा ॥ १४ ॥ २०॥ यदि तुभे अधिक बलवान् पुनकी इच्छा होय तो अधित अरकर पांच सो वर्षपर्यन्त इसके जन्मजी प्रतीचा कर, पांचसी वर्ष वीतने पर उसका जन्म होगा तव ही तृ शापसे छुटेगी ॥ २१ ॥

(१२६) * महाभारत ग्रादिपर्ष * [सत्रहवां नाुञ्जुत्तमं जगतां वरम् । श्रीमन्तमजरं दिव्यं सर्वकत्त्रणपूजितम् ॥ ३॥

शौनक उदाच। कथ तदमृतं है वैभिथितं क च शंख मे। यत्र जक्षे महावीच्यां खोऽरवराजो महाचुिताः।शाखोतिकवाच । ज्वलन्तमचलं मेहं तेजोरा-शिमचुक्तमम् । आक्षिपन्तं प्रभां मानोः स्वशृङ्गः काञ्चनोज्ज्वलैः ॥ ५ ॥ कनकाभरणं चित्रं देवगन्धवंसेवितम् । अप्रमेयमनाधृष्यमधर्मवहुलै-जनैः ॥ ६ ॥ व्यालेराचरितं घोरोहिं व्यीपधिविदीपितम् । नाकमाहृत्य तिष्ठन्तमुच्च्चेयेण् महागिरिम् ॥ ७ ॥ अगम्यं मनसाप्यन्यैर्वेदीद्वच्चम-वितम् । नानापतंगसंवैश्च नाहितं सुमनोहरेः ॥ ६ ॥ तस्य यूङ्गसुप्र-रह्म वहुरत्नचितं सुभम्। अगन्तकरपृष्ठिः सुराः सर्वे महोजसः । स्वानायस्या स्वागम्य साम्ययः साम्ययः । अन्तिवाद्या स्वागम्यस्य सामाम्य

॥६॥ ते मन्त्रथितुमारच्यास्तत्रासीना दिवौकसः । श्रमृताय समागम्य तपोनियमसंयुताः ॥ १० ॥ तत्र नारायणो देवो ब्रह्माणुमिद्सब्रवीत् । चिन्तयत्सु सुरेष्वेवं मन्त्रवत्सुच सर्वशः॥११॥ देवैरसुरसंबैक्षमध्यतां कलशोद्धिः । भविष्यत्यमृतं तत्र मध्यमाने ब्रहोद्घौ॥१२॥ सर्वोपधीः

था, समुद्को मधते समय उसमेंसे वह एक रत्नरूप निकला था और सब देवता उस हुए पुष्ट तथा रूपवान् घोड़ेकी पूजा करते थे ॥ १-३ ॥ शौनक वृक्तते हैं कि-देवतात्रोंने किस प्रकार समयको मथकर अमृत निकाला था श्रीर उसकी किस स्थान पर निकाला था ? कि-जिसमें से परमकान्ति श्रीर महाशरीरवाला यह श्रश्च-राज उत्पन्न हुन्ना था, उस कथा को कहो ॥ ४॥ उन्नश्रवाने कहा. कि-सुवर्णकी समान दमकते हुए अपने शिखरोंसे सूर्यकी कान्तिका भी तिरस्कार करनेवाला मानो सुवर्णके आभूपण पहिरे वड़ा आधर्य करनेवाला, देवता ग्रौर गन्धवासे सेवित, जिसका नाप न होसके. जिसको अधर्मी मनुष्य देख भी न सर्के ऐला भयानक संपेंसि भरा. दिव्य श्रीषिधयोसे दमकता हुआ, ऊँचाईसे स्वर्गलोकको घरेहुए, दूसरोंको सनसे भी अगस्य, नदी श्रीर वृक्तोंसे परिपूर्ण, मनोहर नाना प्रकारके पित्तयोंके प्रकार २ के खरींसे गुजारता हुआ, तेजका छेर श्रीर पर्दतों में सबसे उत्तम मेरु नामवाला एक महापर्वत है॥ ५-=॥ उस पर्वतके, अनेकों रहाँ से भरपूर उत्तमश्रीर आकाशसे कुछ ही कम ऊँचे शिखर पर चढ़कर, तपस्वी श्रीर नियमसे रहनेवाले परम बुद्धिमान् देवता इकट्ठे हो श्रमृत पानेके लिये विचार करनेलगे ॥ & ॥

॥ १०॥ सव देवता विचार कररहे थे, उस समय ही भगवान नारा-यणने ब्रह्माजीसे कहा, कि—तुम खुर और असुरोंको साथ लेकर अमृतके तिये समुद्रको मथो, समुद्रका मथन करने पर उसमेंसे अमृत उत्पन्न होगा॥ ११॥ १२॥ श्रीर हे देवताओं.! समुद्र को मथने अध्याय] # भाषानुवाद सहित # (१२७) समावाष्य सर्वरत्नानि चैय ह।मध्नध्वमुद्धि देवा वेत्स्यध्वममृतं तनः॥ इत्यादिपर्वणि अमृतमन्थने सप्तदशोऽत्यायः॥ १७॥ सौतिरुवाच । ततोऽभ्रशिखराकारैंगिरिशङ्गैरलंकृतम् । मन्दरं पर्व-तवरं लताजालसमाकलम् ॥ १ ॥ नानाविहगसंघष्टं नानादंष्टिसमाक-लम् । किन्नरेरप्सरोभिध्य देवैरपि च सेवितम् ॥२॥ एकादशसहस्राणि योजनानां समुच्छि तम् । अधोभूमेः सहस्रेषु तावत्स्वेव प्रतिष्ठितम ॥३॥ तमद्वर्तमशका च सर्वे देवगणास्तवा । विप्लामासीनमभ्येत्य ब्रह्माणुं चेदमब्र बन् ॥ ४ ॥ भवन्तावत्र कुर्वातां बुद्धि नैश्रेयसीं पराम् । मन्दरोद्धरणे यत्नः क्रियताञ्च हिताय नः ॥ ५ ॥ सातिरुवाच । तथेति चावचीदिष्णर्वधाणा सह भागव । अचोदयदमेयातमा फणीन्द्रं पपालो-चनः ॥ ६ ॥ ततोऽनन्तः समुत्थाय ब्रह्मणा परिचोदितः । नारायग्रेन चाप्युक्तस्तस्मिन् फर्मणि वीर्य्यवान् ॥ ७॥ श्रथ पर्वतराजानं तमनन्तो महायतः । उजाहार यलादुबसन् सवनं सवनीकसम् ॥ = ॥ ततस्तेन

पर उसमेंसे सय श्रीपधियें श्रीर सकल रल भी तुम्हें भिलेंगे श्रीर उसके पीछें फिर समुद्र को मथने पर उसमेंसे श्रमृत निकलेगा॥१३॥ सत्रष्टवां श्रध्याय समाप्त ॥॥१०॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

उग्रथवा फहते हैं, कि-वाद्लंकि शिखरोंकी समान एयेत शिखरोंसे शोभावमान श्रमेकों तताजालोंसे भरपूर, नानाप्रकारके पित्त्वयोंके मधुर स्वरांसे गुर्ज्जारित, श्रमेकों प्रकार के डाहवाले पश्चर्योंसे भरपूर, किन्नर श्रम्पदा श्रीर विता श्रीसे सेवित, ग्यारह सहस्र योजन जैंदा श्रीर उतना ही तीचे भूमिमें गहाहुशा पर्वतांमें श्रेष्ट मन्दर नामका एक पर्वत है १-३ उसको सब देवता उखाड़ने लगे, परन्तु वह उखड़ नहीं सका, तव जहां विन्तु श्रीर झाला वेटेथे तही उनके पास जाकर कहनेलगे कि ॥ १ ॥ महाराज । श्राप दोनो इस कार्यमें कल्याणकारिजी जो जुक्ति होय उसको वताह्ये श्रीर हमारे हितके लिये मन्दराचलको उखाड़नेमें सहायता दीजिये ॥ ५ ॥ उग्रश्रमा कहते हैं, कि-हे शीनक !तदननतर श्राजोंकों पास वेटेड्र , कमलको समान नेत्रोंचाले श्रीर जिनके स्वरूप की तकेना भी नहीं होसकती ऐसे मगवान् विप्तुने 'वहुत श्रव्छा, कहकर देवताश्रोंको काम साधनके लिये संपेंके राजाशेवजीको मन्द राचलको उखाडनेको प्रेरणाकी, नारायण तथा ग्रहाजीको प्रेरणा होने पर महावली श्रनन्त भगवान् उस कामके करनेको तत्त्वर हुए श्रीर हे पर महावली श्रमन्त भगवान् उस कामके करनेको तत्त्वर हुए श्रीर हे

ब्रह्मन् । वन तथा वनवासियों सहित श्रपने वलसे उस पर्वतराजको उखाड़दिया ॥ ६-= ॥ श्रौर तदनन्तर देवताश्रोंके साथ समुद्रके तटपर श्राये. उस समय देवताश्रोंने समुद्रसे कहा, कि—हे सागर । हम

सुराः लार्द्धं ससुद्रमुपतस्थिरं । तमृजुरमृतस्यार्थे निर्मिथिष्यामहे जलम् ॥ है ॥ अपाम्पतिरथोवाच ममाप्यंशो भवेत्ततः । सोहास्मि विपुतं मई मन्दरभ्रमणादिति ॥१०॥ ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारे सुरासुराः । श्रिध छानं गिरेरस्य भवान् भवितुमईति॥ ११ ॥ कूर्मेण तु तथेत्युक्तवा पृष्ठ-सस्य जसर्पितम् । तं शैलं तस्य पृष्ठस्थं मन्त्रेगेन्द्रो म्चपीड्यत् ॥ १२ ॥ संथानं गंदरं छत्वा तथा नेत्रकच वासुकिम् । देवा मधितुमारच्याः समुद्रं निधिमस्यसाम् ॥ १३ ॥ श्रमृतार्थं पुरा ब्रह्मं स्तथैवासुरदानदाः। एकॅयन्तमुपाश्विष्टा नागराजो महासुराः ॥ १४॥ विदुधाः लहिताः सर्वे थतः पुच्छं ततः स्थिताः । श्रनन्ती भगवान्देवो यतो नारायण्स्ततः । शिर उत्तिच्य नागस्य पुनः पुनरवािचपत् ॥ १५ ॥ वालुकेरथ नागस्य सहसा विष्यतः सुरैः । सधूमाः सार्चिषो चाता निष्पेतुरसङ्ग्यसात् ॥ १६ ॥ ते धूमसंबाः जम्भूता मेघसंघाः सविद्युतः । अभ्यवर्षन् सर-राणान् अमसन्तापकपितान् ॥ १७ ॥ तस्माख गिरिक्टरप्रात् प्रच्यताः पुष्पबृष्टयः। सुरासुरगणात् सर्वान् समन्तात्समवोक्षिरन् ॥ १ = ॥ श्चनुतकी प्राप्तिके लिये तेरे जलको मधना चाहते हैं॥ ८॥ उस समय समुद्ने उत्तर दिया, कि—श्रच्छा मधलो, परंतु उसमेले सुक्षेभी भाज सिलना चाहिये, द्योंकि-धुभै भी मंदरावलके अमल्ले वड़ा दुःस लहना पड़िगा॥ १०॥ फिर देवता श्रीर दैत्य, समुद्र के समीपमें जहां, क्रमराजा था तहां गए श्रीर उससे कहनेत्रगे कि—हे हर्मराज ! तुम्हें अपनी पीठपर इस पर्वतको धारण करना पर्वना कुर्मराजने वहुत अच्छा कहकर स्वींकार करितवा और अपनी पीठ अर्पण की तब इन्द्रने संक पढ़कर मन्दराचलको कुर्मराजकी पीठपर ला थरा ॥ ११ ॥ १२ ॥ है प्रहान ! तदनन्तर मंदर।चलको रै और वासुकि को रस्ती वनाकर देवता और दैत्य अमृतके लिये चसुद्को मधनेलगे, उस समय अस-रोते मिलकर वास्तिके फनको श्रीर सप देवतताश्रोने इकट्टे होकर बासुकिकी पूंछको पकडा था, सगवान नारायण नागका विष घार र माथा उँचा करके दृश्वीपर डालते जाते थे अर्थात् उसके मुखर्मेंसे क्षड़तेष्टुप दिपको सहत करते थे॥ १३—१५॥ देवता बासुकि नाग को एकसाथ ऐसे जोरले खेंचनेलगे, कि—उसके बुखमेंसे भूआँ श्रीर श्रक्षिकी चिनगारियों छहित श्वालका वायु वार रेनिकलनेलगा ॥ १६ ॥ उस घएका समृह विकलीसहित सेव वनकर, सथनेके परि-असले ब्याकुल हुए देवतात्रोंकी थकावर दूर करनेके लिये उनके ऊपर बरसनेलगा, ११७। दूसरी और मंदराचलके शिखरोंपर के बृह्वोंमें से देवता और दानवाँकेऊपर चारों श्रोरसे पुष्पींकी वर्षा होनेलगी॥१=॥ II Diversaria en sa coma coma con a como a como

सहाभारत श्रादिपर्व

(१२⊏)

श्रारहवां

श्रध्याय ी

श्रतशा स्वयोगमास ॥ २०॥ वार्षणान च भृतात वायवान महा-धरः । पातास्ततस्वासीनि विस्तयं समुपानयत् ॥ २१ ॥ तस्मिश्च भ्राम्य-मार्षेऽद्वी सङ्गुण्यन्तः परस्परम् । न्यपतन् पतापेताः पर्वतात्रान्म-सद्भमः॥ २॥ तेपां सङ्ग्रपंजश्चाद्विरात्विभः प्रन्यसमुद्धः। विद्युद्धिर्ष्य नीसान्ध्रमाम् कुणान्मन्दरं गिरिम् ॥ २३ ॥ ददाह कुञ्जरास्त्रम् सिद्धांश्चेय विनिर्णतान् । विगतासृति सर्वाणि सस्वानि विविधानि च ॥ २४॥ तम-

विकासतार् । विकास स्वास्त्र स्वास्त्र स्वास्त्र कार्या वार्या । श्चिममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्त्रतः।वारिण्। मेघजेनेन्ट्रः शमयामास सर्वयः ।१२॥तृतो नानाविधास्त्रत्र सुन्धु दुः सागराम्मति। महादुमाण्। निर्यासा वहवळोपयीरसाः ॥ २६ ॥ तेवाममृतवीर्य्याण्। रसानां पयसेव च । श्चमरत्वं सरा जम्मः काञ्चनस्य च निम्नवात् ॥ २० ॥ ततस्तस्य सम्-

॥ १८॥ इसद्रकार देवता और श्रसुर मन्दराचलसे समुद्रको मथने तुने उस समय मधेजातेहुए समुद्रमें से घोर घनघटाके गंभीर गर्जने की समान पड़ा भारी शब्द दोनेलगा ॥ १८ ॥ मंदराचलके घूमनेसे समुद्रमें रहने वाले नानाप्रकारके सहन्तें जन्तु पिसकर मरगए ॥ २०॥ श्रीर वरुणुलोक तथा पातालमें रहनेवाले श्रनेकों

प्राणियों को भी मंदराचलने कुचल कर चूरा करडाला ॥ २१॥ श्रीर वह पर्वत जिस समय समुद्रमें घूमताथा उस समय उसके अपने यहे र वृत्त आपसमें टक्सोते,जड़से उसड़कर पित्रमों सहित समुद्रमें गिरते थे॥ २२॥ कितने ही बृत्तोंकी आपसकी रगड़ले वार्र वार लपटोंके साथ श्रीप्त प्रज्योत्तत होजाता था श्रीर जैसे विजली

वार लश्टाक साथ आग्न प्रज्यालत हाजाता या आर जल पिजल मेघकी श्याम घटाको छालेती है तैसे मंदराचलको छालेता था ॥२३॥ हे बाह्यणों ! प्रज्यलित हुआंवह श्रश्चित तिस पर्वतमेसे वाहर निकलेहुप सिंह हाथी तथा श्रम्य प्राखरहित हुए नाना प्रकारके सकल प्राखियों

िंदह हाथी तथा श्रन्य प्राण्यहित हुए नाना प्रकारके सकल प्राण्यिंगे को भी भस्म करेडालता था ॥ २४ ॥ तदनंतर देवताश्रीके राजा इंद्रने जल वर्षा कर चारों श्रोर प्रज्वलित हुए श्रक्तिको शांत करिदया जले हुए वड़े २ वृत्तीके गींद श्रीर श्रोपधियों के श्रनेको रात करिदया जले हुए वड़े २ वृत्तीके गींद श्रीर श्रोपधियों के श्रनेको रस लिक्क र कर सागरमें यहनेलगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ तदनंतर हे श्राह्मणी ! उन श्रीपधी के श्रमृतमय वीजवाले रसींसे मिलेहुए जलसे श्रीर खुवर्णमय पर्वत मेंसे वहेहुए खुनहरी जलसे देवता श्रमर होगए ॥ २७ ॥ तदनंतर

ऊपर कही हुई श्रमृतमय वीर्यवाली श्रोपिश्रयोका जल श्रोर सुवर्णमय पर्वतका जल सागरके जलमें मिलजाने पर सागरका खारी जल दूध की समान होगया श्रोर वह दथ श्रेष्ट रस्तोके साथ मिलने पर घी